(गुजराती साहित्य का पर्यवलोचन)

प्रकाश जैन
मनमोहिनी
द्वारा सम्पादित

१९६३
अपोलो पब्लिकेशन, जयपुर

● मुद्रक : केशव आर्ट प्रिन्टर्स, अजमेर

● मूल्य : ७·०० रुपये मात्र

● 'लहर' के अधिकार द्वारा प्रकाशित

हमारी बात

साहित्य अनुभूति की सन्तान है। और अनुभूति मनुष्य की अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति तो है ही, वह परिस्थितियों और परम्पराओं से भी प्रभावित रहती है। तभी न आज दिल्ली का साहित्यकार एक अलग प्रकार की ही बातें लिखता है, तो बंगाल के साहित्यकार की कलम अपने ढंग से एक दूसरी ही बात कहती है! हम प्रायः ही किसी रचना को हिन्दी के माध्यम से, बिना लेखक का नाम आदि जाने ही, सुनकर कह देते हैं कि यह किसी बंगाली, या मराठी, या गुजराती, या पंजाबी की रचना है क्या ?

पता नहीं वह कौनसा तन्तु है जो सर्जक को अपनी मिट्टी, अपने वातावरण के साथ बाँध देता है।

किन्तु हम किसी भी साहित्य को किसी प्रान्त-विशेष की परिधि में ही न देखकर, सहानुभूति-पूर्वक उसकी आत्मा तक पैठकर समझें, आज यह बहुत आवश्यक हो गया है।

इसी दिशा में हमारा यह एक प्रयास है। हमने गुजराती साहित्यकारों द्वारा ही उनके साहित्य का विश्लेषण हिन्दी पाठकों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है। दो विशिष्ट साहित्य-प्रकार कहानी और कविता के अनुवाद भी इस पुस्तक में सम्मिलित हैं। आशा है हमारा यह प्रयत्न हिन्दी पाठकों को गुजराती-साहित्य के विहंगम अवलोकन में सहायता देगा।

गुजराती शान्त और धर्मनिष्ठ होते हैं। किन्तु ऐसा नहीं है कि बौद्धिक और आत्मिक दृष्टि से वे पीछे हैं! स्वामी दयानन्द, महात्मा गाँधी और वल्लभभाई पटेल इसी भूमि की सन्तान हैं। नरसिंह मेहता को मात्र गुजराती ही नहीं, पूरा भारत जानता है। और मीरा गुजरात की भी उतनी ही हैं, जितनी राजस्थान की।

समस्त भारतीय भाषाओं की तरह गुजराती भी वैदिक संस्कृत से चलकर प्राकृत, अपभ्रंश, गौर्जर अपभ्रंश के राजमार्गों से होती हुई अपने इस रूप तक पहुँची है। अर्वाचीन गुजराती का प्रारम्भ १७ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के आरम्भ को माना जाता है। इसे गुजराती नाम सर्वप्रथम कवि प्रेमानन्द (सन् १६३६-१७२४ लगभग) ने दिया। किन्तु स्वयं प्रेमानन्द ने, या उनके किसी अन्य समकालीन ने तब इस भाषा के लिए गुजराती नाम का प्रयोग नहीं किया। भाषा, प्राकृत, वाणी आदि नाम से ही इसे पुकारा जाता था।

मनसुखलाल झवेरी ने 'गुजराती-साहित्य का रेखा दर्शन' में सम्पूर्ण गुजराती साहित्य को दो भागों में बाँटा है। प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य (सन् १०००-१५००-१८५०) तथा अर्वाचीन साहित्य (१८५० से अब तक)। प्रथम को उन्होंने रास, भक्ति, आख्यान और भक्ति-वैराग्य युगों में बांटा है तथा दूसरे को सुधारक, पण्डित और गांधी युग के नाम से तीन भागों में। हमने अपनी इस पुस्तक में अद्यतन साहित्य को ही लिया है!

सम्पादक

संकेतिका

•

गुजराती कविताएँ :

गुजराती कहानियां :

नयी गुजराती रंगभूमि

धनसुखलाल मेहता

१९२० वें वर्ष में पुरानी गुजराती रंगभूमि अर्थात् व्यावसायिक गुजराती रंगभूमि का सूर्य मध्याह्न के सूर्य-सा प्रज्वलित था। पूरे गुजरात-बम्बई में लगभग १५० से भी अधिक नाटक कम्पनियों की धूम थी। केवल बम्बई में ही एक साथ छ: छ: कम्पनियाँ अपने नाट्य-प्रदर्शन द्वारा अपनी जीविका चलाती थीं। उनका अभिनय अतिशयोक्ति भरा था। 'सेटिंग्ज़' (सन्निवेश) महंगे होते हुए भी सस्ते प्रतीत होते थे। प्रत्येक दृश्य-परिवर्त्तन पर बंदूक के धड़ाके करने की प्रथा थी। वेशभूषा में ज़रा भी वास्तविकता नहीं थी, केवल अपवाद-स्वरूप ही स्त्री पात्रों की भूमिका, स्त्रियाँ करती थीं; अन्यथा कुछ योग्य पुरुष-अभिनेता ही स्त्रियों की भूमिका ठीक-ठाक ढंग से निभा लेते थे। इस पर भी उनके नाट्यकार 'मेलो-ड्रामा' के क्षेत्र में विशेष दक्ष थे। इन 'मेलोड्रामा' के उपयुक्त अभिनय भी होता था। नाटक देखकर प्रेक्षक रो पड़ते थे। और वे ऐसे नाटकों को बार-बार देखने आया करते थे।

ऐसी परिस्थिति में, पश्चिम के रंग से रंगे, और पुरानी व्यावसायिक रंगभूमि की अति-शयोक्तियों से पीड़ित अर्थात् पुरुषों द्वारा स्त्रियों की भूमिका अभिनीत करने की रूढ़ि से घृणा करने वाले दो व्यक्तियों ने खुला विरोध किया। ये दो व्यक्ति थे साहित्य सम्राट कन्हैयालाल मुंशी और सुप्रसिद्ध कवि, नाट्यकार और अभिनेता चन्द्रवदन मेहता। समाज में इन दो प्रतिभाशाली व्यक्तियों के स्थान में अन्तर था, वैसी ही विशेषता उनके द्वारा प्रसारित नाटकों में थी। मुंशीजी के नाटक चटकीली सज्जा, सुन्दर और आकर्षक सेटिंग्ज़ से पूर्ण होते थे, जबकि चन्द्रवदन मेहता के नाटक सादगी से पूर्ण होते थे। दोनों ही श्रेष्ठ नाटककार थे ! अपने नाटक उन्होंने स्वयं ही लिखे। और स्त्री पात्रों के अभिनय स्त्रियों द्वारा ही करवाने का आग्रह किया तथा अन्य लोगों से भी वैसी परम्परा स्थापित करने को कहा। लगभग १९२० से १९४० तक इन दो व्यक्तियों का प्रभाव नयी रंगभूमि पर रहा।

लेकिन इस प्रकार बीस-बीस वर्षों तक इन दो समर्थ पुरुषों ने गुजराती रंगभूमि पर एक-छत्र राज्य किया, उसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि इन बीस वर्षों में मौलिक तो क्या, रूपान्तरित नाटक लिखने वाला भी कोई सामने नहीं आ सका।

१९४० के पश्चात् परिस्थिति एकदम बदल गई। चन्द्रवदन मेहता की ही भाँति मुंशीजी ने भी रंगभूमि से अपना सक्रिय सम्बन्ध तोड़ लिया। १९४० में कोई भी नाटक दो या तीन बार प्रसारित हो जाता, तो सम्बन्धित व्यक्ति का अहोभाग्य समझा जाता था। घर-घर जाकर टिकिट बेचने पड़ते थे। जब तक यह बाधा दूर नहीं होती कि लोग अपनी इच्छा से नाटक देखने आये ही नहीं, तब तक रंगभूमि का विकास सम्भव नहीं। यह शुभ लक्षण था कि १९४० से रंगभूमि ने इस बाधा को समाप्त करने के लिए कमर कस ली।

नाटकों के प्रति रुचि-सम्पन्न लोग दिन प्रति दिन बढ़ती महंगाई के कारण व्यग्र हो गये थे; उन्हें अपनी व्यग्रता दूर करनी थी। मात्र हास्य-प्रधान नाटक ही उनकी व्यग्रता-चिंता और इस अनिश्चितता को दूर कर, थोड़े से समय के लिए ही उन्हें सन्तुष्टि प्रदान कर सकने में समर्थ थे। अतः कुछ लेखकों ने कमर कसी और एक के बाद एक रूपान्तर, हास्य-रूपान्तर निर्माताओं व दिग्दर्शकों को दिये। निर्माताओं ने तथा दिग्दर्शकों ने इनका पूर्ण सदुपयोग किया तथा संकट-काल में जैसे व्यक्ति-हित मिलकर रहते हैं, वैसे ही अभिनेता व अभिनेत्रियाँ मंच पर उतर पड़े और हास्य-प्रधान नाटकों को अभिनय द्वारा आलोकित कर दिया। सन्निवेश निर्माताओं ने भी अपने कौशल से सुन्दर 'सेट्स' बनाये। प्रकाश योजना में भी बहुत से सुधार हुए और वर्तमान समय के सामाजिक नाटकों के लिए अब वेश-भूषा में भी कमी न रही।

धीरे-धीरे प्रयोगों की संख्या बढ़ने लगी। घर घर जाकर टिकिट बेचने की प्रथा बंद हो गई। हास्य-प्रधान नाटकों के साथ साथ गम्भीर नाटक भी रंगमञ्च पर प्रविष्ट होने लगे और उनको भी उचित स्वागत मिलने लगा।

तब इस लेख के लेखक ने 'रंगीला राजा' नामक एक रूपान्तर 'इण्डियन नेशनल थियेटर' के नाटक ग्रुप को दिया । उस नाटक के फ़िरोज़ ग्रांधिया दिग्दर्शक थे, तथा एक बहुत सफल अभिनय सम्पन्न हुआ । पहले प्रयोग में ही इस नाटक ने प्रेक्षकों को पागल बना दिया । पुरानी रंगभूमि के नाटकों को कुछ लोग बीस बीस बार देखते थे, तो इस नाटक को भी पन्द्रह-बीस बार देखने वाले निकल पड़े और परिणाम-स्वरूप अभिनेताओं की उसी तालिका के साथ इस नाटक का १०१ बार प्रदर्शन हुआ और एक नया 'रेकर्ड' प्रस्थापित किया गया ।

इस लघु-लेख में उस नाटक से सम्बन्धित कलाकारों की नामावलि देना अनुचित नहीं माना जाएगा :

नाटक : रंगीला राजा
निर्माता : इण्डियन नेशनल थियेटर
रूपान्तरकार : धनसुखलाल मेहता
दिग्दर्शक : फिरोज़ आंटिया
अभिनेता / अभिनेत्रियाँ : मधुकर रांदेरिया, वनलता मेहता, जयंति पटेल, चारुबाला, कृष्णकान्त शाह, अरेच पावरी, नाजु दस्तूर, नाजु पावरी, एरीफ पे-मास्टर, ब्रजलाल पारीख, तारक मेहता, आसु पावरी आदि आदि ।
सन्निवेश : सुवर्ण कापड़िया और गौतम जोशी
प्रकाश योजना: दिलीप ठाकोर
मेक-अप : एन० एन० जोगलेकर
वेश-भूषा : हंसु मेहता
प्रचार : बरजोर पावरी
अन्य सहायक : प्राण जीवन राजपूत, पयकुमार जोशी, दिनेश कापड़िया, नगीन

इस समय कुछ संस्थाओं ने सुन्दर हास्य-प्रधान एवं गम्भीर नाटक अभिनीत किये और उनके प्रदर्शन भी अच्छी संख्या में हुए ।

उस समय श्रेष्ठ दिग्दर्शकों, योग्य अभिनेताओं तथा कुशल अभिनेत्रियों की कमी नहीं है । कमी है थियेटरों की, उत्तम मौलिक हास्य-प्रधान नाटकों की, सुन्दर मौलिक गम्भीर नाटकों की । थियेटरों का अभाव आसानी से दूर हो सके, ऐसा नहीं है । ओपन-एयर थियेटर इस समय मात्र एक है । कुछ छोटे ओपन-एयर थियटरों की अपेक्षा है । माइक-लाउड-स्पीकरों के उपयोग के बिना ऑडियन्स सब कुछ ठीक से सुन सके, ऐसे शास्त्रीय थियेटरों की बड़ी आवश्यकता है—भले वे छोटे ही हों । इन थियेटरों की माँग किसी भी रूप में यदि पूरी की जा सके तो मौलिक नाटककार स्वत: ही सामने आने लगेंगे, यह असम्भव नहीं है ।

सभी प्रकार के मौलिक नाटक—फ़ार्स, कॉमेडी, मेलोड्रामा और करुण नाटकों का अतीव

अभाव है । ये हों और इन सब को निभा लें, ऐसे उत्तम थियेटर हों, तो नयी गुजराती रंगभूमि देखते ही देखते उच्च शिखर पर पहुँच सकती है ।

रंगभूमि रसिकों के लाभार्थ कुछ दिग्दर्शकों की नामावलि देने का दु:साहस उचित तो नहीं, फिर भी कुछ नामों को देने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ:

दिग्दर्शक : अदा मर्मबान, फिरोज आँटिया, चन्द्रवदन भट्ट, विष्णुप्रसाद व्यास, प्रताप ओझा, कान्ति मडिया । *

मौलिक नाटकों के लेखकों में शिवकुमार जोशी और प्रागजी डोसा के नाम अग्रणी हैं ।

गुजराती हिन्दू तथा पारसी अभिनेताओं की नामावलि तो इतनी बड़ी हो जाने का भय है कि मैं देने का साहस नहीं कर सकता ।

लेखक अधिक श्रमपूर्वक अधिक अच्छे और विविध रसों के नाटक लिखें और सरकार किसी अधिक उपयोगी एवं सक्रिय रूप से सहयोग दे, तो नयी गुजराती रंगभूमि देखते ही देखते उच्चतम विकास प्राप्त कर सकती है, ऐसा मेरा विश्वास है ।

●●●

गुजराती साहित्य में ऐतिहासिक नाटक

•

नटवरलाल अम्बालाल व्यास

मध्यकालीन गुजराती साहित्य में नाटक की रचना नहीं होती थी। समर्थ महाकवि प्रेमानन्द के नाम पर तीन नाटक मिलते हैं, पर अब सभी ने स्वीकार कर ही लिया है कि इन नाटकों के लेखक महाकवि प्रेमानन्द नहीं थे। सर्वप्रथम गुजराती नाटक 'लक्ष्मी' (ई० स० १८५१ में) कविवर दलपतराम द्वारा लिखा गया। तदनन्तर रणछोड़भाई उदयराम ने कई सामजिक नाटक लिखे। गुजराती में नाट्य-साहित्य का निर्माण करने का श्रेय उन्हें ही मिलता है। फिर भी गुजराती साहित्य में ऐतिहासिक नाटकों की कमी

थी । गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान एवं 'Further milestones in Gujarati literature' के रचयिता श्री कृष्णलाल झवेरी ने ठीक ही कहा है:—Of historical plays there is a paucity in Gujarati literature.'

सर्वप्रथम कवि गणपतराम ने 'प्रताप' नामक ऐतिहासिक नाटक लिखा । कला की दृष्टि से कई त्रुटियाँ होने पर भी यह एक अत्यन्त लोकप्रिय नाटक रहा । इस नाटक में हमें 'प्रताप' का अत्यन्त उच्च पात्रालेखन मिलता है । गुजरात के आदि-विवेचक नवलराम पण्ड्या ने 'वीरमती' नामक ऐतिहासिक नाटक में मालवा के परमार वंश के जगदेव और वीरमती के उच्च चारित्र्य, धैर्य एवं शौर्य को खुलकर बताया है । यह नाटक अत्यन्त सुन्दर सम्भाषण एवं गीतों से भरपूर है । श्री झवेरी के अभिमतानुसार यह नवलराम की सर्वोतम साहित्य-कृति नहीं है; फिर भी गुजरात के ऐतिहासिक नाटकों में 'वीरमती' का कम महत्त्व नहीं है । 'वीरमती' नाटक गम्भीर है । फार्बस रचित 'रासमाला' में जगदेव परमार के अर्द्ध-ऐतिहासिक वृत्तान्त से इस नाटक की 'वस्तु' ली गयी है । इस नाटक की रचना निर्बल होने पर भी कविता तथा तरह-तरह की प्रकृति वाले पात्रों के आलेखन में लेखक को अच्छी सफलता मिली है ।[1]

दौलतराम कृपाराम पण्ड्या ने 'अमरसत्र' (प्रकाशन १६०२) नामक एक अर्द्ध-ऐतिहासिक नाटक लिखा है । 'अमरसत्र' की ऐतिहासिक कथावस्तु के साथ कई सामाजिक कथाएँ भी साथ-साथ चलती रहती हैं । इस नाटक में कथा-प्रवाह मन्द होने पर भी कई जगह रसयुक्त एवं आनन्द देने वाले प्रसंगों का चित्रण मिलता है ।

तदनन्तर बहुत समय तक सामाजिक उपदेश प्रधान नाटकों की गुजराती साहित्य में धूम रही । इसी समय में संस्कृत के महाकवि कालिदास और भवभूति के शाकुन्तल, उत्तर रामचरित तथा अन्यान्य नाटकों का कई व्यक्तियों द्वारा अनुवाद किया गया । नरभेराम प्राणजीवन ने शेक्सपियर के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक 'जूलियस सीज़र' का रूपान्तर किया और नारायण हेमचन्द्र ने ज्योतीन्द्र ठाकुर कृत बंगाली ऐतिहासिक करुणरस-प्रधान 'अश्रुमती' नाटक का गुजराती में अनुवाद किया । इस नाटक में कविता का अनुवाद सुप्रसिद्ध कवि श्री नरसिंहराव दीवेटिया ने किया था । नाटक के अनुवाद की सफलता का श्रेय श्री दीवेटिया को ही है । आज भी 'अश्रुमती' गुजराती साहित्य का एक सर्वोत्तम नाटक माना जाता है ।[2] इस नाटक के फरीद और शाहज़ादा सलीम शेक्सपियर के प्रसिद्ध पात्र Iago एवं Othello की याद दिलाते हैं । 'अश्रुमती' की तरह ही 'पुरुविक्रम' भी बंगाली से अनुवादित ऐतिहासिक नाटक है ।

---

[1] गुजराती साहित्यनी विकास-रेखा पृष्ठ ५०, डॉ० धीरूभाई ठाकर

[2] गुजराती साहित्यनी विकास-रेखा खण्ड २—पृष्ठ १४१, डॉ० धीरूभाई ठाकर

अहमदाबाद के भीमराव भोलानाथ दीवेटिया ने 'देवल देवी' (प्रकाशन ई० स० १८७५) नाम का मौलिक ऐतिहासिक नाटक लिखा। मराठी भाषा से गुजराती में अनुदीत होने वाले ऐतिहासिक नाटकों में 'माधवराव पेशवा' मुख्य हैं। इसी समय कवि सम्राट न्हानालाल दलपतराम कवि ने 'जया-जयन्त' और रमणभाई नीलकंठ ने 'राई नो पर्वत' नामक सुप्रसिद्ध नाटक लिखे। निर्व्याज मनोहर सामाजिक नाटकों के अतिरिक्त कवि न्हानालाल ने 'हर्षदेव' 'संघमित्रा' 'शाहानशाह अकबर शाह', 'जहाँगीर-नूरजहाँ, जैसे ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। कवि न्हानालाल के नाटक 'अपद्यागद्य' शैली में थे। उनके सभी नाटकों में अभिनय क्षमता का प्रमाण बहुत कम है। 'संघमित्रा' नाटक में सम्राट अशोक की अहिंसा का आवेश व्यक्त करने वाली 'विश्व कथा' है। शाहानशाह एवं 'जहाँगीर-नूरजहाँ' इस्लाम को समझने-समझाने को एक हिन्दू की सच्चे दिल की चेष्टा है। 'हर्ष देव' में कवि हमें भारतवर्ष के अतीत गौरव एवं 'हर्ष देव' की महत्ता का दिग्दर्शन कराता है। उनका प्रत्येक नाटक गौरवशाली है और यदि अभिनय-क्षमता के अतिरिक्त अन्य कसौटियों पर नाटकों को कसा जाय, तो निःसंदेह वे प्रथम पंक्ति में आसन प्राप्त करने के योग्य ठहरते हैं। न्हानालाल कवि के नाटकों को भावप्रधान नाटक—Lyrical Dramas—कहना ही उचित होगा।

श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने भी 'ध्रुवस्वामिनी' (प्रकट ई० स० १९२९) नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक लिखा। समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त भारत के प्रसिद्ध सम्राट थे। पर इन दोनों के बीच के समय में समुद्रगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त ने गुप्तों का राज्यदंड थोड़े समय के लिए अपने हाथों में ले लिया था, ऐसा नया अनुसंधान डॉ० सिल्वियन लेवी ने किया है। 'मुद्राराक्षस' के जगत्प्रसिद्ध लेखक विशाखदत्त ने रामगुप्त के अधम एवं निन्द्य कृत्यों के विषय में एक 'देवी चन्द्रगुप्तम्' नाटक संस्कृत में लिखा था। यह संस्कृत नाटक तो नहीं मिल सका, किन्तु इसी कथा वस्तु के आधार पर श्री मुन्शीजी इस नाटक की भूमिका में लिखते हैं :

'इस ('देवी चन्द्रगुप्तम्') नष्टप्रायः नाटक की वस्तु में, अन्य ऐतिहासिक एवं काल्पनिक घटनाएँ मिलकर नये स्वरूप मे यह नाटक लिखने की मैंने चेष्टा की है।' रचना एवं अभिनय-क्षमता, दोनों दृष्टिकोणों से—यह नाटक मुन्शीजी की नाट्य सर्जन-शक्ति को प्रकट करता है। चन्द्रगुप्त, रामगुप्त एवं ध्रुव देवी आदि पात्रों का आकर्षक आलेखन, चन्द्रगुप्त एवं ध्रुवस्वामिनी के तीव्र मनोमंथनों का हृदयंगम निरूपण, चन्द्रगुप्त के पागलपन का अद्भुत प्रसंग और सारे नाटक के दृढ़ निबन्धन से हमें प्रतीत होता है कि मुन्शीजी नाट्यकार के स्वरूप में कितने कल्पना-विहारी बन सकते हैं।[1] मुन्शीजी के नाटक साहित्य तत्त्व एवं अभिनय—दोनों दृष्टियों से उच्च सिद्ध हुए हैं।

गुजरात के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री रमणलाल वसंतलाल देसाई ने भी 'संयुक्ता'

---

१ गुजराती साहित्यनी विकास रेखा खंड-२, पृष्ठ २१२, डॉ० धीरूभाई ठाकर

नामक ऐतिहासिक नाटक लिखा है। 'संयुक्ता' अभिनय और कला की दृष्टि से एक उत्तम एवं सफल नाटक सिद्ध हो चुका है। इसमें 'संयुक्ता' और पृथ्वीराज चौहान के स्नेह का चित्रण अत्यन्त आकर्षक रीति से हुआ है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है। श्री देसाई ने एक ही ऐतिहासिक नाटक लिखा, परन्तु उसमें हमें कला के उच्च स्तर तथा सरल, मधुर एवं भावमयी शैली के दर्शन होते हैं। श्री झवेरचंद मेघाणी ने बंगला के प्रसिद्ध नाट्यकार श्री द्विजेन्द्रलाल रॉय के 'शाहजहाँ' तथा 'राणा प्रताप' ऐतिहासिक नाटकों का अनुवाद किया।

तदनन्तर प्रसिद्ध अभिनेता एवं नाट्यकार चन्द्रवदन मेहता ने 'सोना वाटकड़ी' नामक ऐतिहासिक एव 'धरागुर्जरी' नामक अर्द्ध-ऐतिहासिक नाटक लिखे। दोनों अभिनय नाटक की दृष्टि से सर्वांग सम्पूर्ण हैं; क्योंकि लेखक स्वयं एक अभिनेता होने से अभिनय के तत्त्वों से सुपरिचित है। अपने प्रत्येक नाटक में अभिनय के तत्त्व पर वे अधिक बल देते रहते हैं। श्री रसिकलाल परीख ने भी 'मेना गूर्जरी' नामक एक ऐतिहासिक नाटक लिखा है। इस नाटक का प्रधान विषय गूर्जरी नारी की वीरता, देहाती जीवन के आनन्द और दिल्ली के सुल्तान की अधमता है। ऐतिहासिक तथ्यों के साथ साथ ही लेखक ने लोक-साहित्य का भी पर्याप्त उपयोग किया है। श्री 'दर्शक' ने '१८५७' और 'जलियांवाला' नामक दो ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। '१८५७' में उस समय के ऐतिहासिक एवं सामाजिक जीवन से लेखक हमें परिचित कराता है। 'जलियांवाला' नाटक में अंग्रेज़ों की क्रूरता के साथ साथ उदयोन्मुख भारतीय संस्कृति का लेखक ने वर्णन किया है। श्री जशवन्त ठाकर के नाट्यसंग्रह 'रज़िया बेगम' में कई ऐतिहासिक एकांकी हैं। उपन्यास, नवलिका, इत्यादि अन्य साहित्य-प्रकारों की तरह ऐतिहासिक नाटक में विशेष देन लेखकों द्वारा नहीं हुई है। आशा है, इस विषय की ओर गुजरात के समर्थ साहित्यिकों का ध्यान जाएगा और वे अत्यन्त उच्च एवं कलामय, रसपूर्ण ऐतिहासिक नाटकों से गुर्जरी गिरा को विभूषित करेंगे।

● ● ●

स्वातन्त्र्योत्तर गुजराती कविता

ईश्वरचन्द्र देसाई

स्वातन्त्र्य प्राप्ति के पश्चात् देश की विभिन्न भाषाओं के साहित्य प्रवाहों में लक्ष्य एवं दिशा-वैभिन्य दिखाई देता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व साहित्यकारों के मार्ग में अनेक विघ्न थे। राजनीतिक पराधीनता एवं सामाजिक बन्धन उनकी मुक्त अभिव्यक्ति के मार्ग के रोड़े थे। उपयोगिता एवं उपदेश की प्रवृत्ति आवश्यक-सी मानी जाती थी। स्वातन्त्र्य ने केवल लालकिले-से ही ? ध्वज नहीं हटाया, कवि मानस में भी मुक्त तिरंगा फहराया। विश्व के विभिन्न देशों की संस्कृति एवं साहित्य-सौरभ ने भी इस देश में प्रवेश किया। कवियों ने कौतुहल से इसे देखा, संकोच-पूर्वक स्पर्श किया और अन्त में मुक्त उल्लास से स्पन्दन-साम्य को अभिव्यक्त किया।

यह बात देश के प्रायः सभी प्रादेशिक साहित्यों में सामान्य रूप से पाई जाती है। श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने उचित ही कहा है कि Poetry that truly belongs to any

period, depends very greatly on current emotions. (Literatures in Modern Indian Languages–P. 291.) आचार्य शुक्ल ने इसे जनता की चित्त-वृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब कहा था । कुछ भी हो, भारतीय जीवन में जिस प्रकार विविधता में अनस्यूत एकता के दर्शन होते हैं, साहित्य-क्षेत्र में भी ऐसा ही है । गुजराती साहित्य एवं गुजराती कविता भी भारत के अन्य साहित्य की तरह ही युगानुकूल करवटें बदलती रही है ।

स्वातन्त्र्योत्तर गुजराती कविता में हमें उस उच्छृंखलता के दर्शन नहीं होते, जो दबी हुई स्प्रिंग की-सी कुण्ठित मनोदशा की बंधन-मुक्ति की अवस्था में होती है । वास्तव में विषय नावीन्य एवं वर्ण्यवैविध्य की दृष्टि से यह प्रवाह पिछले दशक के काव्य प्रवाह का विस्तार ही है । सुन्दरम्, उमाशंकर, स्नेहरश्मि, माणेक, पतिल आदि ही की भांति इनका विषय पटल विस्तृत है, अनुभूति क्षेत्र विशाल है एवं अभिव्यक्ति शैली में भी वैविध्य है । आज की कविता अगेयता से गेयता की ओर, चिन्तन से उर्मि की ओर, प्रवहमान परिलक्षित होती है ।

इस काल में स्वातंत्र्य पूर्व के एवं अनेक नवीन कवियों की रचनाएं प्रकाशित होती रही हैं । इनमें से प्रमुख हैं—उमाशंकर जोशी का 'वसन्तवर्षा' काव्य संग्रह, राजेन्द्रशाह के 'ध्वनि', एवं 'आन्दोलन'; निरंजन भगत के 'छन्दोलय', 'किन्नरी', 'अल्पविराम' एवं '३३ काव्यो'; प्रियकान्त मणियार के 'प्रतीक' व 'अशब्द रात्रि'; जयंत पाठक कृत 'मर्मर' और 'संकेत्'; प्रजाराम रावल कृत 'पद्मा'; उशनस् के 'प्रसून', 'आर्द्रा' एवं 'मनोमुद्रा'; सुन्दरम् कृत 'यात्रा'; अनामी कृत 'काव्यसंहिता', 'चक्रवाक' तथा 'त्रिवेणी' तथा सुरेश जोशी ने जहाँ 'प्रत्यञ्चा' तानी है, तो हेमन्त देसाई केवल 'संकेत' करके रह जाते हैं । सुन्दरजी बेटाई 'तुलसी दल' की भेंट करते हैं तो वेणीभाई पुरोहित 'सिंजारव' देते हैं । सुप्रसिद्ध कवि करसनदास माणेक 'मध्याह्न' प्रकट करते हैं तो पिनाकिन ठाकोर 'आलाप' देते हैं । इनके अतिरिक्त नवतर कवि नलिन रावल, अनिरुद्ध ब्रह्मभट्ट, गुलाम मुहम्मद शेख, लाभशंकर ठाकर, प्रद्युम्न तन्ना, हरीन्द्र दवे, विनोद अध्वर्यु आदि के नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । साथ ही एक ओर गुजराती ग़ज़ल भी विकसित होती चली है । श्री ग़नी दहीवाला कृत 'गातां झरणां' तथा शेखादम आबूवाला कृत 'अजम्पो', 'चांदनी' और 'सोनेरी लट' ऐसी ही उल्लेखनीय कृतियां हैं ।

इनके काव्य का विषय-फलक अत्यन्त विस्तृत है । ये कवि छोटी-सी गिलहरी से लेकर गाय, हाथी और अश्व को भी अपनी संवेदना का माध्यम बना लेते हैं तो दूसरी ओर पतझड़, पूर्णिमा, बवडण्र और बसन्त भी इनके आकर्षण का केन्द्र बनते हैं । तीसरी ओर मानस क्षितिज को संसार क्षितिज तक विस्तृत कर कवि 'रिल्केनु' मृत्यु' और 'ब्रिटानिया' पर भी काव्य रचते हैं । हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि 'नीरज' यदि 'नील की बेटी क पाती' लिखते हैं तो गुजराती के निरंजन भगत ब्रिटेन द्वारा अणु प्रयोग किये जाने पर क्षुब्ध हृदय से कहते हैं—

'ब्रिटानिया ! एटमबॉम्ब फोड़यो ?'
और प्रश्न करते हैं—

पृथ्वी परे श्रेष्ठ प्रजा तुं चारसो
वर्षोथकी ने तुज भव्य वारसो
संस्कारनो, संयम केम छोड़यो ?

[हे बरतानिया ! तूने एटमबम फोड़ा········? इस पृथ्वी पर तू श्रेष्ठ प्रजा के रूप में प्रसिद्ध था ! तुमने संस्कार व संयम की उस विरासत का त्याग क्यों किया ?]

कविहृदय विश्वहृदय हो उठता है और मानव समाज का प्रहरी बनकर चेतावनी देता है—

जो अंतमां अन्य प्रयोग निष्फल
आ मानव संस्कृतिनो जशे ? छल !
आ वंचना ! केवल आत्म भोग !
प्हेल्लो धड़ाको ! नव आंख रोई ?
छेल्लो धड़ाको सुणशे न कोई !

[यदि अन्त में मानव संस्कृति के ये अन्य प्रयोग असफल रहेंगे तो रह जाएगा केवल छल, यह वंचना एवं केवल आत्मभोग ! प्रथम विस्फोट के समय आंखें रोई नहीं हैं तो अन्तिम विस्फोट कोई नहीं सुनेगा ।]

इसी प्रकार संवेदनशील कवि हाथी को देखकर उसके भव्य अतीत एवं धूम्रमय वर्तमान की तुलना करते हुए व्यग्र स्वर में कहते हैं—

'अचिंत क्यांथी
अहीं आम हाथी ?
ते वृद्ध
को पर्वतना सरीखो !
वह्यु जतुं क्यां वटवृक्ष झूलतुं ?

[अकस्मात् ही यहाँ ऐसे ये हाथी कैसे ? वह भी वृद्ध, किसी पहाड़ जैसा ! या यह वटवृक्ष कहीं झूलता हुआ जा रहा है क्या ?]

और आज वह हल्के पदचाप से तारकोल की सड़क पर चला जा रहा है । लोगों को उसकी ओर देखने की भी परवाह नहीं है । वे तो—

निरांतथी लेमन लोक पीतां
होटेलमां ने भणता समे आ
निशाळमां तो सहु छोकरां ओ;
सिगारना धुम्र समो वही गयो ।

[होटल में लोग इतने इत्मीनान से लेमन पी रहे थे और सब बालक इस समय स्कूल में पढ़ रहे थे । वह (हाथी) सिगरेट के धुएं की तरह बढ़ गया ।]

आधुनिक भारतीय समाज की स्नेहहीनता एवं प्राचीन गरिमा की उपेक्षा से कवि क्षुब्ध हैं। कवि यथार्थ को अत्यन्त आत्मीयता से देखने लगे हैं। मार्ग के कोने में खड़ी पागुर करती हुई अतिकृश 'एक गाय' को देखकर प्रियकान्त मणियार लिखते हैं—

—क्यां कथी
भूली पड़ो आवे हवा बस; तृण नथी
चोमेरमांये; तप्त कण छे रेतना; तड़को पड्यो;
त्यां काय तो केवळ रही कृश हाडकांनो माळखो
ने ए छतां ए श्वास लेती (जेनी तो अचरज थती)
—हाथमां आवी गयेला मृत्युने वागोळती !

कहीं से भूलकर बस हवा आ रही है, चारों ओर कहीं तृण नहीं हैं; रेत के तप्त कण हैं, धूप निकली; उसकी देह तो केवल हड्डियों का कृश कंकाल बनी रही है फिर भी यह श्वास ले रही है (उसीका आश्चर्य है) हाथ में आयी हुई मृत्यु को पागुरती है।

इसी आत्मीयतापूर्ण दर्शन ने नवीन कवियों का एक विशिष्ट स्थान बना दिया है। उनकी देन के विषय में सुप्रसिद्ध कवि एवं आलोचक श्री उमाशंकर जोशी ने लिखा है '१९४०-'५० गाळानी नवतर कवितामां जे अंश कंइक खूटतो लागतो हतो ते, यथार्थनुं वधु आत्मीयता-भर्युं दर्शन, मणियारनी '(काणावाळो) पैसो' करतां पण आ 'एक गाय' जेवी कृतिमां अचूकपणे जोवा मळे छे'' [अभिरुचि-पृ० १४७]

[१९४०-५० की कालावधि की नवीनतर कविता में जिस अंश का अभाव लगता था, वह यथार्थ का अधिक आत्मीयतापूर्ण दर्शन, मणियार की '(छेदवाला) पैसा' से भी इस 'एक गाय' जैसी कृतियों में निश्चित् रूप से अधिक दिखाई देता है।]

इसी प्रकार वैज्ञानिक युग ने कवि की संवेदना पर जड़ता के या बौद्धिकता के स्तर लादने के स्थान पर उनकी संवेदना को जगाया है, सूक्ष्मतम स्पन्दन को स्पन्दित होने की क्षमता दी है। कवि निरंजन भगत गुलाब की गंध से घायल हो जाते हैं तो उमाशंकर जोशी के हृदय पर अनजान में ही चाँदनी चोट कर जाती है और वे प्रश्न करते हैं—

मने चांदनीनी छालक वागी
अजाणतामा हैयाने चोट क्यांथी लागी ?
आभना सरोवरे चांदनी शी उछळे !
अमृतना ओघ शे समाशे ए लोचने ?—
शोचुं भरुखडे हुं नेहभींजी पांपणे।
क्यांथी आवी छालक एक वागी !
सुहागी हुं तो स्नेह केरां सपनामां जागी मने—

[मुझे चाँदनी की छलक लगी, अनजान में ही हृदय को चोट कहाँ से लगी ? आकाश-सरोवर में चाँदनी कैसी उछल रही है। इन आँखों में अमृत के समूह कैसे

समाएँगे ? मैं तो स्नेह-गीली बरौनी से झरोखों में खड़ी सोच रही थी कि कहाँ से आकर यह छलक लग गई ! हे सुहागी ! मैं तो स्नेह के स्वप्न में जाग उठी ।]

इसी प्रकार कवि को पूर्णिमा का प्रकाश भी पसन्द नहीं आता, चाँदनी उन्हें कचोटती है और प्रियतमा की याद दिलाती है । दूसरी ओर संसार यात्रा पर निकले हुए कवि एस. एस. चुसान नव-नवीन देशों को, वेशों को एवं भाषाओं को पहचान कर अन्त में अपने अनुभवी एवं भावों के निचोड़ रूप विश्वैकता या विश्व मानवता की सबल शब्दों में स्थापना करते हुए कहते हैं—

ज्यां ज्यां त्यां मनुबाल एने (चित्त को)
सामो मळे । हास्य विलाप आशा
सर्वत्र ते मानवनां लसी रहे ।
अहो कशी मनुष्य दिव्यता आ !
लसी रही दिव्य मनुष्यता आ !

[जहाँ भी वह जाता है, उसे (चित्तको) मधुबाल सामने मिलता है, सर्वत्र उसी मानव के हास्य, विलाप आशा शोभित हैं । अरे ! मनुष्य की यह कैसी दिव्यता है ? यह दिव्य मनुष्यता ही तो शोभित हो रही है !]

और अन्त में स्पष्टतया घोषणा करते हैं—

छे सर्व मारां स्वजनो, जवुं ज्यां ।
नवा नथी लोक नवा न देश,
भाषा नवी ना, नहि नव्य वेश ।

[मैं जहाँ भी जाता हूँ, सभी मेरे स्वजन ही हैं । न कोई लोग नये हैं, न देश नया है, न भाषा नयी है, न नवीन वेश है ।]

इस प्रकार आज का काव्य क्षितिज प्रान्तों एवं देशों को पार कर विश्व-क्षितिज बन गया है ।

किन्तु इन नवीन तत्वों के साथ ही आधुनिक गुजराती कविता के प्रणय और भक्ति भी प्रमुख विषय बने हैं । प्राचीन भजन एवं लोकगीतों की लय का प्रयोग भी बढ़ता जाता है । यही नहीं वर्ण्य विषय भी परम्परित से चलते रहे हैं । सुन्दरम्, राजेन्द्र शाह और पिनाकिन ठाकोर जैसे कवि तो प्रणय एवं भक्ति के संवेदनों को खड़ी बोली ब्रज या मारवाड़ी लय में भी लिखते हैं । जैसे—

हो साँवर तोरी अंखियन में जोबनियुं झूके लाल, नागर साँवरियो ।
मोरी भीजे चोरी चुन्दरिया तुं ऐसो रंग न डाल, नागर सांवरियो ।

हे साँवरिया ! तेरी आँखों में अनुरागपूर्ण यौवन झुका हुआ है । तू ऐसा रंग न डाल, मेरी चोली व चुनरी भीग रही है ।

—(राजेन्द्र शाह : ध्वनि, पृष्ठ १३८)

तो दूसरी ओर नाथों और सन्तों की भाँति 'सुषुम्ना' 'अनहद' और 'सबद' की स्मृति दिलाते हुए कवि गाते हैं—

मारी सुषमणा नो तार,
एनो कोण बजवणहार ?
मारी झंखना अपार !
नयणा ए भेद नहि जाणियो हो जी ।

[मेरी सुषुम्ना के तार का बजाने वाला कौन है ? जानने की उत्कट अभिलाषा है । मेरे नयनों ने यह भेद नहीं जाना ।]

अगम्य तत्त्व की जिज्ञासा सुन्दरम्, राजेन्द्र, पूजालाल, प्रजाराम, पिनाकिन, मकरंद आदि सभी में है । इसके साथ ही लोकगीत की लय पर ग्रामीण युवतियों की ही अनुभूति की झंकार उठाते हुए गाते हैं—

इंधणा बीणवा गेती मोरी सैयर,
इंधणा बीणवा गई'ती रे लोल,
वेळा बप्पोरनी थेती मोरी सैयर,
वेळा बप्पोरनी थई'ती रे लोल ।

[हे सखी ! मैं तो इंधन बीनने के लिए गई थी । दोपहर की बेला थी । हे सखी ! दोपहर हुई थी, उस समय ।]

कभी हवा में उड़ती हुई साड़ी से उलझन में फंसी हुई मुग्धा की अनुभूति कहीं व्यक्त हुई है, तो कहीं वन के एकान्त मार्ग में सताती हुई हवा की फरियाद करती हुई नारी गाती है— वायरे वगडा मां घेरी ।

राजेन्द्र शाह ने प्रणयमुग्ध नारी की विविध अनुभूतियों को आकर्षक ढंग से व्यक्त किया है । उनके प्रणय मधुर चित्र, मुग्धा की मुग्धता एवं सूक्ष्म स्पन्दन लोक-प्रचलित लय पर ऐसे झंकृत हुए हैं कि उनकी झंकार रेडियो एवं गुर्जर जिह्वा पर चिरकाल तक खेलती रहेगी ।

स्वातंत्र्योत्तर काल में मुशाइरे तथा काव्यपाठ रेडियो द्वारा एवं अन्य समारम्भों में भी होने लगे हैं । इससे एक ओर तो जनता में काव्य-श्रवण-रुचि बढ़ी है, तो दूसरी ओर रचना पक्ष में काव्यस्वरूप पर भी इनका विशेष प्रभाव पड़ा है । गेयता, ध्वनि, माधुर्य, शब्द-शक्ति आदि की वृद्धि के साथ ही इनमें उक्ति-वैचित्र्य और बुद्धिचापल्य की प्रवृत्ति बढ़ी है । अस्फुट हास्य, विनोदपूर्ण शैली तथा वक्र वर्णन की प्रवृत्ति का एक आदर्श उदाहरण है : बालकृष्ण दुबे कृत 'वडोदरा नगरी' नामक काव्य । कवि इस नगर की नारी के प्रभाव का तथा तत्सम्बन्धी निजी अनुभूति का वर्णन करते हुए कहते हैं—

शरद नी राते अहीं पोळतणा चोकठामां,
सरखी सहेलीओए कण्ठ ज्यारे खोल्यो छे ।

कायाना करण्डियामां पोढेलो आ प्राण मारो,
मोरलीना नादे त्यारे नाग जेम डोल्यो छे ।

[शरद् की रात में जब इस मुहल्ले में समवयस्क सहेलियों ने कंठ खोला है, अर्थात् तान छोड़ी है, तब काया रूपी टोकरे में सुप्त मेरे प्राण, उस मुरली-नाद से नाग की नाईं डोले हैं ।]

और आगे बड़ौदा की नारी का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—

नागर वेली ना जेवी नाजुकडी नार वांकी,
वांको एनो अंबोड़ो ने वांकां एनां वेण छे ।
सभानी अदब राखी वाणी ने लगाम करूं,
के'तो नथी एटलुं के केवां एना नेण छे ।

[नागरबेल की-सी नाज़ुक व बाँकी नारी है । उसका जूड़ा बाँका है व वाणी भी बाँकी है । सभा के अदब के लिए मैं वाणी को लगाम लगाता हूँ और यह नहीं बताता कि उसके नयन कैसे हैं ?]

गुजराती के आधुनिक युग के प्रथम कवि दलपत की 'सभारंजनी' शैली इस प्रकार पुनः आधुनिक रस दृष्टि लेकर आई है । गज़लों ने इसे और भी बल दिया है । यद्यपि गुजरात के सुप्रसिद्ध गज़लकार 'अमीन आज़ाद' बड़े ही निराशापूर्ण स्वर में गाते हैं—

गुजरात मां अमारी हालत 'अमीन' ए छे,
जाणे गज़ल - सितारा चमकी खरी जवाना ।

[गुजरात में 'अमीन' हमारी हालत यह है जैसे गज़ल के सितारे चमक कर गिर जाएँगे ।]

दूसरी ओर अभी अभी जिनकी मृत्यु हुई है, वे गुर्जर-गज़ल-सम्राट 'शयदा' गाते हैं—

गिरा गुर्जरी ! आ नथी शेर मारा,
हृदय ना छे टुकड़ा ! हुं चरणे धरूं छुं ।

[गिरा गुर्जरी ! यह मेरे 'शेर' नहीं हैं । ये तो हृदय के टुकड़े हैं । इन्हें मैं तुम्हारे चरणों में चढ़ा रहा हूँ ।]

और वास्तव में गज़ल अब दिन-प्रतिदिन की घटनाओं, सहज हास्य एवं अश्रुसिक्त करुणा को भी व्यक्त करती है । नवीन गज़लकार गुजरात के गज़-लबाग को आशास्पद सहयोग दे रहे हैं ।

इनके साथ ही अभिव्यक्ति पक्ष में बौद्धिकता एवं वैज्ञानिकता के दर्शन भी होते हैं । कवि अपनी गणितिक दृष्टि से प्रेम को परखते हुए लिखते हैं—

अपूर्णांकोनूं ना गणित कदिये प्रेम भणतो,
अने कोइनुं ये हृदय नहि ए पूर्ण गणतो;
पछी तो बीजा ने निज हृदय पोतेज धरवुं,
नही तो जीती लै अवर्जननुं, पूर्ण करवुं ।

[प्रेम कभी अपूर्णांकों का गणित नहीं पढ़ता, और वह किसी के भी हृदय को पूर्ण नहीं मानता; फिर तो दूसरों को अपने हृदय में ही रख ले या फिर दूसरे का जीतकर पूर्ण कर लें ।]

इसी प्रकार जीवन को भी गणित की बैजिक-संख्या की भाँति कवि जन्म और मृत्यु के दो कोष्ठकों (Brackets) के मध्य प्रवाहित देखते हैं—

जन्म मृत्यु कौंस बे,
वच्चे वहे आ जीन्दगी;

[जन्म और मृत्यु के दो कोष्ठकों (Brackets) के मध्य यह जीवन प्रवाहित है ।]

और पुनः व्याकरण की दृष्टि से उसमें वाक्य, वाक्यांश, उसकी पूर्णता, अपूर्णता आदि की खोज करते हुए लिखते हैं—

जे व्याकरण थी - पूर्ण - ना ते वाक्य जेवी,
लय न जेने, के न जेने चिह्न कोई विराम नुं,
ना अल्प के ना पूर्ण, ना आश्चर्य के प्रश्नार्थ नुं;
ने एकलानो अर्थ पण ना !

[जो व्याकरण की दृष्टि से पूर्ण नहीं है, उस वाक्य जैसी, जिसमें न लय है, न कोई विरामचिह्न है, न अल्प है, न पूर्ण है, न आश्चर्य का चिह्न है, न प्रश्नवाचक है, और अकेले का अर्थ भी नहीं ।]

फिर भी जीवन अन्तराल में निवसित वाक्य के अर्थ में, सम्वाद में, व सौन्दर्य में, शुद्धि और वृद्धि करना है ।

इसी प्रकार काव्य में बीच बीच में कोष्ठकों द्वारा आलोचन एवं संकेत की प्रथा भी स्वातन्त्र्योतर काव्य में पाई जाती है । यथा—

लावो तमारो हाथ, मेळवीए
(कहुं छुं हाथ लंबावी) ।

[लाइये आपका हाथ, मिला लें (कहता हूँ हाथ आगे बढ़ाकर) ।]

विविध विराम चिह्नों का सांकेतिक व विशिष्टार्थ प्रयोग, चित्रात्मक शब्द गन, उपमान नावीन्य, छन्द प्रवाहिता आदि इस काल के काव्य की विशेषताएँ हैं ।

इस प्रकार स्वातन्त्र्योत्तर गुजराती कविता में वर्ण्य-क्षितिज के विस्तार के साथ संवेदन-सूक्ष्मता व भावगहनता के दर्शन होते हैं, तो दूसरी ओर मानवैक्यता का स्वर भी पुष्ट होता हुआ नजर आ रहा है । अभिव्यक्ति के भावानुकूल स्वतन्त्रता के भी दर्शन होते हैं । संक्षेप में स्वातन्त्र्योत्तर गुजराती कविता वास्तव में जीवन के निकटतर आने लगी है और काव्य विकास का यह सराहनीय पक्ष है ।

● ● ●

आधुनिक गुजराती कविता

लेखक : जयन्त पाठक
अनु० : अरविन्द कुमार देसाई

आधुनिक गुजराती कविता ने पिछले चालीस वर्षों में विषय और अभिव्यक्ति के क्षेत्र में जो प्रयोग किये हैं, उनकी सफलता तथा असफलता की सम्पूर्ण रीति से आलोचना करना अत्यन्त रसदायक है। आधुनिक कविता के प्रारम्भकर्त्ता दलपतराम और नर्मदाशंकर ने गुजराती कविता को रूढ़ भक्ति तथा तत्त्व-ज्ञान के क्षेत्र से मुक्त करके उसे लौकिक विषयों की ओर प्रवृत्त किया। उनकी काव्य-प्रवृत्ति ने समाज को कविताभिमुख और कविता को समाजाभिमुख किया। दलपतराम ने कविता में संस्कृत-छन्दों का प्रचार करके गुजराती कविता को नयी दिशा दी। इस शैली से कविता के बाह्य तत्त्वों में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। अंग्रेज़ी साहित्य के परिचय से और प्रेरणा से नर्मद ने विविध काव्य भेदों के प्रयोग किये और गुजराती साहित्य में अंग्रेज़ी कविता के अनुरूप ऊर्मि काव्य

लिखे तथा महाकाव्य लिखने का प्रयत्न किया। दोनों कवियों ने जगत् की सभी वस्तुओं और घटनाओं को काव्य-विषय बनाया। इससे विषय के सम्बन्ध में गुजराती कविता की व्यापकता में वृद्धि हुई, किन्तु व्यापकता के परिणाम में गहनता न आ सकी। इस गहनता के अभाव के लिए उन कवियों को उत्तरदायी नहीं माना जा सकता। तत्कालीन भाषा विषयक स्थिति भी कवियों को मर्यादित रखने का कार्य कर रही थी। उन्हें गुजराती भाषा को विविध विषयों और काव्य-भेदों के लिए तैयार करना था। इस क्षेत्र में उन्हें बुनियादी काम करना था, जिसे उन्होंने सफलता के साथ किया है। आधुनिक गुजराती कविता का यह सद्‌भाग्य है कि उसे आरम्भ में ही दलपत और नर्मद जैसे दो भिन्न रुचि, वृत्ति और संस्कार वाले कवि उपलब्ध हुए। दलपतराम संस्कृत वृत्त, ब्रज भाषा की कविता के अभ्यासी और पूर्वीय संस्कृति व जीवन-दृष्टि के प्रतिनिधि हैं, तो नर्मद अंग्रेज़ी कविता के अभ्यासी और पाश्चात्य संस्कृति व जीवन-दृष्टि के पुरस्कर्त्ता हैं। दोनों की काव्य प्रवृत्ति समकालीन है, अतः स्वभावतः ही इन दोनों प्रवाहों के संगम का आधुनिक गुजराती कविता के स्वरूप पर समन्वित प्रभाव पड़ा। इसीलिए आधुनिक गुजराती कविता की आदि प्रेरकशक्ति बनने का यश केवल दलपत अथवा केवल नर्मद को न देकर, दलपत-नर्मद की संयुक्त काव्य भावना तथा काव्य प्रवृत्ति को दिया जाता है।

दलपत-नर्मद के बाद पण्डित-युग में गुजराती कविता अधिक शुद्ध और कलापूर्ण बनी है। विश्वविद्यालयों से शिक्षा-प्राप्त, अंग्रेज़ी और संस्कृत साहित्य का विशाल व गहन ज्ञान प्राप्त करने वाले कवियों ने दोनों शैलियों में दलपत-नर्मद की सभारंजनी लोकोद्‌बोधक व लोकोपयोगी कविता स्वाभाविक रूप से ही नीची कोटि की प्रतीत हुई और इसके प्रत्याघात रूप में ये कवि काव्य-विषय के सम्बन्ध में अधिक संकोच दिखाने लगे। पण्डित युग की कविता में प्रकृति, परमेश्वर और प्रणय प्रमुख विषय बन गये। सामाजिक विषयों में भी प्रेम-विवाह, वैवाहिक प्रेम, बाल-विवाह और विधवा-विवाह जैसे स्त्री-पुरुष सम्बन्धी विषय तक ही मर्यादित रह गये हैं। जीवन के अन्य अनेक सामाजिक, राजकीय और संस्कृति के उलझन भरे विषयों से वह प्रायः अलग ही रही है। उद्योग व यान्त्रिक-संस्कृति उस समय प्रारम्भिक अवस्था में ही थी, अतः इस क्षेत्र के अधिकांश प्रश्न उपस्थित ही नहीं हुए थे, अथवा समाज के विशाल वर्ग को स्पर्श करने योग्य व्यापक नहीं बन पाये थे। कविता में कला के उन्नत ध्येय को लक्ष्य बनाने वाले इस युग के कवियों का सर्जन दलपत-नर्मद की कविता-सा सरल न था, और अपनी उच्चशिक्षा के कारण ये कवि नीची कोटि के मानवों के प्रति कुछ अवहेलना का भाव भी रखते थे, जिससे इस काल की कविता पिछले युग की कविता के सदृश लोकप्रिय और समाजाभिमुख न रह सकी। फिर भी दलपत-नर्मद की कविता के भावकों की अपेक्षा पण्डितयुग की कविता के भावक अधिक शिक्षित व संस्कारी होने के कारण उच्च कविता की परख और अभिरुचि इस काल में अधिक बढ़ी प्रतीत होती है। गुजरात के भावक और संस्कारी

पाठकों ने कलापी तथा नान्हालाल की कविताओं का इतना समादर किया कि उन्हें लोक-प्रिय कवि कहने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती ।

कविता की अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में दलपत-नर्मद ने जो कार्य किया था, उसे पण्डित युग के कवियों ने आगे बढ़ाया । किसी एक ही कृति में भावानुसारी विविध वृत्तों का और वर्ण-वृत्तों का इस युग में विशेष प्रचार हुआ । नर्मद ने महाकाव्य लिखने की अभिलाषा से 'वीरवृत्त' नामक वृत्त की योजना की । उसके बाद पण्डित युग में इस सम्बन्ध में अधिक ठोस और अभिज्ञतापूर्ण प्रयत्न हुए । केशवलाल ध्रुव, बलवन्तराम ठाकोर और खबरदार आदि ने दीर्घ, चिन्तनप्रधान तथा नाटयात्मक कृतियों के लिए विविध छन्दों का प्रयोग किया और नान्हालाल ने 'डोलन शैली' के नाम से एक नये वाहक को जन्म दिया । वर्णवृत्तों के साथ ही हरिगीत और झूलना जैसे मात्रिक छन्दो को अभ्यस्त करके भावाभिव्यक्ति को साधने मे कान्त, नान्हालाल तथा ठाकोर आदि को पर्याप्त सफलता मिली है । कविता की पंक्तियों में अर्थानुकूल विरामचिह्नों का प्रयोग भी कान्त से ही आरम्भ हुआ है । इन कवियो में से नान्हालाल के अतिरिक्त शेष सभी कवियों ने काव्य के वाहन के रूप में पद्य को ही स्वीकार करके उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी कर लिये हैं । दलपत-नर्मद के साथ ही गुजराती कविता में संस्कृत के साथ फारसी शब्दों ने भी प्रवेश पाया है; पण्डित युग मे इस क्षेत्र में भी वृद्धि हुई है । इसका कारण उस भाषा की ज्ञान-वृद्धि है । बालाशंकर, मणिलाल, कलापी, मस्तकवि त्रिभुवन आदि ने फारसी शब्दों और पद्य प्रकारों का प्रयोग किया है, तो नरसिंहराव, नान्हालाल, कान्त और ठाकोर ने संस्कृत भाषा, छन्द तथा पद्य प्रकारो के द्वारा गुजराती कविता को समृद्ध और सत्त्वशील बनाया है । खण्डकाव्य एवं विवध प्रकार के सोनेट भी इमी काल की उपज हैं । पण्डितयुग के अनेक कवियों की सर्जन-प्रवृत्ति इस सदी के चौथे या पाँचवें दशक तक चलती रही है, अत: उनकी कविता में अद्यतन राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों तथा घटनाओं के साथ साहित्य, समाज, राज्य और संस्कृति के क्षेत्र मे पैदा हुए नये तत्त्वों का भी समावेश हो गया है । पण्डितयुग की कविता में कला का आग्रह है, भाव-भक्ति है; जीवन के सनातन-मूल्यों का आदर है । इसमें मनुष्य के गौरव का गान है, किन्तु ईश्वर का इन्कार नहीं है ।

पण्डितयुग और नयी कविता को मिलानेवाली कड़ी प्रोफेसर ठाकोर हैं । गत सदी के अन्तिम दशक में प्रारम्भ हुई उनकी काव्य-प्रवृत्ति इस सदी के प्रथम पचास वर्षों तक चलती रही है । इन साठ वर्षों में गुजराती कविता ने जो विकास साधा है, उसकी एक महत्त्वपूर्ण प्रेरक शक्ति प्रो० ठाकोर हैं । उनकी काव्य भावना व उच्च कला के आग्रह ने गुजरात की काव्य-रुचि को गढ़ने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । पृथ्वी व अन्य संस्कृत वर्ण-वृत्तों को प्रवाहशीलता देकर इन वृत्तों को अनुनेय बनाया और विविध पद्य-प्रकारों के लिए अवकाश उपस्थित कर दिया । उनका मन प्रयोग-तत्पर और प्रयोग-पटु

होते हुए भी कविता व कला की शुद्ध तथा उच्च भावना का आग्रही था, इसीलिए उनके द्वारा तुच्छ अथवा हीन सर्जन नहीं हो पाया है। सोनेट व दीर्घ मनन-काव्य प्रो० ठाकोर की गुजराती कविता को विशिष्ट देन हैं।

ठाकोर की, और कुछ अंशों में नान्हालाल की भी सबसे विशिष्ट सेवा तो यह है कि उन्होंने अनेक आघात देकर गुजराती कविता को जड़ता व परम्परा की भक्ति से मुक्त किया। कलातत्त्व की पूर्ण जागृति के साथ उन्होंने जो प्रयोग किये, उससे नयी पीढ़ी के कवियों के लिए एक विशाल क्षेत्र खुल गया। जिस भाँति, जीवन में गाँधीजी के प्रभाव से सम्पूर्ण मुक्ति की अभिलाषा उत्पन्न हुई, उसी प्रकार साहित्य-सर्जन में प्रो० ठाकोर के प्रयोगों से कुछ नवीन कर दिखाने की प्रेरणा कवियों को मिली।

कविता के दो अंग—शब्द और अर्थ,में मे अर्थ की ओर ही प्रो० ठाकोर का झुकाव होने के नाते उनकी कविता के शब्द सदैव ही सुभग नहीं रह पाते हैं। प्रारम्भिक कविताओं में शब्द-चुनाव, शब्द-विन्यास तथा भाषा-माधुर्य का उन्होंने जितना ध्यान रखा है, उतना बाद की कविताओं में नहीं। अर्थ के लिए उपकारी बनाने के आग्रह में कभी-कभी वे शब्द-सौन्दर्य की भी अवहेलना कर देते हैं और शब्दों को तोड़-मरोड़ कर हानि पहुँचाने में भी संकोच नहीं करते। फिर भी अर्थ-साधक व अर्थ-पोषक शब्दों की पसन्दगी में उनकी कुशलता प्रशस्य है। शब्द को गौणता देकर उन्होंने नये कवियों को उबार लिया है और शुद्ध काव्य-तत्त्व तथा वाग्विलास के बीच विवेक करने की दृष्टि दी है।

सन् १९२० से १९३० का काल काव्य के क्षेत्र में मन्दी का काल है। पण्डित युग के कवियों का बहुत कुछ उत्कृष्ट सर्जन इससे पूर्व ही हो चुका था। इस काल में काव्य प्रवृत्ति आरम्भ करने वाले शेष, स्नेहरश्मि, मेघाणी और चन्द्रवदन आदि की कविताएँ पण्डित युग और नयी कविता का मिश्र प्रभाव लिये हुए हैं। नान्हालाल की डोलन शैली का प्रयोग केशव ह० शेठ ने किया है; किन्तु उसका प्रभाव निरन्तर घटता रहा है और गीति तथा रास में नान्हालाल का प्रभाव बढ़ता हुआ दृष्टिगोचर होता है। ललित, जनार्दन प्रभास्कर, केशव ह० शेठ तथा देशलजी परमार की गेय कृतियों में नान्हालाल का भाषा वैभव, लय-मंजुलता व लालित्य का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इस काल को गुजराती कविता का संक्रान्तिकाल कहना अधिक उचित होगा। नान्हालाल, नरसिंहराव और कलापी की कविता का आकर्षण क्रमशः घटता गया है और पण्डित युग में किंचित उपेक्षित व अनाकर्षक प्रो० ठाकोर तथा कान्त की कविता आदर प्राप्त करने लगी है। शेष, स्नेहरश्मि एवं चन्द्रवदन, प्रो० ठाकोर के द्वारा प्रचारित पृथ्वी छन्द और सोनेट को स्वीकार करके कविता में अगेयता, अर्थप्रधानता तथा चिन्तनात्मकता को पुरस्कृत करते हैं। गांधीजी के प्रभाव से प्रजा-जीवन में आई हुई जागृति के स्वर भी इन कविताओं में सुनाई देने लगे हैं। कवि लोक-जीवन और लोक-साहित्य के प्रति अभिमुख बनता है, जिससे सामान्य जनता का जीवन तथा साहित्य काव्य-प्रेरणा का मुख्य

साधन बन जाता है। मेघाणी और सुन्दरम् अपनी कृतियों में लोकवाणी की विविध छटा दिखाते हैं और अब तक उपेक्षित समाज में नीची जाति के कहे जाने वाले व्यक्तियों के सुख-दुःख व विविध प्रश्नों को काव्य-विषय बनाते हैं।

इस दशक में अंकुर रूप में दिखाई देने वाले ये सब लक्षण सन् १९३० के बाद की कविता में पूर्ण विकसित हो जाते हैं। अब कवि और जनता का, तथा कविता और जीवन का सम्बन्ध अधिक निकट का होने लगा है। कविता जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त होने को प्रवृत्त होती है। एक ओर प्रो० ठाकोर के काव्य-प्रयोग नये कवियों के लिए दिशा सूचित कर देते हैं, तो दूसरी ओर गाँधीजी व उनके स्वातन्त्र्य-युद्ध जीवन के अनेक प्रदेशों के द्वार कविता के लिए खोल देते हैं। इसके साथ ही देश-विदेशों की सामाजिक, राजकीय व सांस्कृतिक प्रवृत्तियों तथा कवियों की अन्य देशों की कविता के प्रति अधिक जागृति के कारण भी उनकी दृष्टि विशाल एवं गहन बन जाती है। नर्मद-दलपत युग का विषय-वैविध्य इस कविता में पुनः देखा जा सकता है, किन्तु ज्ञान में, काव्य-कला को समझने में और भाषा आदि काव्य की उपादान सामग्री में यह नया कवि अधिक सम्पन्न होने के कारण इनकी कृतियों में सूक्ष्मता, कलातत्व और सुघड़ता दिखाई देती है। भाषा, छंद अलंकार आदि में प्रयोगशील व स्वातन्त्र्यप्रिय कवि-मानस अधिक परिवर्तन कर पाया है। यह विषयोचित वस्तु के लिए योग्य भाषा का प्रयोग कर सकता है। कभी संस्कृत भाषा-शैली का प्रयोग करता है, तो कभी लोक-बोली और लोक-शैली के विविध प्रयोग भी करता है। कविता में भव्यता वा गम्भीरता का उसे आग्रह नहीं है, परन्तु भव्यता व गम्भीरता का आग्रह कराने वाली रचना वह कर सकता है। साथ ही अत्यन्त सरल और तरल भावों को भी वह कविता में व्यक्त करता है। 'विराट प्रणय' और अन्नब्रह्म जैसी भव्य गम्भीर कृतियों के साथ ही 'रंग रंग वादळियाँ' व 'बहुरूपिणी' जैसी सरल कल्पना-प्रधान रचनाएँ भी हुई हैं। इसमें विषय की व्यापकता बढ़ी है। प्रो० ठाकोर की काव्य-भावना, गाँधीजी की जीवन-दृष्टि तथा कुछ अंश में कवि में विकसित हुई अन्तर्राष्ट्रीयता के कारण इस काल में परलक्षी और यथार्थवादी रचनाएँ अधिक परिमाण में हुई हैं। इस काल का कवि स्व-संवेदन का आलेखन करते समय भी यह नहीं भूलता है कि वह स्वयं जन-समुदाय का ही एक अंग है। पण्डितयुग में कवि और जनता में जो दूरी थी, वह अब नष्ट हो गई है। नये कवि को जनता के पास पहुँचने की, उनके सुख-दुख जानने की, तथा गाने की, और प्रजा का मुख बनने की सच्ची अभिलाषा होती है, और इसे वह अपना धर्म समझता है।

विज्ञान की सिद्धि और यंत्र-सामग्री के गुण गाने की प्रथा गुजराती कविता में क्वचित् ही देखने को मिलती है। लगभग सौ वर्ष पहले जब प्रथम रेल चली, तब देश के अज्ञान प्रजा-वर्ग ने गाड़ी के गीत रचे थे और आश्चर्य-भाव व्यक्त किये थे। उसके बाद तृतीय दशक के कवियों में स्नेहरश्मि ने 'एरोप्लेन' लिखा है, जिसमें संस्कृति और प्रकृति का संघर्ष

दिखा कर कवि ने यंत्र-सिद्धि में भविष्य के विकास को निरूपित किया है। यह कृति भी तत्कालीन कवियों की सम्पूर्ण जीवन और जगत को गहराई से देखने की तीव्र आकांक्षा का निदर्शन है। फिर भी कवि प्राकृतिक पदार्थों में जैसी सुन्दरता देखता है, वैसी यंत्रों में नहीं देख पाता; क्योंकि यंत्र-संस्कृति उसे कुछ अंशों में जीवन-विरोधी भी प्रतीत होती है। हमारी अधिकांश प्रजा, यंत्र अथवा विज्ञान के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क न साध सकने के कारण उसके प्रति आत्मीयता नहीं बना सकी है। वस्तुत: तो '१३–७' की पैसेंजर में कवि सुन्दरम् के कथनानुसार हमारा कवि यन्त्रयुग की दुर्भंग और ढीली व्यवस्था का उपहास ही करता है। यन्त्र और वैज्ञानिक सिद्धियों के प्रारम्भिक आश्चर्य के शान्त होते ही उसकी उप-कारकता के साथ साथ विनाशकता की सम्भावनाएँ भी स्पष्ट हुईं। अत: उसका स्वागत करने अथवा उसके सौन्दर्य का अनुभव करने में हमारा कवि उत्साहपूर्ण नहीं दिखाई देता।

गांधीजी व 'प्रगतिशील साहित्य' की विचारधारा ने कवियों को यथार्थवादी बनाने का प्रयास किया, फिर भी इस काल की कविता मे रंगदर्शिता का आग्रह पर्याप्त परिमाण में दिखाई देता है। सुन्दरम् और उमाशंकर की कविता में स्वस्थता और रंगदर्शिता का सुन्दर सामंजस्य है, तो मेघाणी, श्रीधराणी और इन्दुलाल में रंगदर्शिता की अधिकता स्पष्ट है। भावी स्वातन्त्र्य की कल्पना, देशोद्धार के लिए सर्वस्व समर्पण की भावना, पुरुषार्थ के नये भव्य मार्ग तथा कोई महान कार्य करने की श्रद्धा, कवि को कौतुकरागी बनाती है। दलपतराम के बाद गुजराती कविता में लगभग बन्द होजाने वाली हास्यरस की कविता, इस काल में पुन:-प्रवाहित होती है। खबरदार, रामनारायण, सुन्दरम्, उमाशंकर पतील, देवकृष्ण जोशी आदि कवियों ने प्रतिकाव्य व अन्य सरल काव्यों के द्वारा हास्यरस को जीवित रखा। गम्भीर वस्तुओं को भी अगम्भीर वृत्ति से देखने और चित्रित करने की भावना हमारी आत्मनिरीक्षण वृत्ति व सरलता का ही परिणाम है। अपनी अनिच्छित अथवा आन्तरिक क्षतियुक्त वस्तु एवं परिस्थिति के प्रति स्वयं हँस लेने की वृत्ति में उदारता और संस्कारिता का निवास माना जाता है। कभी कभी करुण-रस का भी हास्य के पटंतर में निरूपण किया जाता है।

नयी कविता ने अपने प्रयोग में प्राचीन पद्य-स्वरूपों को अपनाया है, तो कहीं-कहीं नये भी बना लिये हैं। सुन्दरम् ने मध्यकालीन आख्यान शैली में 'लोक लीला' की रचना की है और दलपत शैली में सरल काव्य भी लिखे हैं। प्रो० ठाकोर ने 'कक्को' (ककहरा) और 'वार' शीर्षक काव्य लिखे हैं, तो मेघाणी ने 'साहित्य नी बारमासी' की रचना की है। दुर्गेश शुक्ल ने 'उर्वशी और यात्री' नाम का गीतिनाट्य पृथ्वीछन्द में लिखा है, तो उमाशंकर ने 'प्राचीना' में काव्यरूपक दिये हैं। प्रो० डोलरराय मांकड ने अनुष्टुप छन्द में 'भगवान नी लीला' नाम से दीर्घ काव्य की रचना की है, और स्वप्नस्थ ने प्रवाही पृथ्वीछन्द में 'धरतो ने' नाम से एक दीर्घ चिन्तन-काव्य लिखा है, तो चन्द्रवदन मेहता ने इसी छन्द में 'रतन' नाम के कथा काव्य की रचना की है।

इस प्रकार नयी कविता ने विषय, भाषा, छन्द और पद्य प्रकार आदि में प्राचीन को अपनाते हुए नये मार्ग को भी स्वीकारा है। इस काल के कवियों के लिए कविता एक पवित्र और उदात्त साधना रही है। काव्य-सिद्धि में अति उत्साह के परिणामस्वरूप उन्हें कभी असफलता भी मिली है, किन्तु उनकी असफलताओं की अपेक्षा सिद्धि का पांसा अधिक भारी रहा है। सन् १९३०–'४० के काल में गुजराती कविता ने जो विकास किया है, वह उसके इतिहास में अपूर्ण ही कहा जाएगा। पण्डित युग के कवियों में से नान्हालाल और खबरदार की अनेक उत्तम रचनाएँ इसी समय लिखी गई हैं। इससे पहले नर्मदयुग किंवा पण्डितयुग में इतनी विशाल संख्या में और इतने शक्तिशाली कवि नहीं हुए हैं, तथा इतने अधिक परिमाण में व कलापूर्ण काव्य-सर्जन भी नहीं हुआ है। नर्मद-दलपत ने प्रचुर काव्य सर्जन किया है, किन्तु सत्त्व की दृष्टि से वह आज की कविता के साथ मुकाबला नहीं कर सकता। पण्डितयुग में भी नान्हालाल का काव्य-साहित्य विपुल है, परन्तु कला तत्त्व, स्वरूप की विविधता और विषय की व्यापकता की दृष्टि से तथा वस्तु-जगत् व भावसृष्टि को समाहित कर लेने की कवि की शक्ति के रूप में इस काल की कविता के तुल्य सत्त्वशीलता दिखाने में असमर्थ है।

पिछले पन्द्रह वर्षों की कविता में कुछ नये कहे जा सकने योग्य लक्षण प्रतीत होते हैं। नये का अर्थ सर्वथा परम्परामुक्त नहीं है, लेकिन परम्परागत होते हुए और प्राचीन के साथ अनुसंधान रखते हुए भी कुछ नवीनता लिये हुए लक्षण इनमें हैं। एक प्रकार से तो कवि नर्मद से ही हमारी कविता का प्रयोग-युग आरम्भ हो जाता है। तब से लेकर आज तक काव्य-विषय, काव्य-रीति, भाषा, छन्द, अलंकारादि सामग्री में निरन्तर परिवर्तन होता ही रहा है। दलपत-नर्मद के बाद प्रो० ठाकोर और नान्हालाल ने और फिर चतुर्थ दशक के कवियों ने भी काव्य के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये हैं।

नवीनतर कविता के नाम से पहचानी जानेवाली अन्तिम पन्द्रह वर्ष की कविता में विषय की अपेक्षा कविता की अभिव्यक्ति की ओर कवि का ध्यान अधिक रहा है। और इस अभिव्यक्ति में उसने कुछ नवीनता भी दिखाई है। काव्य के प्रेरणाकाल, अनुभूति अथवा संवेदन और काव्य-सर्जन के बीच में आज की कविता में काल का अन्तर बहुत क्षीण हो गया प्रतीत होता है। एकाध संवेदन कण हाथ में आते ही कवि उसे शब्द-बद्ध कर लेता है। इसके परिणामस्वरूप कभी-कभी उसकी कृति में सुबद्धता और समन्वित सौन्दर्य प्रकट नहीं हो, पाता, अर्थात् रचना नख-शिख सुन्दर नहीं बन पाती। काव्य के सभी अवयवों के सुन्दर समन्वय से जिस सुबद्ध साकार-सौन्दर्य का निर्माण होता है, उसका आज की रचनाओं में अभाव है। संवेदन के व्यापार का यथार्थ शब्दों में अनुसरण करने से रचना का सम्पूर्ण आकार कबु'र (Bizarre) होता है। उसे आकार कहने में भी आकार शब्द का अर्थ बदलना पड़ता है। कहीं विचारों की चमक, कहीं भावों की झलक, कहीं शब्दों का सौन्दर्य, तो कहीं प्रतीकादि काव्यांगों की सुभगता प्रकट होती है। परन्तु सम्पूर्ण रचना

सौन्दर्य-मण्डित, शब्दार्थ की रमणीयता धारण करने से वंचित ही रह जाती है । काव्य के विभिन्न घटक तत्त्वों पर कवि का कौशल वृद्धिगत हुआ है, किन्तु सौन्दर्य-सर्जन में या सौन्दर्य-दर्शन में ऐसी सिद्धि उसे उपलब्ध नहीं हुई है । कविता में शब्द और अर्थ दोनों ही का समान महत्त्व है । उसकी कलात्मक सम्पृक्ति ही काव्य-नाम को सार्थक कर सकती है । अर्थात् कवि का वक्तव्य, काव्यार्थ भी उत्तम काव्य-सर्जन की निर्मिति में निर्णायक तत्त्व है । कवि का वक्तव्य कितना सत्य है, कितना व्यापक है, और कितना हृदय-स्पर्शी है, इसी पर काव्य की श्रेष्ठता या निकृष्टता का आधार रहता है । नवीनतर कविता की अनेक कृतियों में इस प्रकार की व्यापकता की न्यूनता दिखाई देती है और सम्पूर्ण संवित् को आह्लाद से भर देने वाली रचनाएँ अत्यल्प हैं । इसका एक कारण यह भी है कि इसमें भाव तत्त्व की अपेक्षा बुद्धि तत्त्व को प्राधान्य दिया जाता है । बुद्धि कविता का एकमात्र साधन नहीं बन सकती; वह भाव को नियन्त्रण में रखे और प्रेरणा दे, वहीं तक वह काव्य में उपकारक है । कभी-कभी बुद्धि की एकाध झलक को शब्द-बद्ध करने में कवि को अपनी काव्य शक्ति की कृतार्थता प्रतीत होती है । आज की कविता मुख्यत: भाव और भावावेश के प्रदेश से हटकर बुद्धि कौशल और चमत्कार के वश में हो गई है । इसका प्रभाव व चमत्कार हृदयस्पर्शी, चित्तव्यापी और तृप्तिकारक होने के बदले चित्त के केवल बुद्धि अंश को स्पर्श करके क्षणिक आनन्ददायी बन गया है । विस्तृत रचना के लिए स्थिर व शक्तिशाली प्रेरणा अथवा विभावना आज के कवि में अत्यन्त न्यून देखी जाती है । ऐसी प्रेरणायुक्त विशाल रचना यदि उपलब्ध हो, तो उस कृति में उसके स्थापत्य, अवयव-अवयवी सम्बन्ध, कृति की सम्पूर्ण संवादिता और नींव से शिखर तक की परिमाणबद्ध व्यवस्था आदि का विचार किया जा सके । परन्तु आज का हमारा कवि ऐसा अवसर आने ही नहीं देता । शायद वह स्वयं यह आश्वासन ले सकता है कि शुद्ध कविता तो लघु रचना में ही व्यक्त हो सकती है; दीर्घ काव्य वदतोव्याघात है ।

कविता में बुद्धितत्त्व की वृद्धि के कारण और परिस्थिति में चतुर्दिक दिखाई देने वाली व्यग्रता और निराशा के कारण, नवीनतर कविता में व्यंग्य और वचनवक्रता का तत्त्व वृद्धिगत हुआ प्रतीत होता है । परम्परित रूढ़ि अथवा सच्ची श्रद्धा के पुरस्कार की ओर कवि का आकर्षण उतना नहीं है, जितना उसके खंडन की ओर रहता है । उसे परिस्थितिगत इष्ट की अपेक्षा अनिष्ट, समता की अपेक्षा विषमता ही अधिक दिखाई देती है, और यही उसे काव्योचित विषय भी लगता है । प्रत्येक वस्तु अथवा प्रश्न को वह अपनी व्यक्तिगत दृष्टि से ही देखता है और उसका मूल्यांकन करता है । अत: उसका कथन अधिक वैयक्तिक हो गया है । चतुर्थ दशक की कविता में सामान्य जनता के भावों और विचारों को उसने वाचा दी थी और वह लोगों के प्रतिनिधि के रूप में बोलता था । किन्तु सन् १९४० के बाद यह परिस्थिति बदल गई है । द्वितीय महायुद्ध के समय लगभग व्यक्तित्वपूर्ण और गद्य-पद्यमय बनी हुई नवीनतर कविता लिखी गई ।

सन् १९४३ में लिखी गई चिमनलाल व्यास की 'आराम के लिए' शीर्षक कविता में गद्यमयता, वक्रदर्शिता, निराशा और व्यंग्य जैसे नवीनतर कविता के कुछ विशिष्ट लक्षण देखे जा सकते हैं :

मैंने कॉलेज से चार दिन की छुट्टी ली है
आराम के लिए।

●

प्रोफ़ेसर ही हैं सीधे-सस्ते
बिना पूछे बताते हैं सबको रस्ते।

●

मुख पर बैठ
इस ज्वालामुखी पर्वत के—
मैंने आराम के लिए चार दिन की छुट्टी ली है।

अन्तिम दशक में लिखी गई उमाशंकर की 'जीर्णजगत' कविता में अथवा सुन्दरम् की 'आज़ादी पूर्णनी' में वस्तु के सम्पूर्ण दर्शन के बदले कवि को उसका आंशिक वर्णन ही इष्ट है, ऐसा प्रतीत होता है। उमाशंकर समाज में चतुर्दिक् दम्भ, लाचारी, आलस्य और जड़ता को ही देखते हैं, उन्हें सर्वत्र मुर्दों की दुर्गंध आती है, तो सुन्दरम् स्वातंत्र्य प्राप्ति के प्रसंग पर इष्ट अंश के स्थान पर अनिष्ट को ही पुरस्कृत करते हैं।

अंग पर हैं वस्त्र श्वेत, अन्तर में कैसी श्यामता,
काला काला रंग अहा, भण्डार में हमारे कितना ! (कविता—१९५३)

काव्य के मूल्यांकन में तो कवि अपनी कृति में क्या कह रहा है, उसी पर आधार रखना होता है। वह चाहे किसी भी पंथ का क्यों न हो, लेकिन कविता में जीवन और जगत् के प्रति कैसी दृष्टि रखता है, यही महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान कवि में आत्मनिरीक्षण-प्रियता तथा आत्मज्ञान की वृद्धि हुई है, इसलिए एक ओर कविता में सरलता और निर्दम्भता की शक्यता बढ़ी है, तो दूसरी ओर अपने ही दर्शन को चरम सत्यदर्शन मानने-मनाने का आग्रह बढ़ने का भय भी उपस्थित हुआ है। यह व्यक्तिनिष्ठता, सत्य के पूर्ण आकलन में बाधक न बने, यह भी कवि को देखना है।

पद्य की भाषा, छन्द, अलंकारादि अंगों में नवीनतर कविता प्रयोगशील रही है। काव्य की भाषा साधारण व्यवहार की भाषा से भिन्न ही होनी चाहिए, यह मान्यता उचित नहीं है; फिर भी कविता में भाषा का प्रयोजन व्यावहारिक प्रयोजन से कुछ विशिष्ट और भिन्न है। साधारण बातचीत में हम जिस भाषा का व्यवहार करते है, उसका कार्य केवल हमारे वक्तव्य का वाहन बनना है, उसके अर्थ का बोध कराना है। इसमें केवल उपयोगिता की दृष्टि रहती है, सौन्दर्य की नहीं। पद्य में प्रयुक्त होने वाली भाषा को रमणीय रूप में किसी उत्कट भाव या असामान्य विचार का वाहन बनना होता है। अतः ऐसी सार्थक

व रमणीय रचना के लिए कवि विशिष्ट वाणी को पसन्द करता है। अतिशय प्रयोग से घिसे हुए, ध्वनि-शक्ति से वंचित शब्द-सिक्कों को पिघलाकर उनमें से नवीन संकेतार्थों के लिए सक्षम शब्द बनाता है, और पुरातन को नवीन तथा उपयोगी बनाता है। पद्य में भाव अथवा चिन्तन की जो उत्कटता होती है, वह साधारण भाषा को भी एक प्रकार की लय प्रदान करती है। भाव के आवेश में बोलने वाला व्यक्ति गद्य को भी विशेष लय में बोलता है। इस प्रकार पद्य की भाषा में यदि व्यावहारिक शब्द आते भी हैं, तो भी उनमें लय का तत्त्व समाहित रहता है।

नवीनतर कविता में कवि बहुधा अपने विषय और वक्तव्य के अनुकूल भाषा का प्रयोग करता है। गीतों में वह रूढ़, परम्परित और ललित मधुर भाषा का प्रयोग करता है, तो अगेय रचनाओं में व्यावहारिक भाषा व लय का आग्रह रखता है। परिचित और व्यावहारिक भाषा और शैली का प्रयोग करने का उसका हेतु, अभिव्यक्ति को यथाशक्य अकृत्रिम सरल तथा प्रभावशाली बनाने का समझा जा सकता है। ऐसा करते हुए वह गद्य के अत्यन्त समीप की लय-भंगी को स्वीकार लेता है। इससे वक्तव्य में स्वाभाविकता और बल आ जाता है। इस विधि से कभी भाषा के कारण कविता में क्लिष्टता, दुर्बोधता तथा अस्पष्टता की जो शिकायत रहती थी, वह दूर हो जाती है, तो दूसरी ओर सामान्यतः इष्ट मानी जाने वाली इस विधि में कविता के लिए मर्यादा रूप बन जाने का भय भी उपस्थित होगया है। काव्य रचना के लिए कवि को शब्द-शक्ति पर ही आधार रखना पड़ता है इससे उसके पास उत्कट शब्द भण्डार की अपेक्षा रखना भी इष्ट ही है। कविता में सरल भाषा और सरल टेक कदाचित सरल बात के लिए पर्याप्त मानी जाय, किन्तु कविता में सदा ही सरल बात नहीं कहनी होती। भाषा और शब्द का जिसे ज्ञान है, उस पर जिसका पूर्ण प्रभुत्व है, वही इसका प्रयोग औचित्यपूर्ण ढंग से कर सकता है। '१३-७ की. पेसेन्जर' की भाषा, 'निशीथ' या 'विराट प्रणय' के लिए उचित नहीं हो सकती। आज का सरलता का आग्रह, गद्य के समीप पद्य वाहन को ले आने का आग्रह, नये कवि के भाषा-विवेक को शिथिल करने का भय उत्पन्न कर देता है।

भाषा-प्रयोग का छन्द के आयोजन पर सीधा और अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। संस्कृत-पिंगल का, विशेष रूप से वर्णिक छन्दों का, जो दृढ़-बन्ध है, वह भाषा-प्रयोग में सघनता, सुश्लिष्टता और लाघव को देने वाला है। भाषा का शिथिल रूप ऐसे छन्दों में निरर्थक विस्तार का कारण बनता है और कृति के गौरव तथा प्रौढ़ता को हानि पहुँचाता है। संस्कृत के मात्रिक और वर्णिक छन्दों को अभ्यस्त व परम्परित करने को आज के कवि के अभिनिवेश के मूल में नवीन भाषा स्वरूप भी एक कारण प्रतीत होता है। नवीनतर कविता कदाचित आज छन्द के आयोजन में सबसे अधिक प्रयोगशील बन गई है। मात्रिक-वर्णिक और सांख्यिकी छन्दों व गीतों के साथ आवश्यकतानुसार इसमें गद्य का भी प्रयोग किया जाता है। एक ही कृति में इन सब प्रकारों का दर्शन भी क्वचित् ही जाता है।

इसमें कवि की अभिलाषा विविध लयों के संयोजन से अभिव्यक्ति में एक संवादी स्वरूप सिद्ध करने का होता है, और चतुर कवि अपनी इस अभिलाषा को सिद्ध भी कर लेता है। किन्तु ऐसी रचना में वक्तव्य की या अभिव्यक्ति की काव्यवस्तु व शैली की जो सूक्ष्म समझ अपेक्षित है, उसके अभाव में ऐसे प्रयोग काव्यार्थ के उपकारक बनकर उसे दृढ़ता से व्यक्त करने के स्थान पर छिन्न-भिन्न कर देते हैं। अतः आवश्यकता तो इस बात की है कि ऐसे प्रयोग, प्रयोग-मात्र, काव्य-सर्जन की आन्तरिक आवश्यकताओं के आधीन रहकर किये जाने चाहिए।

काव्य में गद्य-लय यदि कवि के वक्तव्य के अनुकूल हो, तो आ सकता है। भाषा के सम्बन्ध में तो नहीं, किन्तु लय के विषय मे नान्हालाल ने पद्य को गद्य के समीप ले जाने का प्रयोग अपनी डोलन शैली के द्वारा किया ही है। नवीनतर कविता में भी डोलन शैली का सूक्ष्म प्रभाव देखा जा सकता है। जिसमें आमने-सामने वाक्य सन्तुलित होते हों और एक प्रकार की लय प्रकट होती है। ऐसे आरोह-अवरोह वाली रचना नवीनतर कविता में भी उपलब्ध होती है :

प्रथम आए
हाँ, प्रथम आए।
बहुत अधिक पिछड़ गये उनमें।
एक दिग्विजय
और कितनों ही का पराजय
एक दिग्विजय की खुशहाली, मगरूबी,
अनेक पराजयों के निश्वास, निराशा।
किसका उत्सव मनाएंगे ?
पहले और पीछे
—इसकी गिनती छूट जाय।
विजय-पराजय भी दूर हो जाय।
जग के सब क्लेश बिखर जाएं।

—लीना मंगलदास
(संस्कृति : अप्रैल—१९५७)

नान्हालाल के अपद्य-गद्य जैसी ही यह रचना है। केवल नान्हालाल के काव्य-स्पर्श का इसमें अभाव है। कविता की रचना में छन्दों का आग्रह छोड़ दिया जाय, छन्द स्वातन्त्र्य को स्वच्छन्दता समझ लिया जाय, तब उसका क्या परिणाम होता है, उसका यह एक अच्छा नमूना है। इसमें कवि जो कहना चाहता है, उस सम्बन्ध में गम्भीर विचार-दोष तो है ही, पर साथ ही इसमें कुछ भी असाधारणता या चमत्कृति भी नहीं है। तत्काल आवेश में आने पर हम जैसा सच या झूठ बोल देते हैं, लगभग वैसा ही इसका वक्तव्य है और

इसे किसी छन्द में सजाने की आज के नवीनतर कविता के युग में कोई आवश्यकता भी नहीं है; भाषा को गढ़ने की भी जरूरत नहीं है, यह समझ लेने पर कवि बनने में विघ्न ही कहाँ रह जाता है ? तो फिर, जगत के दुखों की दवा का प्रिस्क्रिप्शन लिख दें। ऐसी स्वतन्त्रता में कभी-कभी किसी तन्त्र के वश होकर तदनुकूल कार्य करने की अशक्ति रहती है और अच्छे प्रयोगों के लिए अशक्ति की नहीं, किन्तु शक्ति की प्रवृत्ति अनिवार्य होती है। नवीनतर कविता स्वयं ऐसी अशक्ति को तो प्रोत्साहन नहीं दे रही है ? इसका विचार कर लेना होगा और ऐसे भयस्थानों के प्रति इसे सचेत रहना होगा।

साधारणतः गत चालीस वर्षों में हमारी कविता ने विषय और अभिव्यक्ति के क्षेत्र में विविध प्रयोगों के द्वारा जो सिद्धि प्राप्त की है, वह बहुमूल्य है। इससे हमारी काव्य-सर्जन की सीमाएं विस्तृत होगई हैं, तथा काव्यसिद्धि में भाषा या छन्द की मर्यादा के कारण जो बाधाएँ उपस्थित होती थी, वे दूर होगई हैं। सभी प्रयोग, सिद्धि के रूप में ही परिणित होने चाहिएँ, ऐसी अपेक्षा नहीं रखी जा सकती। जब-जब कविता में प्रयोग होते हैं—निरन्तर होते ही रहते हैं—तब इसमें से कुछ निरुपयोगी अनिष्ट भी उत्पन्न हुआ है, कुछ सफलताएं भी मिली हैं, किन्तु इससे सदैव काव्य की विकासशीलता को तो लाभ ही हुआ है। इन प्रयोगों की सफलता या असफलता ने भावी कविता के लिए उपकारक और मार्गदर्शक कुछ न कुछ विशेष दिया ही है।

कविता के घटक सत्ता में होनेवाले विकास या विकार को देखकर अथवा उसके विविध अंगों पर किये गए प्रयोगों के द्वारा प्राप्त सिद्धियों से भावी कविता के सम्बन्ध में अनुमान अथवा भविष्य कथन करने का कार्य दुष्कर है, क्योंकि काव्य-सर्जन में महत्त्व का तत्त्व तो कवि की प्रतिभा है। आज का या भविष्य का कोई कवि सांप्रत कविता को कोई नया प्रवाह देकर कविता के लिए नया मार्ग सूचित कर दे, यह असम्भव नहीं है। फिर भी आधुनिक कविता ने अब तक जो विकास-पथ तय किया है, जो स्वरूप साध लिया है, उसके आधार पर और परिस्थिति के संदर्भ में ही कविता का यत्किंचित् भविष्य-दर्शन कराया जा सकता है।

भविष्य की कविता के सम्बन्ध में विचार करते हुए दो बातों का ध्यान रखना चाहिए। प्रथमतः कवि की शक्ति, रुचि, वृत्ति और आकर्षण आदि, और दूसरी-काव्य की उपादान सामग्री। पिछले चालीस वर्षों में हमें अनेक शक्तिशाली कवि मिले हैं, और उन्होंने बहुत कुछ विशिष्ट सर्जन भी किया है। कवि नान्हालाल ने 'हरिसंहिता', 'अभिनव भागवत' के द्वारा गुजरात को महाकाव्य देने का प्रयत्न किया है, और खबरदार ने 'मनुराज' नाम के महानाटक की रचना की है। यद्यपि ये दोनों कृतियाँ अपूर्ण हैं, फिर भी पंडित युग के कवियों की सिद्धि के रूप में इनका उल्लेख आवश्यक है। गत पचीस वर्षों में महाकाव्यों के सफल अनुवादों के रूप में श्रीमती हंसाबहन मेहता का रामायण के कांडों का समश्लोकी अनुवाद और सुन्दरम् का श्री अरविन्द कृत 'सावित्री' महाकाव्य के कुछ सर्गों का अनुवाद

भी उल्लेख योग्य है। आधुनिक कविता ने पद्य-स्वरूपों, छन्दादि काव्यांगों में जो प्रयोग किये हैं, उनका लाभ भविष्य की कविता अवश्य लेगी। प्रो० ठाकोर के द्वारा छन्द की प्रवाहिता सिद्ध कर देने पर नवीनतर कविता ने उससे एक कदम और आगे बढ़कर सब प्रकार के छन्दों व गेय गीतों के लय-ताल का रक्षण करते हुए एक परम्परित स्वरूप उपस्थित किया है। संस्कृत वर्ण वृत्तों का प्रयोग घटने लगा है, और मात्रिक छन्दों का परम्परित स्वरूप अधिक प्रवाही तथा अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल प्रनीत हुआ है। काव्य की भाषा भी क्रमशः घरेलू, बातचीत की और गद्य-भाषा की सी ही रखी जाती है, तथा गद्य के ही लयों व शैलियों का उपयोग पद्य में होने लगा है।

आधुनिक जीवन और जगत की परिस्थिति तथा पद्य नाटक का प्रवाह देखते हुए लगता है, भविष्य मे महाकाव्य के स्थान पर महा पद्य नाटक रचे जाने की सम्भावना ही अधिक है। आज का कवि एक ऐसे युग में रह रहा है, जिसमें पुरातन जीवन मूल्यों का शीघ्रता से विनाश हो रहा है, अथवा परिवर्तन हो रहा है। पुरातन मूल्यों के प्रति कवि का आदर क्षीण हो गया है, किन्तु उनके स्थान पर नये मूल्यों की प्रतिष्ठा बढ़ी नही है। वातावरण में एक व्यग्रता और असमंजसता व्याप्त हो गई है। यह परिस्थिति कदाचित् महाकाव्य के बदले, महानाटक के लिए अधिक अनुकूल है। महाकाव्य के लिए जीवन में और उसके मूल्यों में स्थिरता की अपेक्षा रहती है, परिस्थिति में संवादिता तथा अनेक परिबलों के सम्पूर्ण समन्वय की अपेक्षा रहती है। वर्तमान युग में महान् घटनाएँ घटी हैं, या घट रही हैं, महान् विभूतियो ने भी जन्म लिये हैं; फिर भी घटनाओं और व्यक्तियों में संवाद की अपेक्षा विसंवाद, स्थिरता के स्थान पर अस्थिरता या परिवर्तनशीलता और समन्वय के बदले, संघर्ष के तत्त्व ही अधिक दिखाई दे रहे हैं। यह परिस्थिति तथा अधिकाधिक नाट्यानुकूल बनते हुए पद्य स्वरूप को देखते हुए, सम्भव है कि प्राप्त सामग्री के समुचित समन्वय से भविष्य में कवि दीर्घ पद्य नाटक की, नाट्यात्मक उर्मिकाव्य की, या नाट्यात्मक सम्बोधन-काव्य की रचना करे।

• • •

पिछले दशक की
गुजराती कहानी : एक सिंहावलोकन

●

रमेश जानी

पिछले कुछ दशकों में, गुजराती की सर्वप्रमुख साहित्यिक विधाओं में कहानी भी एक रही है। दूसरी ओर शायद अधिक वैविध्यपूर्ण विधा कविता है।

पचास वर्षों से भी कम के अपने अति संक्षिप्त इतिहास में गुजराती कहानी ने रूप, कथ्य और अभिव्यक्ति में आश्चर्य-जनक सफलता प्राप्त की है।

आधुनिक कहानी पर दृष्टि डालने से पहले इसके इतिहास का सिंहावलोकन शायद अनुचित नहीं होगा।

श्री कञ्चनलाल वासुदेव मेहता ने, जिनका उपनाम 'मलयानिल' था, १९१८ में 'ग्वालिनी' प्रकाशित की थी, किन्तु गुजराती कहानी में नये युग का सूत्रपात 'धूमकेतु' श्री गौरीशंकर जोशी ने १९२६ में अपनी 'तनखा' से किया। दो वर्ष बाद श्री रामनारायण पाठक 'द्विरेफ' ने अपनी कहानियों में प्रदर्शित शास्त्रीय संयम के द्वारा अतिशय भावुकता के प्रभाव को रोका।

अन्य भी बहुतेरे लेखक थे जिन्होंने इस नयी साहित्यिक विधा में प्रयास किये, किन्तु उनमें से केवल दो को कुछ सफलता मिली, श्री कन्हैयालाल मुंशी और श्री घनसुखलाल मेहता। 'धूमकेतु' और 'द्विरेफ' के उद्‌भव के बाद ही कहानी ने अपने विशिष्ट गुण प्राप्त कर लिये। शुद्ध कला के लिए हानिकारक, उपदेशपूर्ण तत्व पूर्णरूप से त्याग दिये गये। यह सामान्यतः मान लिया गया कि कहानी में यथासम्भव कम से कम पात्र, कम से कम घटनाएँ और कम से कम शब्दों का प्रयोग होना चाहिए। यह भी स्वीकार कर लिया गया कि कहानी का उद्देश्य संकेत करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।

जब हमारी राष्ट्रीय चेतना महात्मा गाँधी के पदार्पण के बाद विकसित हुई और प्रथम विश्वयुद्ध व कम्युनिस्ट सिद्धान्त के रूप में उसे कुछ झटके लगे, तो बुद्धिजीवियों के विचारों में हुए कुछ परिवर्त्तन गुजराती कहानी में भी परिलक्षित हुए। प्रचारात्मक साहित्य बनने का लोभ संवरण नही किया जा सका, लेकिन कुछ ही समय के लिए। शीघ्र ही कहानी इस काल-प्रभाव से आगे बढ़ गयी और उसने अपना सामान्य सन्तुलन पुनः प्राप्त कर लिया। मानवी समस्याएँ फिर उस गीत की मुख्य कड़ी बन गयीं, जिसे अभिव्यक्ति देने की चेष्टा कहानी कर रही थी।

कहानी लेखकों ने पश्चिमी साहित्य पढना शुरू किया और उसका प्रभाव बहुत जल्दी ही कई रूपो में दिखाई पड़ने लगा। इस काल के प्रमुख लेखक : उमाशंकर जोशी, सुन्दरम्, गुलाबदास ब्रोकर, और पन्नालाल पटेल थे। इनके पूर्वकालिक लेखकों में कुछ प्रमुख लेखक थे, झवेरचन्द मेघाणी, रमनलाल देसाई, और 'स्नेहरश्मि।'

श्री पन्नालाल पटेल और पेटलीकर ने क्षेत्रीय बोली का प्रयोग करके आकर्षक प्रभाव उत्पन्न किया। दूसरी ओर श्री चुन्नीलाल मडिया ने सौराष्ट्र की बोली का बड़े सशक्त और सबल रूप में प्रयोग किया। कहानी में शिल्प-सम्बन्धी प्रयोग की चेष्टा करने वाले एक अन्य लेखक श्री जयन्ती दलाल थे।

अब तक गुजराती कहानी लेखकों ने यह जान लिया था कि उन्हें एक ऐसे समाज की विरोधी शक्तियों के बीच फँसे हुए व्यक्ति का चित्रण करना था, जिसमें आर्थिक और समाजशास्त्रीय, दोनों ही दृष्टियों से तीव्र और अप्रत्याशित परिवर्त्तन हो रहे थे। मानव मस्तिष्क और उसकी गम्भीर और द्वन्द्वपूर्ण भावनाएँ कहानी का विषय बन गयीं। इन बौद्धिक दृष्टियों का फल थीं : यथार्थवादी कहानियाँ और मनोविश्लेषण प्रस्तुत करने वाली कहानियाँ।

स्वर्गीय श्री 'बकुलेश', डा० जयन्त खत्री, श्री जीतूभाई मेहता, श्री अशोक हर्ष, नीरू देसाई पीताम्बर पटेल, और स्वर्गीय श्री 'सुकानी' ऐसे लेखक थे, जिन्होंने इस विशिष्ट विकास में योग दिया।

पिछले दशक की कहानी पर दृष्टि डालने पर पहली बात यही सामने आती है कि एकमात्र श्री सुरेश जोशी को छोड़ कर १९५० के बाद कहानी की कोई नयी या भिन्न उपलब्धि नहीं है।

फिर भी, बहुतेरी अच्छी कहानियाँ लिखी गयी हैं और यह अपने-आप में स्वास्थ्य का चिह्न है। मानसिक चेतना के क्षितिज का विस्तार शायद १९५० के बाद लिखी गयी कहानियों का सर्वोत्तम परिणाम है, जिनमें जीवन के बहुतेरे रहस्यमय और संघर्षपूर्ण क्षणों का चित्रण है। इसका श्रेय न केवल पन्नालाल, गुलाबदास, मडिया, जयन्ती दलाल और डा० जयन्त खत्री जैसे पुराने लेखकों को है, बल्कि वेणीभाई पुरोहित, सारंग बारोठ, हीरालाल फाफलिया, स्वर्गीय 'केतन मुंशी', धीरूभाई पटेल, कुन्दनिका कापड़िया, शिवकुमार जोशी, सुरेश जोशी, रमनलाल पाठक, सरोज पाठक, भगवती कुमार शर्मा और चन्द्रकान्त बख़्शी जैसे लेखकों को भी है। इन लेखकों ने न केवल अपनी कहानियों के संग्रह प्रकाशित कर लिये हैं, वरन् अब भी लिख रहे हैं और उनकी कला उत्थान पर है। १९५० के बाद का दशक इन लेखकों के कारण ही विशिष्ट होता, किन्तु एक अन्य ध्यान खींचने वाली घटना भी इस काल में हुई।

श्री सुरेश जोशी ने 'गृह प्रवेश' शीर्षक अपनी कहानियों का पहला संग्रह १९५६ में प्रकाशित किया। इन कहानियों के गुण-अवगुणों के सम्बन्ध में किसी विवाद में न पड़कर मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि इन कहानियों ने गुजराती कहानी के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

लेखक ने अपनी कहानियों को प्रयोग कहा, और उन्होंने ये प्रयोग, बाद में प्रकाशित संग्रह 'बीजी थोड़िक' में भी जारी रखे हैं। इन दिनों हमें ऐसी बहुतेरी कहानियाँ मिलती हैं, जिनमें जानबूझ कर इनका अनुकरण किया गया है। किन्तु खेद की बात है कि इनमें से अधिकांश उस स्तर को या वांछनीय स्तर को भी प्राप्त करने में असफल रहती हैं। इस असफलता का कारण उस विशिष्ट रूप के सम्बन्ध में स्पष्ट दृष्टि का अभाव हो सकता है। शायद इस प्रकार की कहानी का कोई स्पष्ट तराशा हुआ रूप नहीं हो सकता।

इन प्रयोगों के गुणों-अवगुणों के सम्बन्ध में चाहे जो भी कहा जाय, ये हमारा ध्यान खींचने में सफल हुए हैं। इन प्रयोगों को हम अत्यधिक दिलचस्पी से इसलिए देखते हैं कि इनमें कहानी के बहुमुखी विकास की शक्ति निहित है।

गुजराती कहानी यथार्थवाद की ओर १९४० के बाद मुड़ी। लेखक का ध्यान घटनाओं की अपेक्षा प्रतिक्रियाओं की ओर अधिक था। किन्तु सुरेश जोशी यथा-सम्भव घटनाओं का परित्याग ही करना चाहते हैं। उनकी मुख्य रुचि 'शिल्प-विधान' में है। वे मानवी चेतना के जल में गहरे पैठ कर नयी सतहें खोजना चाहते हैं।

शिवकुमार जोशी की 'रहस्य-नगरी', श्रीमती सरोज पाठक की 'नहीं अंधारू,नहीं अज्वालु' और किशोर जादव की 'स्मृति-वलय' यह दिखाती हैं कि सुरेश जोशी के प्रयोग एक समृद्ध परम्परा की स्थापना कर सकते हैं।

किन्तु इस नये शिल्प-विधान को इस खतरे से बचना है कि वह बिगड़कर प्रभावहीन शब्दाडम्बर मात्र न रह जाय और प्रतीकवाद के घातक आकर्षण का शिकार न हो जाय।

द्विरेफ' के समय से हमें विभिन्न रूपों में प्रतीकों का प्रयोग मिलता है। नये लेखक के लिए इस परम्परा का अध्ययन आवश्यक है। वस्तुतः स्वर्गीय 'बकुलेश' और डा० जयन्त खत्री अंकन की विधि की भूमिका तैयार करने वाले थे; अन्तर केवल इतना था कि वे घटनाओं की ओर अधिक ध्यान देते थे।

यह विचारणीय है कि केवल शिल्प या शैली से अच्छी कहानी नहीं बनती, नहीं बन सकती। पुराने लेखकों की अच्छी कहानियाँ भी उतनी ही आनन्ददायक हैं, जितनी इस नये शिल्प में लिखी गयी कुछ कहानियाँ। शैली, संरचना और अभिव्यक्ति में चाहे जो भी अन्तर हो, तथ्य यह है कि वास्तविक महत्व केवल कहानी के आन्तरिक मूल्य का होता है। जितना अधिक कहानी का मूल्य होगा, उतने ही अधिक समय तक वह जीवित रहेगी। समय, जो सबसे बड़ा आलोचक है, सबसे अधिक निष्पक्ष आलोचक भी है। हमें कहानी के कलात्मक मूल्य पर ध्यान देना चाहिए, उसकी तिथि पर नहीं।

कहानी की अभिवृद्धि और विकास में योग देने वाली कुछ सर्वोत्तम पत्रिकाएँ 'ऊर्मि', 'नव-रचना', 'प्रस्थान', 'संस्कृति', 'विश्व-मानव', 'क्षितिज' आदि हैं। कुछ ऐसी पत्रिकाएँ भी हैं, जो केवल कहानियाँ ही प्रकाशित करती हैं। इनमें 'सविता', 'चाँदनी', 'आराम' आदि मुख्य हैं।

कुछ पत्र-पत्रिकाएँ कहानी के रूप-विधान में परिवर्तन लाने में भी सहायक हुई हैं— जयन्ती दलाल द्वारा सम्पादित 'रेख' इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

यथार्थवाद का लोभ कहीं-कहीं लेखकों को अश्लीलता के कीचड़ में खींच ले गया है। किन्तु अश्लीलता को परिभाषित करना कठिन है। इतना ही कहना काफी है कि केवल सद्विचारों से भरी होने से ही कोई कहानी श्रेष्ठ नहीं हो जाती। और न कोई कहानी यौन-जीवन का अश्लाघनीय विस्तृत वर्णन करने मात्र से 'आधुनिक' कही जा सकती है।

प्रतीकों और रूपहीनता का आकर्षण बहुधा लेखक को निष्प्रयोजन प्रयोगों की ओर ले जाता है। अगर सृजनशील लेखक कुछ अधिक अध्ययन करे, तो उसके लिए भी अच्छा होगा और उसके पाठकों के लिए भी। तत्कालीन प्रवाहों और अपनी विशिष्ट साहित्यिक विधा की सम्पूर्ण परम्परा में अच्छा परिचय एक ऐसी आवश्यकता है, जिसकी वह उपेक्षा नहीं कर सकता।

सारे संसार की कहानियों की भाँति गुजराती कहानी ने भी अपने युग की विशेषताओं को और व्यक्ति के बाह्य और आन्तरित जीवन के श्रेष्ठ क्षणों को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। पिछले दशक की कहानियों ने शायद अधिक सचेत रूप में इस आदर्श की प्राप्ति की चेष्टा की है, चाहे इससे उनको हमेशा सफलता नहीं मिली। किन्तु इसका प्रयास सर्वत्र है और यह प्रयास सच्चा है। प्रयास की यह ईमानदारी ही उज्ज्वल भविष्य का संकेत है।

●●●

गुजराती साहित्य में हास्यरस की उपासना

•

रामप्रसाद बक्षी

पाश्चात्य वाङमय-विश्व में humour (हास्य) को गौरवान्वित स्थिति प्राप्त हुई है। इसकी तुलना में भारतीय साहित्यशास्त्र में हास्यरस को यद्यपि उच्चतर पद की—आठ या नौ रसों में हास्य की गणना कर के—दी गई है, तथापि हास्यरस प्रधान साहित्य का जितना और जिस प्रकार का विकास पश्चिम में हुआ है, इतना भारतीय साहित्य में नहीं हो सका है, यह एक आश्चर्यजनक घटना है। हास्यरस की जो कुछ साधना और सिद्धि भारत के अद्यतन नाटक-नवल-कथा-निबंधिका आदि साहित्य प्रकारों में दृश्यमान है, वह भी वस्तुतः पाश्चात्य प्रेरणा का परिणाम है। अपनी प्राचीन वाङ्मय परम्परा का प्रदान जितना अन्य रस-प्रदेशों में है, इतना हास्यरस का प्रदेश में नहीं हुआ है।

और यह विधान जितना, सम्भवतः इतर भारतीय भाषाओं में है, उतना ही गुजराती में, साहित्य निर्माण के विषय में सच है।

गुजराती में हास्यरस के नाटक, कई विरल नवलिकाएं, कहानियां और विनोदलक्षी निबंधिकाएँ तो पर्याप्त हैं, किन्तु जिनमें हास्यरस का अविच्छिन्न वहन हो, ऐसे उपन्यास दो या तीन से अधिक नहीं हैं। यह तो हम जानते हैं कि पौराणिक रंगभूमि नाटकों की उपवस्तु में हास्यरस को यथाशक्ति विशिष्ट स्थान देती थी। और यह भी हम जानते हैं कि अद्यतन वार्षिक नाट्यस्पर्धाओं में प्रयोजित किये हुए अनेकानेक सद्योरचित त्रिअंकी नाटकों में और विशेषत: एकांकियों में लेखक, निर्माता और अभिनेतृगण प्रेक्षकों को येन केन प्रकारेण हंसाने के प्रयत्न की ही स्पर्धा कर रहे हैं।

गुजरात पर हास्यविमुखता का दोषारोपण करने का तो अवकाश नहीं रहता है। परन्तु, यदि हास्यरसिक कृतियों का प्रमाण और इनमें से निष्पन्न होनेवाले हास्यरस के प्रकार देखे जायं तो इसकी सिद्धि की मर्यादितता अवश्य स्वीकृत करनी पड़ती है।

हास्यरस की उच्चता का मानदंड है—उसका विभावानुभावादिका प्रकार। हास्यरस की निष्पत्ति का एवं उसका कक्षा-निर्णय का आधार, अनुभाव से भी अधिक विभाव पर रहता है।

प्राचीन रस-शास्त्र हास्य के, स्मित से अतिहसित पर्यन्त, छ: प्रकार बतलाता है। वे मूलत: हास्य के अनुभावों के ही प्रकार हैं, किन्तु अनुभाव के प्रकार विशेष भाव के प्रकारों से उत्पन्न होते हैं, इस कारण स्मितादि हास्य प्रकारों द्वारा मनोगतभाव का तारतम्य भी सूचित होता है। वस्तुत: शास्त्रकार ने इन हास्य-प्रकारों को उत्तम-मध्यम-अधम पात्रों में विभक्त किये हैं। अत: जैसी भूमिका की उच्चावचता, ऐसी ही स्मितादि प्रकारों की उच्चावच क्रम व्यवस्था फलित होती है।

किन्तु वास्तविक रूप में हास्यरस के प्रकार-निर्णय का आधार विभावों के प्रकार पर ही निर्भर है। अत: गुजराती साहित्य में हास्यरस की उच्चावच कोटि का निर्णय करने के लिए विभावों का कक्षा निर्णय करना वाँछनीय है। और विभावों की कक्षा के अनुसार हास्यरस के प्रकारों का निर्णय करना—वह शास्त्रीय रीति भी होगी।

हास्यरस के अनेकानेक विभाव शक्य हैं। मानव जीवन में वर्त्तन-व्यवहारगत विचित्रता, विलक्षणता एवं निर्बलता हास्य का प्रकट विभाव बनती है। हास्यनिष्पादक तत्त्व शरीर की विसंष्ठुलता में, अथवा विकलांगता में (अंगवैकल्य में), अथवा इन्द्रियोपभोग की—जिह्वालौल्य जैसी—अतिमात्र आसक्ति में और तज्जन्य परवशता में हो सकता है।

बधिरता, दृष्टिमन्दता और इस प्रकार की अन्य इन्द्रिय-न्यूनता; काम-लोभादिक का अतिरेक, और तज्जन्य विचित्रभासी वर्तन, दम्भ गर्वादि स्वभावदोष और दम्भस्फोट और गर्वगलन से होनेवाली दुरवस्था; एकत: अमुक निश्चित रूप, परिस्थिति किंवा अवस्था और अन्यत: इससे असंगत और प्रतिकूल व्यवहार, इस प्रकार की विसंगतता; वाणी और वर्तन की विचित्रता और विकलता, एवं इससे प्रकट होता अज्ञान अथवा बुद्धिमान्द्य; अनपेक्षित,

प्रसंगाननुरूप, विपरीत एवं प्रतिकूल घटना घटने से उत्पन्न होने वाली विचित्र दशा; ऐसे और इस से अधिकतर अन्य अनेक, ास्यरस के विभाव शक्य हैं ।

वे विभाव क्वचित् स्वयमेव, क्वचित् कवि या सर्जक के निरूपण कौशल के प्रभाव से, हास्यसाधक बनते हैं ।

इसके अतिरिक्त, सर्जक कभी अपने वचनों द्वारा अथवा पात्रों द्वारा उच्चरित उक्तियों द्वारा हास्य निष्पादित करता है ।

हास्यरस के इन विभावों में से कितने और कौन उच्च कोटि के हैं, कितने निम्नकोटि में रहते हैं, आरम्भ में इस बात का दिग्दर्शन करके तदनन्तर, इनमें से कौन से विभावों का उपयोग गुजराती हास्यरसिक कृतियों में किया गया है, हम इस पर विचार करेंगे ।

मानव-व्यवहार की विचित्रता, विलक्षणता; अंग विकलाङ्गता और इन्द्रियों की अशक्ति; इन्द्रियों की परवशताजनक अदम्य प्रबलता; कामलोभादिक मनोविकारों का अतिरेक; दम्भ गर्व आदि का परिबल और उसका स्फोटन-खंडन; ऐसे विभावों से निष्पन्न किया हुआ हास्यरस सामान्य कोटि का हास्य रस ही बन रहता है । पारसी, बोरी, बनिया ऐसी कौमों का साधारण समाज से जो विलक्षण व्यवहार विदित है, उसके आधार पर जो हास्य निष्पन्न होता है, वह निम्नकोटि का होता है ।

वर्तन-व्यवहार-गत असंगति भी उत्तम हास्यरस का विभाव नहीं बन सकती है । वृद्धों का तरुणोचित वर्तन, पुरुषों का स्त्रीवत् व्यवहार, अज्ञानी या मूर्खों की बालिशता इत्यादि स्वयमेव ही वैचित्र्य हास्यजनक-उपहसनीय बन जाते हैं, किन्तु इससे उच्च हास्य की उत्पत्ति का लेश सम्भव नहीं है । यदि इन विभावों को कोई असाधारण कलास्वामी उच्च हास्य का साधक बना सके, तो वह अपवादभूत सिद्धि माननी होगी । इनमें स्वतः उच्च हास्य उत्पन्न करने की सामर्थ्य नहीं है ।

कभी कभी, स्वतः हास्य सामर्थ्य से रहित ऐसे विभागों को सरल-सत्वर हास्यसिद्धि के लिए विडम्बित रूप में पुरस्कृत किया जाता है । परन्तु ऐसा करने से हास्यरस निकृष्ट तो रहता ही है, इसके अतिरिक्त उसमें कृत्रिमता के अन्य दोष भी प्रविष्ट होते हैं ।

कदाचित् जीवन में ऐसा अकल्पित अनपेक्षित घटनाक्रम बनता है कि किसी व्यक्ति ने अमुक वांछित घटना की सिद्धि के लिये तदावश्यक सामग्री की रचना—योजना की हो, किन्तु वास्तव में बन आती है कोई और ही विलक्षण घटना । इस प्रकार का विचित्र योग, इसके स्थूल स्वरूप में बिलकुल सामान्य कक्षा के हास्यरस का विभाव तो बन सकता है परन्तु निपुण संविधायक अपनी संविधान चातुरी से इस घटना के पूर्वा पर अंश द्वारा सूक्ष्म प्रसंग परम्परा का आयोजन कर के उच्च-प्रकारक हास्यरस निष्पन्न कर सकता है ।

हास्यरस के सम्भाव्य विभावों की यह गणना निःशेष परिगणना नहीं है, केवल दिग्दर्शन

है । इनमें से जिनमें अनायास ही बहु-जनगामी हास्यप्रेरकता रही हो, उनका अधिकतर उपयोग लेखकों द्वारा किया जाय, वह स्वाभाविक है । इन विभावों द्वारा निष्पादित हास्य रस सामान्य कोटि में गिर पड़ने से बच जाय, तो बचने का श्रेय कलाकार के कला-कौशल को प्राप्त होगा । ऐसे विभावों द्वारा साधित हास्यरस की अनुभूति के समय भावक, हास्यरसानुभूति के साथ ही साथ, हास्यास्पद (हास्य का आलम्बन विभाव भूत) व्यक्ति की अपकृष्टता और अपनी उत्कृष्टता वाचोयुक्ति-परायण नहीं होती, अर्थात् वह वाक्चातुर्य पर आधारित है या नहीं—इस प्रश्न का हास्यरस मीमांसा के अंतरंग में प्रवेश उचित नहीं है । वस्तुतः भावक के चित्त में रसानुभूति के क्षणों में इस प्रकार की आगन्तुक वृत्तियों का प्रवेश शास्त्र को अभिप्रेत नहीं । इन्हें तो विलीन हो जाना चाहिए । ऐसी आगन्तुक वृत्ति का रसानुभूति के क्षण में विलीन न होना, प्रत्युत जागृत् रहना—यह तो सर्जक की रसनिष्पादन सामर्थ्य में न्यूनता होगी । रसानुभूति की विगलित वेद्यान्तर अवस्था को स्वीकार किया जाय, तो इससे वृत्त्यन्तर का अवस्थान बाधित होता है । हास्यपात्र व्यक्ति के प्रति समभाव का अनुभव क्वचित् उत्तम हास्यरस का लक्षण माना जाता है, किन्तु समभाव भी इस दृष्टि से बाधित-निरवकाश बनता है । हाँ, समभाव से यदि तद्भावभावन समझा जाय तो बात दूसरी है ।

उत्तम हास्य-रस की साधना करने वाला सर्जक ऐसे प्रकट विभावों के आश्रय में सर्वथा नहीं रहता । वह तो यथास्थित मानव जीवन को, अर्थात् आपने जो जीवन खण्ड का वस्तुरूप स्वीकार किया हो, उतना निज वस्तुभूत जीवनखण्ड को—यथार्थ रूप में, केवल अत्युक्ति और विडम्बना से रहित ही नहीं, परम वैचित्र्य-वैलक्षण्य-वैकल्य से भी रहित नैसर्गिक स्वरूप में हास्यरस का अपना विभाव बनाता है । और कदाचित् यदि वह उस स्वयं स्वीकृत मानव-जीवन प्रसंग का निज-प्रतिभा से सविशेष चमत्कार पूर्ण परिवर्तन या परिष्कार करे, तो इतनी दक्षता से करेगा कि वह भावक (पाठक) को नैसर्गिक ही प्रतीत होगा ।

इस प्रकार का, यथास्थित मानव जीवन को ही विभाव बनाने वाला, हास्यरस का दर्शन, गुजराती नाटकों में विरल है । दलपतराम (१८२०–१८९८) कृत 'मिथ्याभिमान', और नवलराम (१८३६–१८८८) कृत—मॉक डॉक्टर से अनुदीत 'भट्ट नु भोपाळु'' विभावदृष्ट्या उत्तम प्रकार के प्रहसन नहीं माने जा सकते । रमणभाई नीलकण्ठ (१८६८–१९२८) का "राई नो पर्वत" नाटक में रूढिगत गुलामों के व्यवहार की विडम्बना चित्रित कर के, अमुक अल्प भाग में ही, हास्य को अवकाश दिया है । मुंशी, चन्द्रवदन महेता, चुन्नीलाल मडिया, यशोधर महेता आदि के प्रहसनों में एवं अद्यतन रंगभूमि प्रयोजित मौलिक और रूपान्तरित नाटकों में भी, नहीं कहा जा सकता कि हास्यरस की निष्पत्ति यथास्थित मानव-जीवन से, लेखक की हास्यतत्त्व दर्शक जीवन-दृष्टि द्वारा, वैचित्र्य का आश्रय लिये बिना की गई है । जयन्ति दलाल की नाट्य-कृतियाँ प्रचलित

प्रहसन प्रकार से कुछ विशिष्ट हैं, क्योंकि उनमें मानव-मानस की प्रवृत्ति का पृथक्करण है, मर्मगामी कटाक्ष द्वारा साधित ईषद् हास्योद्गम है। ऐसी सूक्ष्म मार्मिकता को अपनाने की योग्यता या अनुकूलता अब तक रंगभूमि ने प्राप्त नहीं की। सम्भव है कि आंगिक और वाचिक अभिनय द्वारा हास्य का सद्यः प्रकटन करने वाले प्रहसन-प्रकार में स्थूल-लक्ष्य विभावों का उपयोग दुर्निवार बन रहा है।

अतएव, नित्यपरिचित समाज जीवन के यथास्थित स्वरूप से, अत्युक्ति और विडम्बना-रहित, 'दृष्टनिष्ठ' अथवा सर्जक प्रतिभासाध्य, उच्च हास्यरस की निष्पत्ति में जितनी सुन्दर सफलता धनसुखलाल महेता को अपनी कहानियों में मिली है, उतनी प्रहसनों में नहीं।

किन्तु वैचित्र्य विडम्बनादि रहित, सहज जीवनोत्थ, स्वप्रतिभा-विभावित हास्यरस की साधना में धनसुखलाल की कहानियाँ गुजराती साहित्य में विशिष्ट पद प्राप्त करती हैं। स्व. मटुभाई कांटावाला की कहानियाँ विषयभूत घटना का अतर्कित परिवर्तन और परिणाम द्वारा हास्य से अधिक आश्चर्य का अनुभव कराती हैं। स्व. गोकुलदास रायचुरा की कहानियों में कल्पना का रंग-वैभव आश्चर्यमय होता है, और वर्तन वैलक्षण्य ही हास्य का विभाव बनता है।

गुजराती उपन्यासों में हास्य-रस को प्रधान तो क्या प्रासंगिक स्थान भी कम मिला है। उन्नीसवीं सदी के उपन्यासकार नन्दशंकर न वेदान्तियों के दाम्भिक व्यवहार की, और महीपतराम नीलकंठ ने अहिंसा-चुस्त जैन वणिक की अवदशा का, अत्युक्त विडम्बना द्वारा जैसा हास्य प्रेरक प्रयत्न किया है, वैसा अन्य उपन्यासों में कम हुआ है। एवं गोवर्धनराम त्रिपाठी ने भी 'सरस्वती चन्द्र' में मूर्खदत्त ब्राह्मण के वर्तन-वर्णन में हास्य को स्थान दिया है।

समग्रतया हास्यप्रधान उपन्यास गुजराती में केवल दो ही उल्लेखनीय हैं : स्व. रमण भाई नीलकंठ रचित 'भद्रंभद्र' और धनसुखलाल तथा ज्योतीन्द्र दवे की संयुक्त रचना 'अमे बधां'। स्व. ओलिया जोशी की 'नको नागरियों' का इस गिनती में समावेश कदाचित किया जा सकेगा।

'भद्रंभद्र' में केवल रूढ़िरक्षक वर्ग के वाणी-व्यवहार की अत्युक्ति पूर्ण, कृत्रिमभासी, विडम्बना हास्यसाधक बनती है। किन्तु सूरत के मध्यमवर्गीय कुटुम्ब के जीवन प्रसंगों का हास्यरस-पूर्ण निरूपण करने वाला उपन्यास 'अमे बधां' में अत्युक्ति, विकृति या विडम्बना अत्यल्प किंवा नहीं वत् है, और हास्यरस का सौष्ठव सम्पन्न सुरुचियुक्त निष्पादन है। इसके विभिन्न प्रकरणों में क्वचित् शैली वैषम्य दृष्टिगोचर होता है, पर वह द्विकर्तृकता का परिणाम है। वे दो रचियता हैं : धनसुखलाल महेता और ज्योतिन्द्र दवे। उनमें से धनसुखलाल के लिखे हुए प्रकरणों में विडम्बना रहित, मुख्यतः वाचोयुक्ति परायण नहीं, ऐसी सहज हास्यनिर्मिति अधिकतर मात्रा में प्रतीत होती है।

गुजराती कविता के विशाल विस्तार में हास्यरस की खोज करने के लिए सूक्ष्मदर्शक यन्त्र

की सहायता लेनी होगी—इस कारण नहीं कि यहाँ हास्यरस सूक्ष्म है, बल्कि इस कारण कि हास्यरस के प्रसंग विरल हैं, हास्यरस का प्राचुर्य कवि प्रेमानन्द (१६३६-१७१४) के आख्यानों में है, उनमें से कई हास्यप्रसंग अल्प या अधिक विडम्बन का अवलम्बन है, किन्तु कई प्रसंग ऐसे भी हैं जिनमें केवल ठट्ठा नहीं बल्कि, ईषद्-अत्युक्ति होने पर भी, बहुधा यथास्थित प्रसंगों से हास्य बहा है और क्वचित् कारुण्य की भूमि पर हास्य की सुमन-रचना हुई है।

प्रेमानन्द के पूर्वगामी नरसिंह (१४१४-१४८०) में और अनुगामी अद्यपर्यन्त के बहुत कम कवियों में ही हास्यप्रवण काव्य-कृतियों के दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ नवलराम कृत कटाक्षलक्षी सरल भावयुक्त रचना 'जनावरनी जान' रमणभाई कृत की ररसविडम्बन का छोटा-सा काव्य, नरसिंह राव (१८५६-१९३७) रचित एक साक्षर के निद्राप्रमाद का वर्णन, रामनारायण पाठक (१८८७-१९५५) रचित पति की उपहसनीय दशा करने वाली पत्नी के चातुर्य का काव्य।

दलपतराम (१८२०-१८९८) विशिष्टतया उल्लेख्य हैं। उन्होंने कई काव्यों में अच्छी प्रसंग सामग्री से और सरल शैली में, केवल विडम्बन पर आधारित नहीं, ऐसे हास्यरस की साधना की है।

खबरदार (१८८१-१९५३) के प्रति-काव्यों में मूल काव्यों की शैली का सफल समर्थ अनुकरण, एवं अंशतः मूलगत लाक्षणिक तत्त्वों का अतियोग आनन्दप्रद है। किन्तु उस आनन्द-प्रदान में हास्य से अधिक महत्त्व काव्यानन्द का है।

ज्योतीन्द्र दवे की काव्यगत हास्य-विशिष्टता है—छेकापह्नुतिमय चतुर रचनाएं। उनका, अपनी ही मज़ाक करने वाला, 'अल्पात्मानुं आत्मपुराण' काव्य व्याजस्तुति का (किं वा व्याज निंदा का) विशिष्ट एवम् विभाव दृष्टि से विलक्षण निदर्शन है।

जिस की षष्टिपूर्त्ति का समारोह इसी जुलाई में मनाया गया, वह कवि करसनदास माणेक, 'वैशम्पायन' तखल्लुस से, हास्यरसिक प्रासंगिक काव्यरचना का एक विशिष्ट प्रकार का आद्य प्रवर्त्तक है। वह काव्यरचना है—देशगत, राजकीय एवं सामाजिक, समकालीन घटनाओं का आख्यान शैलीगत विनोदलक्ष्मी एवं कटाक्षमय निरूपण करनेवाली कविता। इस विनोदलक्षी कविता प्रकार के क्षेत्र में उनके अनुयायी हैं—वेणीभाई पुरोहित, 'नारद' और 'जुगा पंड्या'।

तनमनोशंकर शिव कभी कभी सामान्य कोटि की साहित्य रचनाएं लिखते हैं। उनका मेघदूतानुकारी 'मूषकदूत' काव्य भरतमुनि-कथित 'शृंगारानुकृतिर्या तु स हास्यः परिकीर्तितः' विधान का निदर्शन बना है। इसमें हास्य की कोटि सामान्य है।

विडम्बनासाधित हास्यरस की कथन-वर्णनात्मक गद्य में निष्पादन करनेवाली रमणभाई नीलकंठ-प्रवर्तित शैली के अनुयाइयों में प्रधान हैं—स्व० 'ओलिया जोशी', स्व० 'मस्त फ़कीर', स्व० छोटालाल जागीरदार और जदुराम संघड़िया। क्वचित्

गुजरात के नागरिक जीवन, दिनचर्या, प्रासंगिक घटनाओं का वक्रदृष्टि से निरूपण करने वाले इन लेखकों के लेखों में अत्युक्ति, विडम्बना और व्यवहारासंगति ही हास्य के विभाव हैं, अतः इनमें उच्चकक्षीय सहजसाध्य हास्यरस की निष्पत्ति कम और सामान्य लोक-रंजकता अधिक है। बहुधा इस शैली का हास्य-निष्पादन बाल-साहित्य में हरिनारायण आचार्य ने और नटवरलाल मालवी ने किया है; उनकी रचनाएं केवल बालभोग्य हैं, अतः उन्होंने जो शैली अपनाई है, उसका कुछ हेतु समर्थन होता है।

गुजराती साहित्य प्रदेश में एक ऐसी विनोद वाटिका है जिसमें अनेकानेक साहित्यकारों ने विनोद विहार किया है। वह है, सरल लघु निबन्धिकाओं की वाटिका।

इन विनोदलक्षी निबन्धिकाओं की उत्पत्ति प्रायः नियतकालिक वृत्तपत्रों और मासिकों की ऐसी ही अपेक्षाओं की पूर्ति के प्रयत्नों से हुई है। निबन्धिका साहित्य की समृद्धि कितनी प्रचुर है, इसका अन्दाज़ लेखकों की नामावलि द्वारा ही लगाया जा सकता है। **रमणभाई नीलकण्ठ**, 'बीरबल', जयेन्द्रराय दूरकाल, 'मस्तफकीर', चन्द्रकान्त सुतरिया, **रामनारायण पाठक**, **ज्योतिन्द्र द्वे**, **उमाशंकर जोशी**, **झवेरचन्द मेघाणी**, नवलराम त्रिवेदी, गगनबिहारी महेता, **रमणलाल देसाई**, मुनिकुमार भट्ट, चितुभाई पटवा, मूलराज अंजारिया, बकुल त्रिपाठी, वजुभाई कोटक, प्रबोध जोशी, रमणलाल महेता, भगवत् रामचन्द्र, विनोदिनी नीलकंठ, नटवरलाल बुच इत्यादि।

इस नामावलि में कई ऐसे निबन्धिकाकार हैं, जिन्होंने इतर साहित्य-स्वरूपों के सर्जन और साहित्य समीक्षा के प्रशस्य कार्य से महती प्रतिष्ठा प्राप्त की है, यहाँ ऐसे सर्जक-समीक्षक प्रवरों के नाम बड़े अक्षरों में मुद्रित हैं।

यह हास्यरसिक निबन्धिका गुजरात के हास्यरस की अतिप्रिय क्रीड़ाभूमि बन रही है, और ज्योतीन्द्र दवे इस क्रीड़ाभूमि के अग्रणी खिलाड़ी हैं।

अन्य साहित्य स्वरूपों में यथाकिंचित् प्राण धारण कर रहे हास्यरस को आसानी से विहार करने का अवकाश कहीं मिला है, तो मात्र नाटक (प्रहसन) और निबन्धिका के क्षेत्रों में। इन दो साहित्य प्रकारों मे भी, हास्यरस को उच्च स्थान प्राप्त करने की अनुकूलता दृश्य-अभिनेय नाटको में नहीं, वरन् निबन्धिका में ही मिली है। निबन्ध यद्यपि गहन-चिंतनमय नहीं, तथापि विचारपूर्ण जीवन-समीक्षा करने वाला साहित्य-प्रकार है। इसमें वास्तविक वस्तु-दर्शन के अलावा काल्पनिक दर्शन आ सकता है, भाषा में संदिग्ध अनेकार्थता का आश्रय लिया जा सकता है, कार्यकारण का क्रमविपर्यय हो सकता है। दलीलों में जान-बूझ कर तर्कच्छल का उपयोग हो सकता है।

वास्तविक या कल्पित अन्यथा ग्रहण, विचारतंतु को अनपेक्षित मोड़ देना, दलीलों में साभिप्राय असंगति, गम्भीर तत्त्व का अगम्भीर और अगम्भीर का गम्भीर रूप-परिवर्तन, उच्च व्यक्ति का नीचीकरण और नीच का उच्चीकरण, अल्प विषय का अधिक विस्तार,

थोड़ा-सा बहाना पाकर किया हुआ विषयान्तर, संवादों में जान-बूझ कर किया हुआ घोटाला—ऐसी अनेक युक्तियों के प्रयोग का अवकाश निबन्धिका-सर्जन में रहता है।
एवम् निबन्धिकागत हास्य एकरीत्या द्रष्टृनिष्ठ है—अर्थात् वह विषयगत प्रसिद्ध वैलक्षण्य का अवलम्बन नहीं लेता है, बल्कि जहां यह तत्त्व अविद्यमान हो, वहां भी इसकी कल्पना सृष्टि करता है। किन्तु निबन्धिका लेखक विषय का यथास्थित स्वरूप में दर्शन कर, उससे हास्य का विभाव नहीं खोजता, वरन् विषय को परिवर्तित रूप में देखता है। यह परिवर्तित, असामान्य, विषयावलोकन निबन्धिका का प्राणद तत्त्व है। हमने यहाँ विभाव प्रकारों के अनुरोध से हास्यरस के उच्चावच प्रकारों का विभाजन किया है, इसके अनुसार निबन्धिका का हास्य प्रकार क्वचित् उच्च होता है, कभी सामान्य होता है। निबन्धिका लेखक को स्वैरविहार का पूर्ण अधिकार दिया जाता है।

हास्यरस की उपासना में अन्य साहित्य प्रकारों से अधिक सफलता निबन्धिका को मिलती है, यह साहित्य-स्वरूपगत भेद का ही परिणाम है। उपन्यास, कहानियाँ, और काव्य, इन साहित्य स्वरूपों के हास्य प्रधान सर्जन में सर्जक के सिर पर द्विविध उत्तरदायित्व रहता है : एक कलास्वरूप निर्माण का और दूसरा, उसमें हास्यरस की निष्पत्ति का। निबन्धिका लेखक इस द्विगुण उत्तरदायित्व से बच जाता है। क्योंकि निबन्धिका में कलामय-स्वरूप निर्माण की आवश्यकता इतनी नहीं रहती है, अतः यह स्वाभाविक है कि निबन्धिका अन्य स्वरूपों की तुलना में हास्यरस की विशिष्ट लीलाभूमि बनी रहे!

नाटक भी हास्यरस की क्रीड़ा-भूमि बन सकता है, किन्तु इसमें अभिनेता को प्रत्यक्ष प्रकट अभिनय का अवकाश है, अतः नाटक को हास्यरस की निम्न कोटि में गिर पड़ने से बचाना मुश्किल होता है।
नाटक, उपन्यास, कहानियाँ—इन साहित्य-स्वरूपों में उच्च हास्यरस का निष्पादन करने का कार्य जितना दुष्कर है, उतना ही—उसी कारण से—उसका आह्वान प्रबल है। गुजराती साहित्य के सामने यह आह्वान उपस्थित है।

●●●

नयी कहानी : एक चर्चा

सुरेश जोशी
भोगीलाल गाँधी

सु० मेज़ पर ये किताबों के ढेर रखे कैसे बैठे हो ?

भो० हाँ, जरा नयी कहानी के विषय में देख रहा था !

सु० अरे यह नयी कहानी फिर कौनसी बला आ गई ?

भो० वाह वाह ! तुम भी कमाल करते हो, जैसे तुम्हें इसका पता ही न हो !

सु० कहानी नाम की विधा को मैं जानता हूँ; किन्तु उसके आगे कोई विशेषण भी लगाया जाता है, सो अपनी समझ में कुछ नहीं आता भाई ! कहानी, अस्तु कहानी। इसमें भला नयी क्या और पुरानी क्या ? १९४० में लेखक जो कहानी लिखता था, वही आज भी कहानी लिखता है तो क्या १९४० में लिखी गयी कहानी को पुरानी और उसी की लिखी आज की कहानी को नयी कहोगे ?

भो० नहीं ! काल की दृष्टि से साहित्य में नयी-पुरानी संज्ञाओं का प्रयोग नहीं होता। किन्तु '४० का लेखक

पहले जिस प्रकार की कहानी लिखता था, उससे भिन्न नवोन्मेषी कहानी अब लिखता हो, तो उसे मैं नयी कहूँगा और आज का नवोदित लेखक यदि पुराने ढर्रे पर कुछ लिखे तो उसे मैं पुरानी कहूँगा। मुझे तो लगता है कि इन पचीस वर्षों में कहानी-लेखन की शैली आदि में बहुत अन्तर आया है।

सु० अन्तर तो आना ही चाहिए। नही तो साहित्य का विकास, साहित्य की गति ही स्थगित हो जाएगी। किन्तु अपने यहाँ कई बार मात्र विषय-विस्तार को ही नया मान लिया जाता है, इसी से ·······

भो० तुम्हारा आशय समझ गया। 'मात्र विषय-विस्तार' से तुम्हारा यही आशय है न कि इस प्रकार के फेर-फार का महत्त्व कला में मूलभूत नहीं है? मुझे भी यही लगता है। मैं तो यह भी कहना चाहूँगा कि सर्जक का विषय—विस्तृत अर्थ में एक ही होता है—'मानव'!

सु० तुमने 'मानव' के साथ किसी विशेषण का प्रयोग नही किया, यह बात मुझे भायी! तो, यह सारा हेरफेर किस स्वरूप में हुआ है, इस पर विचार करने से पूर्व हम इस पर विचार करे कि इस हेरफेर की आवश्यकता कैसे आ पड़ी?

भो० मेरी धारणा है कि ये सारे हेरफेर अनिवार्य हैं। किन्तु क्या यह कहा जा सकता है कि ये सब जानबूझ कर किये जाते हैं?

सु० अपने आप ऐसा कुछ हो जाता है, ऐसा मैं नही मानता। सर्जक को स्वयं अपना सर्जन जब एक ही ढर्रे पर घिसटता हुआ प्रतीत होता है, तब वह अकुला उठता है और कुछ नया करने की प्रेरणा ·······

भो० किन्तु तुम्हारे कथनानुसार सर्जक को अकुला देने वाला और कुछ भी नया करने की प्रेरणा का स्रोत क्या है?

सु० 'विषय' सम्बन्धी सर्जक की नयी दृष्टि, नयी approach.

भो० किन्तु यह नयी दृष्टि और नये मोड़ का नयापन कहाँ से आया?

सु० नये साहित्य-स्वरूपों की सम्भावनाओं की गहराई तक पैठने की बात जहाँ तक है, पदार्थ तो एक ही है, किन्तु मैं उसे नये नये परिवेशों में रख कर, perspective बदल बदल कर, छाया और प्रकाश के विभिन्न रूपों में परखता हूँ, तब उसके, अनेक रूप मेरी दृष्टि के सम्मुख स्पष्ट होते जाते हैं। इस प्रकार उस पदार्थ के विषय में मेरा ज्ञान बढ़ा, या कि उसके अनेक पहलुओं का मुझे परिचय मिला, इसमें मुझे सार्थकता नहीं प्रतीत होती, किन्तु नव-नवीन रसास्वादन करवाने वाले नव-नवीन रूपों का निर्माण हुआ है, इसी में उसकी सार्थकता है।

भो० यह तुमने चित्रकला की भाषा में कहा है। एक कला को दूसरी कला के माध्यम से समझाने में कुछ उलझनें बढ़ सकती हैं। भाषा और चित्रकला के माध्यमों में मूलतः भेद है, यह ध्यान में रखना होगा।

सु० मुझे तो इसमें कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती। कठिनाई हो तो भी एक ही बात की, कि एडवर्ड बुल जिसे Psychic distance कहता है, उसे बनाये रखने की। चित्रकार की तटस्थता कहानीकार में होनी आवश्यक है, किन्तु कहानी का विषय, उसके पात्र, परिस्थिति, ये हमें किसी न किसी रूप में छूते हैं, और हम अनजाने ही अपनी मर्यादाओं और मान्यताओं को उनमें आरोपित कर देते हैं। कविता और कहानी इन दोनों में ही भाषा का प्रयोग होता है, फिर भी दोनों में वास्तविकता और उसके चित्रणकर्त्ता के प्रश्नों को हम कैसी भिन्न भिन्न भूमिकाओं में प्रस्तुत करते हैं ?

भो० तुम्हारी बात है तो महत्त्वपूर्ण, किन्तु क्या इसी में प्रत्येक साहित्य स्वरूप का वैशिष्ट्य नहीं है ? कहानी में मानव-व्यवहार का संदर्भ जिस प्रकार प्रकट होता है और कविता अथवा चित्र में जिस प्रकार, उसमें कोई भेद नही दीखता ?

सु० यह भेद मुझे विशेष परिणामदायी प्रतीत नही होता !

भो० खैर, इस विषय में अपने मतभेद को हम कुछ देर, एक ओर रखें। मैं इस सम्पूर्ण समस्या पर किस दृष्टिकोण से सोचता हूँ, वह अलग बात है। इस विषय में तुम्हारा अभिप्राय जानना चाहता हूँ !

सु० अवश्य !

भो० मुझे लगता है कि सर्जक को पुराने के प्रति विद्रोही बना देने और सर्जन-क्षेत्र में नये नये प्रयोग करने की प्रेरणा देने वाला मुख्य आधार व्यापक परिस्थिति सम्बन्धी सर्जक की अपनी awareness ही है। शायद इस प्रतीति के ही कारण, इसके परिणाम-स्वरूप ही, वे इस अनुभव को व्यक्त कर सकें, इसीलिए नये नये रूप रचनाओं की ओर प्रवृत्त होते हैं। आज की नयी कहानी के लक्षणों पर विचार करते समय, मुझे तो परिस्थिति-सम्बन्धी लेखक की नव-जाग्रति, दृष्टि और साथ-साथ नये कला-स्वरूप सम्बन्धी दृष्टि और साधना, दोनों एक दूसरे से ओतप्रोत नजर आते हैं। वरन् जहाँ जितना अधिक ये दोनों एक दूसरे से गुँथे होते हैं, उतनी ही अधिक नयी कहानी की सिद्धि प्रतीत होती है।

सु० यह किस आधार पर कहते हो ?

भो० अपने यहाँ जो इतने अभिनव प्रयोग हो रहे हैं, उन्हें देखकर। अपने यहाँ, आजकल जिन्हें बहुधा नया विषय कहा जाता है, उदाहरणार्थ जहाज में काम करते मजदूर और खानों में काम करने वालों का जीवन, जेल का वातावरण; हड़ताल, शहरी जीवन के बाहर से कुत्सित अथवा सुन्दर प्रतीत होने वाले अनेक अंगों और रंगों का आलेखन, स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की विकृति और विचित्रताओं का निर्भीक वर्णन आदि आदि ! वास्तव में, यह सब हमारे लिए नया नहीं है। आज से पचीस वर्ष पूर्व बकुलेश की कहानियों में इस सबका अभाव नहीं है। वे इस समय सहज

प्रवाह से दूर होकर छिटक गये हैं, इतना ही।

सु० यह तो बिल्कुल ठीक है। किन्तु आज की इन विषयों की कहानियों में तुम किसे 'नया' कहते हो ?

भो० हाँ, ये जो इतने नये प्रयोग हो रहे हैं, उनमें चाहे जितनी कचास हो, मुझे इतना तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि अब प्लॉट और घटना का महत्त्व कम हो गया है, पात्रों के व्यवहार आदि के विषय में लम्बे लम्बे वर्णनों का कोई आग्रह नहीं रह गया, मनोविश्लेषण का भी—अभी बीच के दिनों की तरह—अनिवार्य स्थान नहीं रह गया। कहानी, सच्ची कहानी की तरह बिना किसी लाग-लपेट और छिछले साहित्य की नकल के बिना अपने वास्तविक स्वरूप में उभरती प्रतीत होती है। यह भी कहा जा सकता है कि सर्जन के मुक्त वातावरण की ओर, अर्थात् 'कलात्मक ध्वनिमयता'[1] की ओर नयी कहानी अग्रसर हो रही है। तुम्हें ऐसा नहीं लगता ?

सु० शुद्ध कविता की भाँति शुद्ध कहानी की सम्भावना भी प्रकट होने लगी है, यही न ?

---

१ इधर के कई नये प्रयोगों में, मेरे मत में श्री सुरेश जोशी के प्रयोग 'गृह प्रवेश' तथा 'बीजी थोड़ीक' अग्रणी हैं। ऊपर कहे गये अनेक लक्षण उनमें मिलते हैं, साथ ही रचना-पक्वता भी। अन्य कई लक्षणों की दृष्टि से श्री चन्द्रकान्त बक्षी एवं श्री शिवकुमार जोशी, दोनों की रचनाओं में 'एक्जिस्टेंशियलिज़्म' की छाप है। शिवकुमार में यह दर्शन व्यक्त करने के प्रयत्न दृष्टिगोचर होते हैं। कई बार तो कथा के अन्त में अनावश्यक उपसंहार-रूप में वे सम्मिलित होकर वातावरण सृष्टि की दृष्टि से उत्तम प्रकार की रचना सृष्टि करते हैं, जैसे रहस्य-नगरी में। बक्षी में वह सहज रूप से सम्मिलित होने के कारण, उनकी रचनाएँ शिल्प और रचना की दृष्टि से अधिक सफलता प्राप्त करती है जैसे प्यार, पड़घा, काळा मासासो। किन्तु कई बार शैली अथवा टेकनीक की चकाचौंध के कारण रचना चमकदार होने पर असफल रह जाती है, जैसे ना, एक आदमी मर गया, अफेर, ज्योतिए लव मेरिज कयुँ आदि। ये दोनों लेखक कई बार एक-से विषय, घटना लेकर लिखते हैं, तब भी बक्षी अधिक सफल प्रतीत होते हैं। जैसे मनवर व चन्देरी ने चांदरणु तथा अफेर व मुक्त मानव की तुलना कीजिये। शिवकुमार की 'मनोमयनी सृष्टि' (लोलिता से प्रभावित कृति) तथा बक्षी की काबुली वाला की याद दिलाने वाली कृति 'अधूरी वात', दोनों ही सफल प्रयोग हैं। फ़िर भी बक्षी विषय और शैली की दृष्टि से बकुलेश की कई कथाओं की याद ताजी करते हैं, किन्तु बक्षी की कला-दृष्टि कई रूप में बकुलेश को पीछे छोड़ जाती है……बक्षी की सफलता वातावरण की सहज-सृष्टि है।   —भोगीलाल गाँधी

भो॰ हाँ ! तुम्हें ध्यान होगा कि कहानी के क्षेत्र में Surrealism और Existentialism की बातें करने वाले तथा प्लॉट रहित कलात्मक ध्वनिमयता की रट[2] लगाने वाले बकुलेश अपनी कथाओं में अधिकांशतः असफल रहे हैं; किन्तु आज इस दिशा में आगे बढ़ रहे नयी कला-दृष्टि वाले नये प्रयोग अपनी अपरिपक्वता के उपरान्त भी मुझे तो आशाप्रद प्रतीत होते हैं ।

सु॰ कहानी के रचना विषयक सिद्धान्तों से ही काम नहीं चलेगा, अन्ततः तो कला-दृष्टि आवश्यक है । वही महत्त्वपूर्ण भी है ।

भो॰ किन्तु इस कलादृष्टि के पीछे मुझे तो एक ही प्रेरणा दिखाई देती है—वह यह है कि जीवन-दृष्टि अब बदल गई है, उसी से कलादृष्टि तथा नयी तटस्थता और स्वस्थता धीरे धीरे आ रही है ।

सु॰ जीवन-दृष्टि के साथ ही कलादृष्टि भी बदल गई है—ऐसा कह कर, क्या तुम दोनों के बीच कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हो ?

भो॰ तर्क के चक्करों में पड़े बिना कहें तो—तुम भी यह नहीं कहोगे न कि दोनों में गहरा सम्बन्ध नहीं है ?

सु॰ मैं बाल की खाल नहीं निकालना चाहता । किन्तु जब यह प्रश्न खड़ा ही हो गया है तो और कुछ नहीं तो इस प्रश्न का स्वरूप ही ठीक से समझा जाय । जीवन दृष्टि बदली, इसका कारण यह है कि जीवन ही बदला । एक ही दायरे में शताब्दी को समेट ले, इतनी तेज रफ्तार से यह युग चल रहा है । समय के परिमाण की अभिज्ञता का स्वरूप बदला, इसके कारण नये प्रकार की संकुलता उत्पन्न हुई । उससे बाह्य अथवा आन्तरिक परिस्थितियों के प्रतिभाव का स्वरूप भी बदला । यह परिवर्तन एक सतत क्रियाशीलता है । सर्जक की सूक्ष्म संवेदना इस परिवर्तन से आंदोलित होकर इसका रूप ग्रहण करती है और फिर इस रूप को अपने माध्यम से प्रकट करती है ।

भो॰ यहाँ हम एकमत हैं ।

सु॰ ठीक है । लेकिन इससे अधिक स्पष्टता अपेक्षित है । कहानी लिखते समय सर्जक कागज़ पर वाक्य लिखता है, तब वाक्य के भिन्न भिन्न अंगों के आपसी सम्बन्धों का आविष्कार करता है । किन्तु वह मात्र वाक्य को ही नहीं संजोता, साथ साथ संसार का भी संयोजन करता है । इसीलिए तो सार्त्र कहता है कि 'It is the style that corrects reality', अस्तु जब तुम कहते हो कि अमुक की रचना में अपरिपक्वता है फिर भी वह सच्ची दिशा का दृष्टान्त समुपस्थित करती है तो

---

२ देखिये 'जींदगी नो तरजुमो' कथा तथा उसकी प्रस्तावना ।

यह बात मेरे गले नहीं उतरती। अपरिपक्वता हो सकती है। रूप विधान में ही यदि संयम न हो, तो सृष्टि की तस्वीर भी प्रभाव-पूर्ण नहीं ही हो सकती।

भो० दृष्टि सच्ची हो, किन्तु उसमें संयम की पूर्ति न हो, ऐसा नहीं हो सकता। खैर तुम अपनी बात पूरी करो।

सु० इस सृष्टि की संकुलता और अराजकता को मैं किस आधार पर जीत सकता हूँ ? अपने माध्यम की शक्ति के बल पर ही न ? जैसे कभी कविता अपने शास्त्रीय नियमों की कैद में जकड़ी हुई थी, वैसे ही आज कहानी भी गद्य की एक सीमित मर्यादा में कैद है। वास्तव में तो आंतरिक जगत् के सत्य तक पहुँचने के लिए भाषा को इतना समर्थ और सशक्त होना चाहिए कि वह यथार्थ, सत्य और कल्पना, तीनों को आवेष्ठित कर सके। ऐसा नहीं हो तो ये नयी शैली आदि सब मात्र फ़ैशन बन कर रह जाएँगे।

भो० हर विषय की गहराई में उत्तर कर चर्चा करें, तो जीवन व सर्जन सम्बन्धी कई विशाल प्रश्न आगे आ खड़े होंगे।

सु० ठीक है ! परन्तु अभी तो—उत्तर से न सही, प्रश्न से ही सच्चा साक्षात्कार हो, वही क्या अपर्याप्त है ?

भो० यही तो हमारा आज का संघर्ष है !

सु० और शायद सदा रहेगा !

● ● ●

गुजराती उपन्यास : एक संक्षिप्त परिचय

•

अरविन्दकुमार देसाई

अन्य भारतीय भाषाओं की भाँति गुजराती साहित्य में भी उपन्यास का आरम्भ उन्नीसवीं सदी के सातवें दशक में हो गया। सन् १८६६ में रसल नामक एक अंग्रेज इंस्पेक्टर की प्रेरणा से सूरत के श्री नंदशंकर तुलजाशंकर मेहता ने "करणघेलो" नाम का उपन्यास लिखा। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें गुजरात के अन्तिम राजपूत राजा करणसिंह की पराजय और गुजरात की स्वतन्त्रता के विनाश की कथा दी गई है। इस उपन्यास पर तत्कालीन सुधारकों का प्रभाव भी स्पष्ट देखा जाता है और साथ ही उस काल की सूरत की कुछ प्रमुख सामाजिक घटनाओं के उल्लेख भी इसमें यत्र-तत्र पाये जाते हैं। इस उपन्यास की कथा वस्तु और शैली विशेष उल्लेखनीय है। इसकी शैली को देखते हुए अंग्रेजी साहित्य के सुप्रसिद्ध गद्यलेखक मकॉले का स्मरण बरबस ही हो आता है, और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि लेखक ने जानबूझ कर

मैकाले की शैली का अनुकरण किया है। इस उपन्यास के एक ही वर्ष बाद महीपतराम नीलकंठ के 'वनराज चावड़ो,' 'सघरा जेसंग' और 'सासु-वहुनी लड़ाई' नाम के तीन उपन्यास प्रकट हुए। इनमें से प्रथम दो ऐतिहासिक उपन्यास हैं, और तीसरा सामाजिक है। लेखक समाज सुधारक होने के कारण ऐतिहासिक उपन्यासों में भी अपने सुधारवादी विचारकों को वश में नहीं रख पाया है, इसीलिए इन ऐतिहासिक उपन्यासों ने कहीं-कहीं पर ऐसे प्रसंग उपस्थित कर दिये हैं, जो पाठक के लिए केवल हास्यास्पद बनकर ही रह जाते हैं और इससे कथावस्तु का विकास भी यथोचित नहीं हो पाया है। 'सासु-वहुनी लड़ाई' में सामाजिक दूषणों का वर्णन करके उन्हें दूर करने के उपाय भी बताये गये हैं। नंदशंकर ने भी 'करणघेलो' में सुधारवादी विचारों को दर्शाया है, किन्तु वहाँ लेखक ने अपने इस उत्साह को पूर्णरूप से वश में रखा है, जब कि महीपतराम का सुधारवादी उत्साह साहित्यकार पर सवार हो गया है।

गुजराती उपन्यास का द्वितीय युग गोवर्धनराम त्रिपाठी के 'सरस्वतीचन्द्र' उपन्यास से आरम्भ होता है। इससे पहले जासूसी, ऐय्यारी और अंग्रेज़ी से अनुदीत उपन्यासों का ज़माना चल रहा था। सन् १८८७ में 'सरस्वतीचंद्र' प्रथम भाग प्रकट हुआ और बीस वर्ष बाद इसका चौथा भाग छपा। इस प्रकार लेखक ने निरन्तर बीस वर्ष के प्रयत्न से इसे पूरा किया। इस बीच अनेक उपन्यास प्रकट हुए, जिनमें राणकदेवी, विषवृक्ष, गंगा गोविन्दसिंह, मृणालिनी, रूपनगरनी राजकुँवरी, प्रियंवदा, गुलाबसिंह आदि उल्लेखनीय हैं, किन्तु 'सरस्वतीचन्द्र' के कारण ये सब निष्प्रभ हो गये हैं। इसमें कोई शक नहीं कि 'सरस्वतीचन्द्र' गुजराती का श्रेष्ठ उपन्यास है। (साहित्य अकादमी भी इसका हिन्दी अनुवाद छाप रही है।) इसीलिए गुजराती आलोचकों में से किसी ने इसे 'ग्रंथ शिरोमणी' कहा है, तो अन्य किसी ने पण्डितयुग का 'महाकाव्य' और 'प्रणय कथा के निमित्त संस्कृति कथा आदि शब्दों से याद किया है। इसके २००० पृष्ठों में लेखक ने गुजराती समाज के विवाह, घर, समाज, राज्य, धर्म, तत्त्वचिंतन और साहित्य जैसे सभी विषयों को इसमें समेट लिया है। कथावस्तु, पात्र, संवाद, वातावरण, रस तथा शैली आदि सभी दृष्टियों से यह एक सफल उपन्यास बन गया है। इसमें प्राचीन तथा वर्त्तमान भारतीय संस्कृति के साथ पाश्चात्य संस्कारों का समन्वय साधने का सफल प्रयास किया गया है।

'सरस्वतीचन्द्र' का गुजराती समाज पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि इसके बाद आने वाले समर्थ उपन्यासकार श्री कन्हैयालाल मुंशी ने भी प्रथम सामाजिक उपन्यास 'वेरनी वसूलात' लिखकर ऐतिहासिक उपन्यासों की ओर ही दृष्टि दौड़ाई। 'पाटणनी प्रभुता, गुजरात नो नाथ, राजाधिराज, जय सोमनाथ और पृथ्वीवल्लभ' जैसे उपन्यासों ने श्री मुंशीजी को गुजराती साहित्य में ही नहीं, अपितु भारतीय साहित्य में अमर बना दिया है। वीर, शृंगार, अद्भुत और बीभत्स रस का औचित्य रूप में समन्वय होने के कारण इन

उपन्यासों ने समाज पर प्रथम तो खूब प्रभाव जमाया, किन्तु, फिर मुंशी की सर्जक प्रतिभा में वैविध्य का अभाव देखकर शीघ्र ही जनता का ध्यान श्री रमणलाल देसाई के भाव-प्रधान उपन्यासों की ओर आकर्षित हो गया। यद्यपि श्री देसाई के सामाजिक उपन्यासों में सुधारवादी स्वर स्पष्ट सुनाई देता है, फिर भी स्वाभाविकता और मनोरंजन के गुण के कारण समाज में ये शीघ्र ही पसंदगी पा गये। 'कोकिला, पूर्णिमा, स्नेहयज्ञ, ग्रामलक्ष्मी, दिव्यचक्षु, भारेलो अग्नि, हृदय विभूति, क्षितिज और कालभोग' आदि इनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं। हिन्दी के प्रेमचन्द के साथ इनकी प्रायः तुलना की जाती है। इसी काल के अन्य उल्लेखनीय उपन्यासकारों में श्री चुन्नीलाल वर्धमान शाह, धूमकेतु, झवेरचंद मेघाणी, गुणवंतराय आचार्य और रामनारायण पाठक की गिनती की जाती है। चुन्नीलाल शाह ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास तत्त्व की रक्षा करने का सफल और सुन्दर प्रयास किया है, परन्तु इससे उनकी उपन्यास कला कुछ पंगु बन गई है। धूमकेतु के उपन्यासों में भावना का अधिक आलम्बन लिया गया प्रतीत होता है। मेघाणी ने लोकसाहित्य का पुनरुद्धार करके सौराष्ट्र के इतिहास को वाचा दी है। गुणवंतराय आचार्य ने समुद्रीय साहस की नयी सृष्टि का समावेश किया है और रामनारायण पाठक ने शुद्ध अहिंसात्मक गाँधीवाद को अपने उपन्यासों का मुख्य विषय बनाया है।

आधुनिक युग के उपन्यासकारों में पन्नालाल पटेल और ईश्वर पेटलीकर ने ग्राम जनता की कथावस्तु को लेकर और उसमें Local colour देकर सुन्दर सर्जन किया है। पन्नालाल के 'वळामणां, मळेलाजीव, मानवीनी भवाई और भांग्याना भेरू' आदि काफी प्रसिद्ध हैं। पेटलीकर समाज-सुधारक होने के कारण उपन्यासों में भी इसी रूप में व्यक्त हुए हैं, फिर भी ग्राम-जीवन के वर्णन में उन्हें अच्छी सफलता मिली है। 'जनमटीप, मारी हैयासगड़ी, कल्पवृक्ष, काजल कोटड़ी, आशा पंखी और कंकु अने कन्या' उनके उल्लेखनीय सर्जन हैं। पीताम्बर पटेल ने उत्तर गुजरात के लोकजीवन को अपनी कृतियों में निरूपित किया है, परन्तु उनमें स्थित समाज-सुधारक कलाकार साहित्यकार को दबा सका है, अतः उनकी कृतियों में कला का स्वरूप अधिक उन्नत नहीं हो पाया है। चुन्नीलाल मडिया ने भी अपने व्यक्तिगत ढंग से 'लीलुडी धरती और पावकज्वाला' जैसे उपन्यासों का सृजन किया है। नये-नये प्रयोग करने की अभीप्सा रखते हुए भी परम्परागत सीमा को लाँघने में अभी तक उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली है। श्री दर्शक की कथावस्तु में भी भावना की अतिशयता देखी जाती है, साथ ही गाँधीवादी भावना से प्रेरित पात्र एक ही मॉडल के बने प्रतीत होते हैं। 'झेर तो पीधा छे जाणी-जाणी' उनकी एक लोकमान्य कृति है। पुष्कर चंदरवाकर ने गुजरात के नलकांठा विभाग के सामान्य लोकजीवन पर कथाएं लिखी हैं। स्थानीय रंग के साथ उन्ही की भाषा के प्रयोग के कारण ये उपन्यास भी सफल माने जा सकते हैं। अन्य लेखकों में उमाशंकर जोशी, इन्द्र वसावडा, चन्द्रवदन मेहता, यशोधर मेहता, नंदकुमार पाठक, निरंजन

वर्मा, जयमल्ल परमार, नीरू देसाई और जयंति दलाल आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

चन्द्रकान्त बक्षी, शिवकुमार जोशी और सुरेश जोशी के नाम वर्त्तमान युग के नवीन प्रयोगकर्त्ताओं में गिनाये जा सकते हैं। इनका ध्यान नवीनता सिद्ध करने की ओर अधिक रहता है, किन्तु उपन्यास एक लोकप्रिय साहित्य-प्रकार होने के कारण, इसकी लोकरंजनता की सीमा के उल्लंघन कर सकने में इन्हें अभी अधिक सफलता नहीं मिल सकी है। आजकल लोकरुचि की मांग के अनुसार अहर्निश नये-नये उपन्यास प्रकट होते जा रहे हैं, फिर भी इस साहित्य-स्वरूप ने, यूरोपीय साहित्य में जो नवीनता और प्रयोग के अवसर उपस्थित कर दिये हैं, उनका यहां सर्वथा अभाव प्रतीत होता है। इस दृष्टि से अभी हमारा उपन्यास-साहित्य काफ़ी पिछड़ा हुआ है, यह कहना भी अनुचित न होगा।

●●●

गुजराती साहित्य में आख्यान प्रकार का विकास

•

केशवराम का० शास्त्री

गुजराती साहित्य 'आख्यान' शब्द का सबसे पुराना प्रयोग आख्यान-साहित्य के पुरस्कारक पारण के कवि भालण द्वारा किया हुआ प्राप्त होता है, यथा—

"तालमय सकळ अर्थपदबंधे बांधूं नळ-आख्यान,
मूरख जन मोह करवाने भालण कवि अभिधान।"
(नळाख्यान)

(तालयुक्त सब अर्थ पदों में रचता नल-आख्यान
मूर्खजनों को मोहित करने भालण सुकवि महान्)

यहाँ भालण ने नल राजा की कथा 'गुजर भाखा' में प्रस्तुत की है, और इस पद्यमय कथा का शीर्षक 'नळाख्यान' रखा है। यह समय विक्रम की सोलहवीं शताब्दी की तीसरी पचीसी के लगभग का है। संस्कृत साहित्य में 'आख्यान' शब्द रूढ़ साहित्य प्रकार के अर्थ में इतना ज्ञात नहीं है; ज्ञात शब्द है 'उपाख्यान'। महाभारत के विभिन्न पर्वों में गर्भकथाओं का

निरूपण आता है, वहाँ अन्तः पर्वों में 'शकुन्तलोपाख्यान', सावित्र्युपाख्यान', 'ऋष्यशृङ्गोपाख्यान', 'नलोपाख्यान', 'रामोपाख्यान' जैसे प्रकार से 'उपाख्यान' शब्द प्रयुक्त किया गया है। इससे यह भासित होता है कि मुख्य कथा 'आख्यान' है, और ये उपकथाएँ 'उपाख्यान' हैं। गुजराती कवियों ने ऐसी कथाओं को स्वतन्त्र रूप में दिया और इन्हें 'आख्यान' नाम दिया। यों 'उप' उपसर्ग को निकाल दिया।

जब गुजराती साहित्य में 'आख्यान' शब्द विशेष रूप में आया, तो इसका विषय प्रायः हो महाभारत, रामायण और पुराणों से कथा-वस्तु लेकर उपकथाओं के रूप की निरूपणा बनी। अर्थात् धर्मकथाएँ ही 'आख्यान' नाम से प्रस्तुत की गयीं।

जैनेतर कवियों की आख्यान-कविता अस्तित्व में आईं। इससे पूर्व जैन कवियों ने भी तीर्थंकरों एवं धर्म-पुरुषों की कथाएँ 'रासयुग' में दी थीं, और उत्तर काल में ऐसे पद्यमय प्रबन्धात्मक कथानक दिये गये थे। जैनेतर कवियों के सामने यह परम्परा मौजूद थी; उन्होंने परम्परा के अनुसंधान में धार्मिक कथानकों का प्रवाह चलाया।

गुजराती धार्मिक कथानकों को देखने से पता चलता है कि इनके चार प्रकार बन्ध की दृष्टि से प्राप्त होते हैं :

१. पद्बद्ध—गुजरात के आदि कवि माने गये नरसिंह महेता के स्वरचित कथानक, सुदामा चरित्र और कृष्ण बाललीला के पद, पदबद्ध आख्यान हैं। यह प्रकार महाराष्ट्रीय सन्तकवि भक्त नामदेव लिखित 'सुदामा-चरित' आदि कथानकों की तरह का है। नामदेव ने बन्ध के लिए 'अभङ्ग' पसन्द किया था, तो नरसिंह ने अपने प्रिय छन्द 'झूलणा' को ही अधिकांश में पसन्द किया था। जनार्दन ने नरसिंह के बाद 'उषाहरण' की रचना (वि० सं० १५४८) की है। वह मात्रामेल छन्दों की देशियों में है। नरसिंह की तरह वह प्रत्येक पद की अन्तिम पंक्ति में अपने नाम की छाप देता था। जनार्दन अपने पदों को 'कड़वा' की संज्ञा देता है, किन्तु वे हैं शुद्ध पद, इस प्रकार के पदबद्ध आख्यान धार्मिक कथात्मक ही हैं, और बन्धों की विशिष्टता से रोचक बनते हैं।

जैन रासों में यह प्रकार 'रासयुग' में व्यापक था ही, किन्तु पदों को 'पद' संज्ञा प्राप्त नहीं थी; प्रत्युत भास, ठवणी, कड़वा आदि संज्ञाएँ प्रचलित थीं; भरतेश्वरबाहुबलिरास' (सं० १२४१) में 'ठवणी' (सं० स्थापनिका), 'रेवन्तगिरिरासु' (सं० १२८८) में 'फड़वक', और 'समरारासु' (सं० १३७१) में 'भासा' (सं० भाषा) शब्दों का उल्लेख हुआ; ये सभी पद-कोटि के ही हैं; तथा विविध गेय बन्धों में से हैं।

२. कड़वा बद्ध—नरसिंह महेता ने अपनी 'चातुरियों' में छोटे छोटे कड़वों का स्वीकार किया है, जिनका लक्षण है आरम्भ में 'ध्रुव' की दो पंक्तियाँ या अर्ध, 'ध्रुव' के बाद किसी भी एक देशी-बन्ध में कई कड़ियाँ, जिनका आरम्भ का चरण,'ध्रुव' के अन्तिम चरण का आवर्तन करता है। भालण ने अपने छोटे मोटे आख्यानों में इस पद्धति का अनुसरण शुरू कर दिया था और कड़ियों की संख्या भी आगे जाकर बढ़ा दी थी। जूनागढ़ के

एक श्रीधर नामक मोढ बनिये कवि ने 'गौरी चरित्र' (वि० सं० १५६५) की रचना नरसिंह की 'चातुरियों' की परम्परा में की है। भालण ने बाण की 'कादम्बरी' का पद्यबद्ध सारानुवाद इस कड़वा-पद्धति में किया था। इसमें कड़वों के अन्त में 'ऊथला' किंवा 'वलण' के रूप में सर्गान्त प्रकार देने का आरम्भ किया, और वही आगे जाकर आख्यान काव्यों के कड़वा-वन्ध की विशिष्टता बन गयी।

३. प्रबन्धात्मक—'रासयुग' के कितने ही 'बुद्धिरास' (सं० १२४१ लगभग), 'सप्तक्षेत्री-रास' जैसे प्रवाहित प्रबन्धों के रूप के थे। 'फागु' प्रकार में कितने ही 'फागु' प्रवहित एक बन्ध के रचे गये थे। इसी परम्परा में वीरसिंह का 'उषाहरण', कर्मण और मांडण की 'रामायण' (सं० १५७५ से पूर्व), मांडण की 'रुक्मां गदकथा', जावड़ का 'मृगी संवाद' आदि मिलते हैं। इस समय के कड़वाबद्ध आख्यान-प्रकार के जनक भालण की आरम्भ की रचनाएँ इस प्रकार की रची हुई प्राप्त होती हैं। 'भीलड़ी संवाद' 'सप्तशती', 'जालन्धर आख्यान' आदि रचनाएँ इसके अच्छे उदाहरण हैं। आगे जाकर इस प्रकार में चौपाई-बन्ध की कृतियों में उपरोक्त कड़ियों के बाद 'साखियों' की तरह का 'पूर्वछायु' का प्रवेश हुआ, जिसका लक्ष्य सर्गान्त स्वरूप का था। विशाल 'आख्यान युग' में वैकुण्ठ आदि कवियों ने इस प्रकार को समादृत किया था, जिसका मूल नरसिंह महेता के उत्तर समकालीन भीम की 'हरिलीला षोडशकला' 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक के अनुवाद आदि कृतियों में किया गया था। वीरसिंह के 'उषाहरण' में यह प्रकार छिपा नहीं रहता है। जावड़ का 'मृगी संवाद' भी इसी का उदाहरण है; जब कि मांडण का 'रावण-मन्दोदरी संवाद' आद्योपान्त एक ही बन्ध में रचा गया है।

४. वर्गबद्ध—प्रबन्धात्मक आख्यानों के बन्धों में कुछ परिवर्तन लाने के लिए सर्गों की तरह 'वर्गों' की आयोजना की जाती थी। 'आख्यान युग' के आरम्भ में केशवदास कायस्थ ने अपने 'कृष्णक्रीड़ा काव्य' (वि० सं० १५९२) में ४० वर्गों की आयोजना की थी। इस पद्धति के स्वीकार से देशी बन्धों की विविधता प्रयुक्त करने में आसानी हुई। हरिलीलाषोडश के कलाकार भीम ने अपनी इस कृति को 'कला' की संज्ञा दी थी; यह 'वर्ग' का ही पूर्व स्वरूप था। केशवदास कायस्थ ने तो रास-प्रसंग का एक पूरा ही वर्ग 'शार्दूलविक्रीड़ित' वृत्त में लिखा था, जो इतने प्राचीन समय में वृत्तबद्ध गुजराती काव्य का एक विशिष्ट उदाहरण बन गया है।

'रासयुग' (वि० सं० १२४० करीब से लेकर सं० १५०० तक) के बाद 'आदिभक्ति-युग' (सं० १५००–१६०० लगभग) में यों 'आख्यान-काव्यों' के चार प्रकार अस्तित्व में आये थे। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी की अन्तिम पचीसी में कड़वा-बद्ध आख्यान-प्रकार का प्रभुत्व स्थापित हुआ और बड़ौदा के वैश्य कवि नाकर ने महाभारत के अनेक पर्वों एवं जैमनीय अश्वमेध के अनेक कथानकों तथा रामायण की कथा के कड़वा-बद्ध आख्यानों के रूप में भरमार की। (सं० १५७५ लगभग से लेकर १६२४ तक में) नाकर

के समय से लेकर गुजराती आख्यानों के समर्थ कवि प्रेमानन्द (वि० सं० १७००-१७५५ करीब) के समय तक जैनेतर कवियों ने मुख्य रूप में पौराणिक कड़वाबद्ध आख्यानों की रचना की, इस कारण 'आदिभक्तियुग' के अनुसंधान में 'आख्यान युग' का समर्थ विकास हुआ ।

आख्यान युग—ऊपर स्पष्ट कर दिया गया है कि महाभारत, रामायण और अन्य पुराणों से कथ्य लेकर, और अपवाद रूप में नरसिंह महेता जैसे भक्त के चरित से भी कथा लेकर कड़वा बद्ध आख्यानों की रचना की गई । 'आख्यान युग' में यह मुख्य साहित्य प्रकार बन गया, दूसरे साहित्य-प्रकारों की तुलना में इन आख्यानों की रचना बहुत अधिक होने के कारण ही ।

भालण द्वारा 'आख्यान' शीर्षक दिये जाने के उपरान्त भी कितने ही आख्यानकार अपनी कृतियो के लिए 'रास' संज्ञा का प्रयोग करते रहे; जैसा कि—

'अजाणतां मि कीधो रास,
कहि नाकर हूँ हरिनो दास' १५
(नाकर-कृत नळाख्यान का अन्त)
अनजाने में लिख दिया रासो
कहता नाकर मैं हरि का दास
'रामकृपाए कीधो रास,
कर जोडी केहे विष्णुदास'
(विष्णुदास-कृत रुक्मांगपुरी —अन्तभाग)
(राम की कृपा से लिखा रास
कर जोड़ कह रहा विष्णुदास)

आख्यानों में कथा प्रधान चीज़ है, अलंकारादि के प्रति आख्यानकार इतना आग्रही नहीं है, तथापि सादे अलंकार आ जाते हैं; जैसा कि नाकर के दमयन्ती-वर्णन में;

'जांघे जीती ते कदली, तेहनी थर थर कंपे पत्ते वली;
अधूर प्रवाली जीती मेह, दुखे तंने पड़ावे वेह;
सोनूं बेठा घड़े सोनार, पण समतुल्य तां नहीय थवाय'

(जीती है जंघा ने कदली, इससे थर-थर कंपे पात । अधर प्रवाली जीते मेघा, उसके दुख से करते घात । गढ़ता सोना बैठ सुनार, फिर भी समता में असमर्थ)

नाकर की देन बहुत बड़ी है । यह ऊपर सूचित किया गया है । इसके उत्तरकाल में सूरदास (गुजराती) के 'सगाल-पुरी,' 'प्रह्लादाख्यान' (सं. १६११), राजधरदास का 'चन्द्रहासाख्यान' (सं. १६२१), ब्रह्मदेव की 'भ्रमरगीता' (सं. १६०६), गोपालदासकृत 'वल्लभाख्यान' (सं. १६३६ करीब का श्री विट्ठलनाथ गुसांइजी के सम्बन्ध में ऐतिहासमूलक उत्तम आख्यान),—जिसकी कुछ सुन्दर पंक्तियाँ उल्लेख्य हैं;

'ललित मनोहर श्रीवल्लभ-सुवन सुजाण;
नखशिख सुन्दर व्रजजन-जीवन-प्राण; १
वदन कान्ति जाणे उदया कोटिक भाण;
द्विजकुल मण्डन प्रकट्या पुरुष पुराण;

[ललित मनोहर श्री वल्लभ-सुवन सुजान ।
नखशिख सुन्दर व्रज जन-जीवन प्राण ।।
वदन-कान्ति ज्यों उदित करोडों भान ।
द्विजकुल मण्डन प्रकटित पुरुष पुराण ।।]

आगे चल कर खम्भात के नगर कवि विष्णुदास के महाभारत और जैमिनीय अश्वमेध, रामायण, नरसिंह महेता के जीवन के आख्यान आदि करीब सौ से ज्यादा आख्यानकारो की विशाल साहित्य-रचना का पता चला है। अभी आख्यानकारो का प्रधान लक्ष्य प्रजा के सामने धर्मकथाएँ रखने का ही रहा था, क्योकि मुस्लिम आधिपत्य के कारण प्रजा परेशान थी; इस प्रजा को धर्म-कथाओ के द्वारा आश्वासन देना और स्वस्थ रखना ही उन आख्यानकारो का प्रशस्य प्रयत्न था।

इन अख्यानकारो मे अपनी विशिष्टता के कारण बड़ौदा के ब्राह्मण कवि प्रेमानन्द का स्थान सर्वोच्च रहा है। वह 'आख्यान-युग' का चरम-तेजस्वी कवि था, उसका रचना-काल सं. १७२०-२१ से सं. १७५५ के लगभग था, तीस पेंतीस वर्षों में इसने श्रेष्ठतम आख्यानकथन-कला का परिचय लोगो के समक्ष रख दिया, 'ओखाहरण' (सं. १७२३ लगभग), 'चन्द्रहास आख्यान' (सं. १७२७), 'अभिमन्यु आख्यान' (सं. १७२७), 'मदालसा आख्यान' (सं. १७२८), नरसिंह महेता की 'हूंडी' (सं. १७३३), नरसिंह महेता के पुत्र सामन्त दास का 'विवाह' (सं. १७३३ करीब), नरसिंह के पिता का 'श्राद्ध' (सं. १७३७ करीब), नरसिंह महेता की पुत्री कुवरबाई का 'मामेरा' (सं. १७३६), 'सुदामा चरित्र' (सं. १७३८), 'सुधन्वा आख्यान' (सं. १७४०), 'वामन कथा', 'नळाख्यान' (सं. १७४२), 'रणयज्ञ' (सं. १७४६ शक्य), और 'भागवत-दशम स्कन्ध' (सं. १७५०-५५ करीब-अपूर्ण) आदि इसकी श्रेष्ठ कृतियाँ हैं, इसकी वर्णन शेली विविध रसों एवं अलकारों से समृद्ध होने के कारण बड़ी हृदयग्राही बन पड़ी है और आज तक लोगो के आदर की पात्र रही है। यहाँ नळाख्यान के दमयन्ती वर्णन की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं:—(हंसकी उक्ति)

'वेल जाणे हेमनी अवेव-फूले फूली;
चकित चित्त महारुं थयुं ने गयो दूतत्व भूली;
सामसामा रह्या शोभे व्योम भोम बे सोम;
इन्दुमां बिन्दु बिराजे, जाणे उडगण भोम;

उभे अमोनिधि-किरण प्रगट्यां, कळा थई प्रकाश,
ज्योते ज्योतथी स्थम्भ प्रगट्यो, शुं एथी थम्भ्यो आकाश,
कामिनीनो परिमल बेहेके, कळा शोभे लक्ष;
शके, धराधर वास लेवा चड्यो चन्दन-वृक्ष !
कुरंग मीननी चपळता, शुं खंजन जाळे पडियां !
नेत्र-अरणी-अग्रे श्रवण वीध्यां, सोय थई नीमडियां !
शके, नेत्र खेत्र छे मोहनुं डोडाळां अंबुज;
भ्रुव शरासन, दृष्टि शर, हाव भाव बे भुज;
गळस्थळ नारंग-फळशां, आदित्य इन्दु अकोटी;
अधर प्रवाळी, दन्त कनकरेखा, जिह्वा जाणे कसोटी;
कीर आनन पर, श्रीखंड शोभे, कोयल बोले अणछती,
वनलता पर पंखी बेठो, नव रेहेवायुं मारी वती,
अधर बिम्ब पर श्वेत बिन्दु में जाण्युं करुं ग्रास;
अधर-रस आभरण अम्बुज, जईने पूरुं वास ।

[स्वर्णलता-सी देह फूलते अवयव जैसे फूल
हुआ चमत्कृत चित्त, गया मैं दूतकार्य सब भूल
पृथ्वी और गगन में शोभित इधर-उधर दो सोम
इन्दु में विन्दु विराजित जैसे मानो उडुगण भौम
दोनों ओर सुधानिधि किरणें प्रकटित कला-प्रकाश
ज्योति-ज्योति मिल बना स्तम्भ, क्या इससे टिका अकाश
कामिन का परिमल मादक है, कला सोहती लक्ष
लगता शेष सुरभि लेने को चढ़ गया चन्दन वृक्ष
हरिण मीन की चंचलता क्या खंजन जाल पड़े हैं
नेत्र अनी में बिधे श्रवण सो पलक-कपाट जड़े हैं
अकर्षण के क्षेत्र नेत्र शोभित ज्यों विकसित अम्बुज
भौंह-शरासन दृष्टि बाण, हैं हाव-भाव ही दो भुज
कण्ठस्थल नारंग फल सदृश, सूर्य-चन्द्र बहु मानो
अधर प्रवाली, दन्त स्वर्ण सम, जीभ कसौटी जानो
आनन कीर, सुशोभित श्रीखण्ड, कोयल कूक सुनावे
वन-बल्ली पर पक्षी बैठा मुझसे रहा न जावे ।
अधर-बिम्ब पर श्वेत बिन्दु, करलूँ उसका आस्वादन
अधरामृत युत अम्बुज में रहकर सफल करूँ निज-जीवन ।]

स्वभावोक्तियों द्वारा प्रसंगचित्रण इसने बहुत कुशलता से किया है । 'हूंडी' में भगवान के

सामळशा शेठ बन कर आने का वर्णन कितना रमणीय और आकर्षक है !

वहालो गोमतीजीना घाटमां रे मळयो तीरथवासी ने वाटमां रे;
वेश पूरो आएयो मारे वाहाले रे, नाथ चउटानी चाले चाले रे;
छे अवळा आंरानी पाघड़ी रे, वाहालाजी ने केम बांधता आवड़ी रे,
दीसे वाणियो भीने पाने रे, एक लेखण खोसी काने रे;
हसता खाडा पड़े बेहु गाल रे, मोटुं कपाळ जाणिये ढाले रे,
अधर बिम्ब जाणो परवाळी रे मोटी आँख दीसे अणियाळी रे.
बे काने कुंडल झळके रे, नासिका ते दीवानी सगे रे.
दीसे दांत रूड़ा हसता रे, हीरा तेज करे छे कसता रे.
त्रीकमजी वाणिकनी तोले रे, नाथ उतावळुं बोबडुं बोले रे.
सोनानी सांकळी ने कंठे दोरो रे, केडे पाटीवाळो कंदोरो रे.
झळके धनरेखा हथेळीए रे, वींटी वेढियां छे आंगळीए रे.
सादो एक वाघो पेहेर्यो हरजी रे, एनो सीवनारो कोण दरजी रे
सेलु केडे बांध्युं बेवडुं रे, क्यांथी शीख्या प्रभु एवडुं रे ?
करे हींडता हाथना लटका रे, सादी दोरीना केडे पटका रे.
पटके भटके फुमतडां ज्योत रे, केडे खोंसी पीतळनी दोत रे.
कियां कियां ते कौतुक भाळिये रे, ठाली गांठ वाळी बे चार फाळिये रे.
एक ओढी पछेडी खांधे रे, नाथ दूंदाळो ने मोटी फांदेरे.
वस्त्र पेहेर्या ते पांचे सोजांरे, पाये पेहेर्यों ते सुंदर मोजां रे.
कांई वाघो बिराजे केसरी रे, बन्या मोटो पोरख लखेशरी.
मारो नाथजी नीजे खामणे रे, भर प्रेमानन्द जाय भामणे रे.

[प्यारा गोमती जी के घाट में रे, मिला तीर्थ यात्री को वाट में रे ।।
उसके वेश का क्या कहूँ हाल रे, चले जनमासे की सुन्दर चाल रे
अंटा वाली पगड़ी सुहाई रे, नजाने प्यारे ने कैसे बनाई रे
दीखे बनिया मोहक रूप रे, खोंसी कान में कलम अनूप रे
हँसते गड्ढे पड़े बहु गाल रे, चौड़ा भाल लगे जनु ढाल रे
अधर-बिम्ब हृदय के हारी रे, बड़ी आँखे लगें अनियारी रे ।
दोनों कानों में कुण्डल झलके रे, नाक दीपशिखा-सी ललके रे ।
हँसते दाँत दीखते सुन्दर रे, जैसे हीरे की चमक मनोहर रे ।
प्यारा वणिक के जैसे तौले रे, नाथ जल्दी तोतला बोले रे
सोने की जंजीर कण्ठ में माल रे, कमर में जड़ाइ करधनी संभाल रे
धनरेखा हथेली में झलके रे, अँगुली में अँगूठी मलके रे

सादा एक पहना चोगा हरिजी रे, सीनेवाला कौन सा दरजी रे
फेंटा कमर में बांधा दुहरा रे, कहाँ से सीखे ये गुण प्रभु तुम्हारा रे
करे चलने में हाथ का इशारा रे, सादी-सी डोरी का बांधा नारा रे
नारे में लटकते फुँदना सुहात रे, कमर में खोंसी पीतल की दावात रे।
कहाँ कहाँ देखे शोभा-सम्भार रे, साफे में लगादी गाँठ यों ही दो-चार रे
एक पिछारा कंधे पर डाला रे, नाथ तौंदिल और मोटे पेटवाला रे।
वस्त्र पहने सो पाँचों सुहाने रे, मोजा पैरों में सो मन भावे रे।
कोई चोगा बिराजे केसरिया रे, बना बड़ा व्यापारी लखपतिया रे
मेरा स्वामी संकोची, लजारी रे, भट प्रेमानन्द नाम बलिहारी रे।]

मध्यकाल के समृद्ध श्रेष्ठी का यह चित्रण कितना स्वाभाविक है !

इन आख्यानों को प्रेमानन्दादि आख्यानकार स्वयं ही विभिन्न रागों और रागिनियों में रात के समय खुले आम लोगों के सामने ताम्रघट पर ताल दे देकर गाते थे। इस घट का नाम गुजराती में 'माण' होने के कारण वे 'माणभट्ट' भी कहलाये जाते थे। वे अन्य आख्यानकार कवियों की कृतियाँ भी गाया करते थे। किन्तु जितने आख्यानकार कवि हुए, बहुधा ही माण पर ताल देकर खुले आम गाते और उदर-निर्वाह भी करते थे। प्रेमानन्द ने आख्यान-कविता को इतनी समृद्धि दी कि इसके बाद यह साहित्य-प्रकार सीमित बन गया। 'आख्यान-युग' के अनुसंधान में 'उत्तरभक्तियुग' का विकास ज्ञान एवं भक्ति के महानुभाव भक्तों के हाथों हुआ। इस नये युग में रामायण और कृष्णचरित के कर्त्ता गिरधर (वि १६ वीं शताब्दी के अन्त में) रसिक गरबियों के कर्त्ता डाभोई-वासी दयाराम, और उसके उत्तरकालीन संत-कवि छोटम (वि. २० वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में) के ही कतिपय आख्यान प्राप्त हैं। इन सबों में प्रेमानन्द-सी उद्दीप्त प्रतिभा न होने पर भी वे मध्यम कोटि के अवश्य बन सके हैं। स्वामिनायण सम्प्रदाय के मुक्तानन्द आदि ने कुछ आख्यान रचे किन्तु वे भी सामान्य कोटी के ही बन पड़े हैं।

अर्वाचीन नव युग के आरम्भ में आख्यान-रचना का एक नया प्रकार अस्तित्व में आया। वह था इसका हरव्यासी प्रकार। आख्यानकार दोनों हाथों में करताल लेकर मृदंगादि वाद्यों सहित अपनी रची कविता के साथ संस्कृत एवं अन्य अन्य परिचित भाषाओं के सुभाषितों का भी उपयोग करता जाय, और गद्य में भी विवरण, दृष्टान्तों का कथन आदि करता रहे। गुजराती में इस महाराष्ट्रीय पद्धति का व्यापक प्रयोग भक्ति कवि श्री अनन्तप्रसाद श्रीकमलाल श्रीवैष्णव (सं. १६१७-१६७३) ने १२५ आख्यानों की रचना करके किया। इन आख्यानों का सहारा लेकर कितने ही हरिकथाकार जनता के समक्ष भगवद्भक्ति एवं धर्मनीति के प्रचार का काम करते थे। अब तो गुजरात में ऐसे दो तीन हरिकथाकार ही रह गये हैं, रचना तो बन्द ही हो गई है।

इस छोटे निबन्ध में आख्यान-कविता प्रकार का कुछ परिचय देने का प्रयत्न किया गया है। करीब दो सौ वर्षों तक मध्ययुग में यह साहित्य प्रकार खिला था और सौ से अधिक संख्या के साहित्यकारों ने अपनी सेवा दी थी। जैन कवियों ने 'रास' नाम से इसी प्रकार अपने प्रबन्धात्मक ढंग से ६००-७०० वर्ष तक प्रवाह बहाया था; जैनेतर कवियों ने मध्य के वर्षों में आख्यानों का प्रवाह बहाया था।

यह आख्यान प्रकार, जहाँ तक मेरा ख़याल है, गुजराती कवियों का निजी आविष्कार है, भारत की अन्य भाषाओं में ऐसा कुछ हुआ हो तो ज्ञात नहीं।

पद्यानुवाद—पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

●●●

रास और गरबा

सुनील एम० कोठारी

ये पंक्तियां लिखते समय, मैं युवतियों को हाथों में संकल्पित पात्र ले जाते देख रहा हूं! ये पात्र गरबा (गृह दीप से बना शब्द) कहलाते हैं। नवरात्रि-त्योहार आरम्भ हो चुका है और अम्बा मां के सम्मान में एक बार फिर उसी उत्साह और चाव से पारम्परिक नृत्य आरम्भ किये जा रहे हैं।

वैसे अब इनमें विशिष्ट अन्तर नहीं किया जाता, फिर भी पुरुषों के नृत्य 'गरबी' और स्त्रियों के 'गरबा' कहे जाते हैं। इसी प्रकार रास के विषय में भी कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं मिलती। कुछ लोगों की मान्यता है कि रास वह है, जिसमें डण्डों की सहायता से नृत्य किया जाता है, और गोले में साधारण रूप से किया जाने वाला समूह नृत्य, गरबी या गरबा होता है!

इन सबके अतिरिक्त, इन नृत्यों के भी कई प्रकार हैं। कुछ गरबियां वृत्ताकार की जाती हैं। कुछ में तो नर्तक एक ही स्थान पर खड़े होकर तालियां बजाते हैं। अर्थात् पैरों से कोई गति नहीं की जाती।

किन्तु साधारण रूप से हम यह मान सकते हैं कि गरबी वह है, जो वृत्त में घूमते हुए की जाती है। गरबी में नृत्य किंवा गति महत्त्वपूर्ण है। यह इसके साहित्य से भी स्पष्ट है। उदाहरणार्थ—'गरबे रमवाने संचर्पा रे लोल', यहाँ 'रमवाने' का अर्थ है 'नाचने के लिए'। जहाँ गति है, लय उसका एक अनिवार्य अंग होती है। फिर वह चाहे तालियों में प्रकट हो, या पैरों के पंजों के अग्रभाग द्वारा दिये गये ठेकों के रूप में प्रकट हो।

सामान्यत: रास, गरबा और गरबी में तीन ताल प्रयुक्त होते हैं—६ मात्रा ताल का करवा, ८ मात्रा ताल का खेमटा और १४ मात्रा ताल की दीपचंदी। समूह के नेता वा नेत्री द्वारा गीत गाया जाता है और उसका अनुसरण नर्तक-समूह करता है। गीतों के छन्दों की रचना नृत्य की तालों से मेल खाते हुए ही की जाती है। निम्नोक्त पंक्तियाँ देखिये :

आज मने आनन्द लाध्यो अती घणो मा,
गावा गरबा छंद बहुचर मात तणो मा।

इनमें ४ मात्राओं की संधियाँ हैं और इस प्रकार की ६ संधियाँ बनती हैं, जो कि ६ मात्रा ताल के उपयुक्त हैं। षट्कल संधि का एक अन्य उदाहरण :

नेण नचावता नंदना कुँवर पाधरे पंथे जा,
सुन्दरी सामु जोई विट्ठल वाँसलड़ी मा वा।
गुमानी पाधरे पंथेजा !

यहाँ पहली पंक्ति में तीन-तीन अक्षरों का संयोजन है—नेणन। चावता। नंदना। कुंवर। पाथरे। जब कि अन्तिम शब्द 'पंथे' 'जा' के साथ मिलकर मात्र एक त्रिकल के रूप में गाया और माना जाता है! इस प्रकार यहाँ ६ त्रिकल हैं और उससे षट्कल संधि बनती है।

इन त्रिकल संधियों में अंतर हो सकता है। ये चतुष्कल संधियों के रूप में भी गायी जा सकती हैं। ऐसे भी गीत हैं जो सप्तकल संधि के रूप में गाये जाते हैं। किन्तु ऐसा बहुत कम होता है। वस्तुत: आजकल झपताल में पंचकल संधि की रचनाएँ नहीं की जाती हैं। अस्तु, गरबी और रास की रचनाएँ मुख्यत: त्रिकल, चतुष्कल, षट्कल और सप्तकल में गाई जाती हैं। ये गीत, क्योंकि खुले आंगन या मैदानों में, वृत्ताकार नृत्य के साथ गाये जाते है, इनमें संगीत की शास्त्रीय सूक्ष्मताओं के लिए स्थान नहीं। यदि ये गीत विलम्बित लय में गाये जायँ, तो नृत्य की गति भी धीमी होगी। तब गरबा निष्प्राण प्रतीत होगा। अस्तु गरबे संक्षिप्त ही होते है। किन्तु आजकल ये मंचों पर और थियेटरों में भी खेले जाते हैं, इनमें कई नवीन प्रयोग किये गये हैं और प्राय: ही गरबा पन्द्रह-पन्द्रह मिनिट तक चलता रहता है। फिर भी विलम्बित लय मंच पर भी अनुपयोगी और व्यर्थ ही है।

·ये गरबा, गरबी और रास गायन lyrics होते हैं। वे तत्त्व जो संगीत के लिए उपयुक्त और सरल होते हैं, इन गानों के विषय बनते हैं। मध्ययुग में गुजराती-साहित्य में लम्बे गरबों की रचना होती थी। वल्लभ के ऐसे गरबे पर्याप्त श्रम-साध्य हैं। उनके विषय सदैव ही बहुचर माता अथवा अम्बा मां की स्तुति हैं।

उदाहरणार्थ 'शणगारनो गरबो' अम्बा मां के शृंगार से सम्बद्ध एक लम्बी वर्णनात्मक रचना है। १८०० ई० सन् के लगभग दयाराम (एक वैष्णव कवि) ने बहुत छोटे गरबा-गायन लिखे, जो अब भी बहुत लोकप्रिय हैं।

रूप का यह अन्तर उस उद्देश्य के कारण होता है, जिसके लिए वे रचे जाते हैं।

रचना और लय के साथ किया जाने वाला नृत्य मुख्यत: 'ठेका' के साथ लय बनाये रखने के लिए ही होता है। इनके साथ साथ गीतों के शब्द भी चलते रहते हैं।

इन नृत्यों में नीरसता बढ़ती जा रही है, क्योंकि गीत की प्रारम्भिक दो पंक्तियाँ तो कवित्वपूर्ण और सौष्ठवमय होती हैं, शेष में इन्ही पंक्तियों का निरर्थक और नीरस विस्तार-मात्र रहता है। किन्तु असंख्य ऐसी रचनाएं हैं, जो आरम्भ के दो पदों में निहित कवित्व और सौष्ठव के कारण सारे गुजरातियों की ज़बान पर चढ़ी रहती हैं।

शेरी वलावी सज्ज करुं घेर आवो ने
आंगणिये वेरुं फूल मारे घेर आवो ने।—

इसी प्रकार का एक उदाहरण है। आगे की पंक्तियों में मात्र यह विवरण रहता है कि यदि प्रेमी मिलनोत्सुक नायिका को अंगीकार कर लेता है तो कहाँ, कब और कैसे उसका स्वागत किया जाएगा।

गत पचीसेक वर्षों से लोक-नृत्यों तथा अन्य कलाओं के प्रति रुचि बड़े वेग से बढ़ रही है। बम्बई, अहमदाबाद, बड़ौदा तथा कच्छ व सौराष्ट्र के कई गाँवों में नवरात्रि-पूजा के दिनों में ये नृत्य होते हैं। सौराष्ट्र के कई गाँवों में नवरात्रि-पूजा के दिनों में ये नृत्य होते हैं। सौराष्ट्र के सोमनाथ पाटण में प्रत्येक कार्तिकी पूर्णिमा (शरद-पूर्णिमा) पर जो उत्सव मनाया जाता है, वह बेजोड़ होता है। इण्डियन नेशनल थियेटर जैसी संस्थाएँ प्रतिवर्ष गरबा, गरबी, रास व मिश्ररास का आयोजन करती हैं—मात्र पुरुषों द्वारा खेला गया रास, मात्र स्त्रियों का रास तथा अन्य अनेक प्रतियोगिताएँ। कॉस्मोपोलिटन शहरों की जनता द्वारा अनदेखे अनेक प्रदर्शनों के लिए व्यावसायिक मण्डलियों को आमन्त्रित किया जाता है। नई दिल्ली में गणतन्त्र-दिवस के उत्सव में भाग लेने के लिए गुजरात के कई भागों से व्यावसायिक मण्डलियाँ जाती हैं। इन मण्डलियों ने ट्रॉफियाँ भी जीती हैं। इनसे गुजरात के इन नृत्यों की श्रेष्ठता सिद्ध होती है। गुजरात अपने इस उत्तराधिकार के लिए गर्वित है। गुजरात की नारी के लिए यह सबसे बड़ी प्रशंसा है :

नाना युक्ति मनोहरा किल नटि लास्योत्तमा गुर्जरी।

●●●

अंग्रेज़ी से अनु० म० मो०

मैं गुजरात का नटश्रेष्ठ

मधुकर रांदेरिया

गुजरात की रंगभूमि के रसिको ! भूतकाल का गुणगान बन्द करो। रंगभूमि की शानोशौकत की काल-कवलित गाथाओं के स्मरण में आज कौन बुद्धिमत्ता है ? था, बहुत कुछ था, तब। अनुभवी एवं उदार हृदय स्वामी थे, प्रख्यात उनकी नाटक मण्डलियाँ थीं, सिद्धहस्त उनके कवि थे, दीर्घ काल तक प्रेक्षकों को याद रहें, ऐसी नाट्य-कृतियाँ थीं, सुन्दर उनके गीत थे, कर्ण-प्रिय उनकी रागिनी थी, कितने ही श्रेष्ठ अभिनेता थे, आँखों में समा जायँ, ऐसे आकर्षक परदे थे, प्रकाश योजनाएँ थीं, असीम कला-कौशल था ! हाँ, हाँ, ऐसा ही बहुत कुछ था तब ! होगा !

परन्तु आज उस सबसे क्या ? आज कहाँ हैं ऐसी नाट्य-मण्डलियाँ ? जो हैं उनकी संख्या कितनी है ? और जो हैं वे काल-प्रवाह में अपनी नौका किस प्रकार खेते हैं, वे ही जानते हैं।

ऐसी परिस्थिति में सर्वप्रथम तो मैं आप लोगों को यह कहना चाहता हूँ कि उन व्यवसायी, जीर्ण, जर्जरित, वृद्ध रंगभूमि के स्थान पर प्रसरित, पल्लवित, पुष्पित, फलित यौवन, मदमाती हृष्ट-पुष्ट एवं समृद्ध आज की इस नवीन रंगभूमि पर दृष्टिपात करो। इतने विशेषणों का प्रयोग देख आपको हँसी आती है ? हाँ, हमारी अद्भुत सिद्धियों को समझना आपके लिए दुर्बोध तो है ही ! यह सब समझने के लिए सर्व प्रथम आपको पूर्वग्रह से मुक्त होना पड़ेगा, कद्रदानी तथा प्रशंसा की दृष्टि अपनानी होगी, पुराने नाटक देख-देखकर दुर्गन्धित अपने ज्ञानकोष को पुनरुज्जीवित करने के लिए नवीन रगभूमि के नये नाटकों का अभ्यास करना होगा और इन्हें समझने के लिए अपना मस्तक सहलाना होगा। भले ही ये नाट्य कृतियाँ मौलिक न हों (गो कि जिनने लिखें होंगे, उनके लिए तो ये मौलिक हैं ही, इतनी-सी बात तुम समझते क्यों नहीं),भले ही मराठी, अंग्रेज़ी आदि के अनुवाद ही हों, भले ही लेखक के पूर्वज की चौथी पीढ़ी गुजरात में आकर बसी हो, भले ही ये कृतियाँ चोरी की हुई हों, भले ही 'चीप' 'वल्गर' या 'ऑब्सीन' हों, भले ही कहीं-कहीं नट-नटियों के अभिनय उच्च या उत्कृष्ट स्तर के बिल्कुल न हों—फिर भी हम उन नाटकों की शास्त्रीय विवेचना करते हैं, उनकी हर तह मे हम उतरते हैं, तब आपने हमको देखा है ? देखें तो आप हमारी विद्वत्ता पर न्यौछावर ही हो जायँ !

हम नाटक के सेट का डिजाइन बनाते हैं, सज्जा तैयार करते हैं, कॉस्ट्यूम्स [विष-भूषा] का निर्माण करते हैं, उनकी कलर-स्कीम निर्णीत करते हैं, लाइट्स [रोशनी] के नये नये विविध एंगल्स से प्रयोग करते हैं, तब आपने हमें देखा है ? देखें तो हमारी इन सब कला-कौशल विशिष्टताओ पर आप अवश्य मंत्र-मुग्ध हो जायेंगे ।

डेढ़-दो महीने में ही हम रिहर्सल का काम पूरा करके, और वह भी टुकड़े टुकड़े में करके, हम नाटक को फेंक देते' हैं। 'रियाज़', 'तालीम', 'शिस्त', 'नियमपालन' ! यह क्या पागलपन है ? अपने ये भूतकालीन सड़े,उपेक्षणीय विचार छोड़िये । यह सब तो आपके अशिक्षित अभिनेताओं के लिए था, हम जैसे समझदारों को तो इशारा ही पर्याप्त है। हमें पाठ रटने की आवश्यकता नहीं, यह काम तो हमारे प्रोम्पटर कर लेते हैं। दिमाग पर किसी प्रकार का बोझ लिये बिना ही हम मुक्त प्राण रंगमञ्च पर जायँ और अपने व्यक्तित्व द्वारा ही कमाल कर दिखायें। हमारा नाटककार भी, उसके लिखे को शब्दशः हम बोलें ही, ऐसा आग्रह न रखने वाला उदारचेता समझदार सज्जन होता है। आप गायन तथा नृत्य के शौकीन हैं ? नाटकों में गायन आवश्यक हैं ? नृत्य भी चाहिए ही ? कैसे वाहियात विचार हैं ये ! आप नाटक देखने आते हैं या गाना सुनने और नाच देखने ? नाटकों में ऐसी अपेक्षा रखने वाले आप जैसे प्रेक्षक ही आज की व्यवसायी रंगभूमि के पतन के विशेष कारण हैं। नहीं ! हमारे नाटकों में गाने नहीं होंगे, नृत्य नहीं होंगे (हमारे कलाकार गाना जानते ही नहीं, यह बात अलग है। ऐसा ही कुछ

नाच के सम्बन्ध में भी, पर इससे क्या ?) यहाँ तो सीधा गद्य नाटक होगा, वही आपको देखना होगा और देखकर मुग्ध होना पड़ेगा ।

लगता है, आप शायद मन में कोई और ही (नयी) बात गढ़ रहे हैं, मैं समझता हूँ । आप यह कहना चाहते हैं कि ये हमारे आधुनिक नाटक प्रदर्शित होने पर उनकी दस-बीस पुनरावृत्ति होते ही हम जैसे थकान से हाँपने लगते हैं—जनता कहाँ इन नाटकों को अपनाती है ? अ र र र, इतनी क्षुद्र मनोदशा ? क्या हम इनकी रचना इस उद्देश्य से करते हैं कि उनके दस-बीस प्रयोग हों ही ? हम नाटक 'नाटक' के लिए ही करते हैं; नाटक की अद्भुत कथावस्तु के लिए नाटक करते हैं । चूँकि हमने अपनी संस्था "नाटक संस्था" के नाम से स्थापित की है, इसीलिए हम नाटक करते हैं; नाटक में हिस्सा लेने वाले उत्साही नवोदित युवक लड़के-लड़की मिल जाते हैं, इसलिए हम नाटक करते हैं, नाटक का कार्य हाथ में लेते समय अथवा उनको प्रदर्शित करते समय हम उनकी जन्मकुण्डली थोड़े ही बनाते हैं कि यह कितना चलेगा ! चला तो ठीक; पार्ट करने वालों को प्रति बार के अभिनय पर दस पन्द्रह रुपये की आमदनी हो जाती, और न चला तो कुछ नहीं । उन्हें आमदनी नहीं होगी । हमें कहाँ उन पर गुज़र करनी है ? हमारी प्रतिष्ठा तो महज़ इसलिए है कि हम अवैतनिक कलाकार हैं, हमारे लिए कला पहली वस्तु है, सवेतन-अवेतन का प्रश्न बाद का है ।

अच्छा ! हमारे अभिनय की सिद्धि के विषय में आपका कहना क्या है ?

और नौसिखियों की बात जाने दो, पर मेरे—स्वयं मेरे अपने अभिनय के विषय में आप क्या कहते हैं ? आपने मुझे विविध नाटकों में तरह तरह की भूमिकाओं में देखा है; दूसरी संस्थाओं के भी बहुत से नाटक आपने देखे होंगे, वे सब कैसे अधकचरे से, बेढंगे, अर्थहीन हैं, उनमें अभिनय का स्तर कैसा निकृष्ट होता है ? अभिनय के नाम पर अभिनेता का ज्ञान शून्य होता है । पर हमें पर-निन्दा से क्या सरोकार ! मैं तो अपनी बात जानता हूँ ।

आपकी पुराने ज़माने की रंगभूमि के नामी-गरामी कलाकार कौन ? अमृत केशव नायक, वल्लभ नायक, वल्लभ ओझा, मूलजी ओझा, मूलचंद मामा, ओगरा, कात्रक, बालीवाला, जयशंकर, मोहन लाला, अशरफ़खान्, शनि मास्टर, मूलजी खुशाल, छगन रोमियो, बापूलाल, प्राण सुख नायक, माधवलाल, कासिम भाई, गोरधन, वसन्त और ऐसे ही बहुत से होंगे ? लेकिन मैं अपनी अदाकारी की विशेषता आपको बताऊँ ? इन सब को मैं घोलकर पी जाऊँ, ऐसा है मेरा खमीर ।

मैं यूँ ही गुजरात का नट—श्रेष्ठ थोड़े ही कहलाता हूँ !

मैं लेखक या दिग्दर्शक के हाथों का कठपुतला नहीं हूँ । लेखक के लिखे नाटक को पूर्णरूपेण मैं बदल देता हूँ । दिग्दर्शक के निर्देशन में (और सच पूछो तो वह दिग्दर्शक मुझे अभिनय सिखाने वाला होता ही कौन है ?) मैं पूर्णतः बँधा ही रहूँ, सो तो असम्भव है ।

उसकी बताई हुई संवाद बोलने की शैली का दूसरे तुच्छ कलाकार भले ही वफ़ादारी के साथ अनुसरण करें, उसके बताये हुए 'कम्पोज़िशन' के ही अनुसार, वे भले ही रंगमञ्च पर खड़े रहें, या चले फिरें, मैं तो इन सब से अनोखा हूँ। मैंने रंगमञ्च पर पच्चीस वर्ष पूरे कर दिये, कितने ही नाटकों में पार्ट कर चुका हूँ, जाति-सम्मेलनों में, पाठशालाओं के समारम्भों में, विविध मण्डलों के वार्षिक उत्सवो में और कॉलेज के नाटकों में और सरकार आयोजित नाट्य-स्पर्धाओं में भूमिका अदा करके कभी तो इनाम के रूप में चार—पाँच रुपयों के मूल्य की पुस्तकें, तो कभी छोटे मोटे रजत-पदक या प्रमाण-पत्र भी प्राप्त किये हैं। (स्वर्ण-पदक अभी तक नही मिला, सो मेरे अभिनय में न्यूनता के कारण नहीं, वरन् पदक प्रदान करने वाले व्यक्ति के हृदय की अनुदारता के कारण !) ऐसा अनुभवी अभिनेता मैं किसी निर्देशक का दास बन ही कैसे सकता हूँ ? अन्ततः मेरे अभिनय में तो मेरी अपनी विशिष्टता रहती है, तभी तो जब मैं रंगमञ्च पर उपस्थित होता हूँ तो दर्शकगण मुग्ध-से मात्र मुझे ही देखते रह जाते हैं। रंगमञ्च का मैं सम्राट् हूँ। जब मेरी इच्छा हो, खड़ा रहूँ, जब जैसे चाहूँ बैठ जाऊं, उठंग बैठना हो तो वैसे, लेटने की इच्छा हो तो लेट जाऊँ—अर्थात् अपने मनोनुकूल व्यवहार करने के लिए मैं पूर्ण स्वतन्त्र हूँ; कारण, मैंने एक चौथाई शतक जीवन रंगमञ्च पर ही व्यतीत किया है, जबकि मेरे नाटककार व दिग्दर्शक तो अभी एक-एक क़दम ही आगे बढ़ रहे हैं। इश्तिहारों में मेरा नाम छपता है तो नाटक का प्लान खुलते ही सीटें रिज़र्व हो जाती हैं ! मेरे सहयोगी अन्य कलाकारों के नाम मेरे नाम के नीचे लिखे जाते हैं, फिर भी उन्हें अमरत्व मिल जाता है। उन इश्तिहारों की कटिंग लेकर वे लोग अपनी डायरियों में चिपका कर रख लेते हैं। यदि मेरे साथ फोटो ले लिया जाय, तो वे उस फोटो को अपनी जान की तरह सम्भाल कर रखते हैं। रंगमञ्च पर मात्र दो मिनिट के लिए उन्हें मेरे साथ खड़ा रहने का सुयोग मिल जाय, इस हेतु मेरे भक्त, प्रशंसक, अभिनेता-पद-लोलुप मुझे नित्य प्रति पत्र लिखते हैं। यह है वास्तविकता, न कि अतिशयोक्ति। कहिये, आपकी पुराने ज़माने की रंग-भूमि का कौन-सा 'सिंह नाद करने वाला' अभिनेता यह दावा कर सकता है ? निःसंशय भूतकालीन किसी अभिनेता को प्रदर्शन के चलते प्रेक्षकों की तरफ़ से कभी पुष्पहार मिले होंगे—परन्तु उस तरह मुझे भी नकद इनाम एवं 'कर्टेन फॉल' [पटाक्षेप] के समय तालियों की गड़गड़ाहट का पुरस्कार मिला ही है, जो कि हज़ारों रुपयों के इनाम से कहीं ज्यादा गौरवमय एवं गर्वमय है।

और मेरी यह कीर्ति इस छोटी-सी बम्बई के एकाध विस्तार-स्थित एकाध नाट्य-गृह तक ही सीमित नहीं है। पूरा बम्बई शहर मुझे जानता है, मेरी शक्ति को पहचानता है। सूरत, भड़ोंच, बड़ोदा, अहमदाबाद, दिल्ली, कलकत्ता, पूना, मद्रास आदि सब स्थानों में मेरी प्रतिभा की धाक है। गुजराती, फारसी, बोहरे, खोजे, भाटिये, सिन्धी एवं अंग्रेज़, सभी दर्शकों का मैं प्रिय अभिनेता हूँ। अन्य प्रान्तों के कलाकारों ने भी मेरा

अभिनय-कौशल देखकर बिना माँगे ही मेरी प्रशंसा के पुल बाँध दिये। सरकारी नाट्य-अकादमी एवं अन्य साहित्य-सभाओं ने मुझे 'अवार्ड' तथा पदक प्रदान करने की चर्चा व चेष्टाएँ की हैं, परन्तु मैं आज ऐसी ऊँचाई पर खड़ा हूँ, कि नम्रता-पूर्वक ऐसे पदकों से स्वयं को लदवाना पसन्द नहीं करता।

जो व्यक्ति 'सर्वश्रेष्ठ' सिद्ध हो गया हो, उसके लिए भला ऐसे 'पदक-विजेता' जैसे तुच्छ विशेषण क्या हैं ? आगामी पीढ़ी के छोटे अभिनेता मेरे छोटे नाम से ही अपना परिचय देने का यत्न करते रहेंगे, यही मेरे लिए महानतम लेबल है, बड़े से बड़ा पदक है। पूछो पृथ्वीराज से, उसने गुजरात के नटश्रेष्ठ के रूप में किसका नाम सुना है ? प्रश्न पूछो गणपतराव बोड़स से तथा अहीन्द्र चौधरी से। हिन्दी, मराठी, बंगाली रंग-भूमियों के लब्ध-प्रतिष्ठ कलाकार एक ही उत्तर देंगे—वे मेरा ही नाम लेंगे। और इस प्रकार वे अभिनय कला-विषयक अपनी गहन सूझ-बूझ की ही प्रतीति कराते हैं। किसी ने मेरी 'एन्ट्री' को सराहा है, तो किसी ने 'ऐक्ज़िट' की और किसी ने आकृति-वैशिष्ट्य के गुण गाये हैं। कोई मेरी संवाद शैली पर, तो कोई मेरे स्वभाविक अभिनय पर ही न्योछावर हो गये हैं।

बात इस हद तक पहुँच गई है, कि कितने ही ईर्ष्यालु लोगों से और कुछ नहीं बन पड़ता, तो मेरे नाम के साथ जुड़े 'नटश्रेष्ठ' शब्द के सामने मुँह बिगाड़ने लगते हैं। कैसी दयनीय मनोवृत्ति है यह ? खैर, सूरज पर धूल उड़ाने वाले अपनी ही आँखों में धूल झोंकते हैं, इस लोकोक्ति को याद कर मैं तो मन ही मन हँस लेता हूँ, क्योंकि नट-श्रेष्ठत्व की उपधि मुझे मिले या न मिले, मैं तो अपने आपको नट-श्रेष्ठ ही मानता हूँ; फिर किसी के अभिनय की मुझे कहाँ परवाह है। और, इस मेरी कीर्ति का स्वयं ही प्रचार करने वाले कुछेक प्रचार-मंत्रियों की तो मुझे कमी है ही नहीं, फिर भला मुझे डर किस बात का ?

हाँ, फिर भी एक बार ज़ोर देकर, डंके की चोट, मैं घोषणा करता हूँ कि मैं बम्बई विद्या-पीठ का स्नातक, चौथाई शतक का अनुभव-प्राप्त, संस्कृत, अंग्रेज़ी व गुजराती नाट्य-शास्त्रों एवं नाट्य-साहित्य का अनुपम अभ्यासी, नवीन रंगभूमि के नाट्यकारों एवं दिग्-दर्शकों का प्रेरणा-स्रोत, किसी भी देश, काल के अभिनेताओं के लिए चेलेंज-रूप, आगामी पीढ़ी के लिए अनुकरणीय, गुजरात का नटश्रेष्ठ हूँ ! मेरे तलुवों की भी बरबरी कर सके, ऐसा व्यक्ति जन्मा ही नहीं। भवभूति ने कहा था कि मेरा समान-धर्मा कोई अवश्य पैदा होगा, पर मैं तो कहता हूँ कि मेरी बराबरी कर सके ऐसा व्यक्ति कभी पैदा होगा ही नहीं।

गुजरात की रंगभूमि की भरी महफ़िल में आज मैं हाथ उठाकर यह घोषणा करता हूँ 'मैं, सिर्फ मैं ही गुजरात का नट-श्रेष्ठ हूँ। श्रेष्ठता का मुकुट प्रत्यक्ष-रूपेण मेरे ही मस्तक पर रखा जाना चाहिए और सर्वत्र मेरी ही प्रतिष्ठा की जानी चाहिए। यदि

अविलम्ब ऐसा न हुआ तो मैं ऐसा क़दम उठाऊँगा कि दीर्घकाल तक गुजरात को पछताना पड़ेगा । मैं इस क्षेत्र से सन्यास ले लूँगा ।'

लेकिन मैं जानता हूँ कि गुजरात गुणग्राही है ही नहीं, और गुजरात स्वयं भी अपनी इस विलक्षणता को अच्छी तरह जानता है । अस्तु कदाचित मैं क्षेत्र-सन्यास ले भी लूँ, तो मैं ही उस अपने अलगाव को ज्यादा दिन निभा सकूँगा ही, यह भी सम्भव नहीं । क्षेत्र-सन्यास की बातें तो मैं ऊपरी मन से ही कह रहा हूँ, तो भी मेरा मन-मयूर तो जैसे रंगमञ्च को लक्ष्य करके अब गुनगुनाने लगा है—'तुम सङ्ग तोड़ पिया, कौन सङ्ग जोड़ूँ ? यानी पिया के संग की यह गाँठ टूटेगी नहीं और ऐसा हो तो ·· तो मैं विविध रसपूरित भिन्न रुचि जन-समाराधन के अनेक नाटक उपस्थित करूँगा । अकबर बादशाह या जहाँगीर-नूरजहाँ; रक्तकोरोबी, देवदास एक च प्याला, सरस्वतीचन्द्र आदि······ एवं प्रहसनों की भीड़ भी शेष न रह जाय, इसका पूरा ध्यान रखूँगा·······और इस तरह मेरी एक से एक बढ़कर भूमिकाएँ देखकर, नूतन गुजरात उच्च स्वर में पुकार उठेगा कि 'तू ही गुजरात का नटश्रेष्ठ है, नट-नायक है, नट-सूर्य है ।'

और कौन जानता है कि उस घोषणा में से ही कदापि रंगमञ्च क्षीण आवाज़ में यह भी कहने लगे, 'हमें तो चाहिए मात्र नट ! तब इन सारी पूँछों का मैं क्या करूँगा भला ?

गोविन्दलाल कानूगो

●●●

कविताएं

अनिरुद्ध भट्ट
उशनस्
गुलाम मोहम्मद शेख
जयन्त पारेख
प्रासन्नेय
पिनाकिन ठाकोर
प्रियकान्त मणियार
मकरन्द दवे
मीनू देसाई
राजेन्द्र शाह
सुन्दरम्
सुरेश जोशी
सुरेश दलाल
हंसमुख पाठक

उत्प्रेक्षा

अनिरुद्ध भट्ट

अतृप्त मेरी कामनाएं हो चुकी हैं तृप्त ?
अथवा
थके कुत्ते की तरह बैठी हुई हैं
(बिना भौंके) पाँव मोड़े !

रात चलती जा रही है
आँख में आंजे हुए झंकार झिल्ली की
शरद् के पत्र झरते हैं
—काल के मानो दिवस हों झर रहे—
अवकाश भरते हैं ।
हवा यह चीत्कारवंती डोलती है यों
चुड़ैलें हों भयानक ज्यों
अधखुली आँखें कुछ क्षण
खुले नभ को ताकती हैं
पलक पल-भर भार-नत हो
पुनः खुलते !

कौन है ?
कोई नहीं; सम्भ्रम है सब
जगत सारा सो रहा है
शिल्प-नगरी विश्वकर्मा की
पड़ी है सुप्त सज्जित !
(प्रश्न मेरा गूंजकर लज्जित !)

जागते हैं, इस तरह का भ्रम करें
और इसमें तृप्ति मानें हम, मरें !
कौन जाने श्वास औ निश्वास
किस सागर तले डूबे भटक कर,
आँख भूली देखना ;
जो कान ही के सहारे बाकी बचा
पथ रेखना !
पंथ यह जैसे युधिष्ठिर का—
जान पड़ता है कि जैसे
हड्डियों को गलाती-सी ठण्ड पड़ती है
और जीवन की थकावट अंगूठे से पाँव के
आ-शीष चढ़ती है !
चोटियों पर चोटियाँ लांघे चलो
ऊँचे, बहुत ऊँचे !

●●●

रूपान्तर : भवानी प्रसाद मिश्र

खीझ

उशनस्

अचल अपने इस दुर्भाग्य पर
क्या कहूँ कितना क्रोध आता है !
लगता है आ जाये यदि हाथ व्योमपत्र
तो फाड़ डालूँ इस अचल को
भाग्यहीन अपनी जन्मकुण्डली की तरह !
चिन्दी-चिन्दी करके
उड़ा दूँ धज्जियाँ इसकी, फूँक मार कर
अतल में....तलातल में।

आ जाये पकड़ में यदि ग्रहमण्डली यह
तो चूरा कर डालूँ इसे पीस कर
बिखेर दूँ गगन तल-भर में
और फिर धरती के सातों समुद्रों को
झुकाकर घड़ों की तरह
ढोल दूँ बूँद-बूँद उसके कन-कन पर !
धो डालूँ नभ
कर डालूँ ओर छोर तक
तारक-हीन उसे;
हो जाये दीन अम्बर
इसीलिए तो
छोटे-से-छोटे खण्डों की गर्दनों को
मरोड़ कर धर देने की इच्छा है
किसी घिनौने गिद्ध की गर्दन की तरह !

मैं इस विक्षिप्त-से क्रोध में
भर कर अमर्ष से
पृथ्वी के पामीरों पर चढ़कर
ऊँचे ऊँचे शिखरों को बना कर ईंटें
उठाकर एड़ियाँ, बढ़ाकर हाथ
व्योम की इस निघृ'ण्ण जन्मपत्रिका को
पाने को व्याकुल हूँ !
काश हाथ आजाये
जरा हाथ आजाये !

●●●

अनु० भ० प्र० मिश्र

अंधकार और मैं

गुलाम मोहम्मद शेख

दूरस्थ सागर के वक्ष
और मेरी अंगुलियों के बीच
अंधकार की समीपता है।

सागर के मस्तक की सीधी रेख के समानान्तर-
और मेरे पैर के अंगूठे के घुमावदार मोड़ के समानान्तर
दो और रेखाएँ हैं;
मेरे शरीर की समस्त सीमाएँ
इन दोनों से परे हैं

फिर मैं इनसे एकरूप होकर
इनके ही अन्तरतम् के किसी तल की तरह
उसकी हलचल के साथ-साथ
काँपता हूँ।

दूरातिदूर विस्तारित पानी के ओठों में
उबलती शाश्वत वासनाओं के स्वर
मुझे सुनाई देती हैं।

अंधकार के केश हम दोनों के बीच छितरे हैं
फिर भी भरी दोपहरी में
ओठों की निर्जीव पपड़ी-सा
कीचड़ से लथपथ, ऊबड़-खाबड़ किनारा
चखा था,
उसके स्पर्श की वेदना की मीठास
अब भी मेरे प्राणों में शेष है।

उसकी त्वचा के नीचे की कसमसाहट
त्वचा तक आते आते
करवट बदलते चीते की सुन्न खाल की थिरकन की तरह
मोहक और लयबद्ध बन जाती है।
और तब मुझे
हमारे बीच के अंधकार की चुद्रता का
भान होता है।

अंधकार उतना घना नहीं है
जितना मैंने सोचा था।
अधिक से अधिक उसका विस्तार
तट पर पड़े
पत्थर के वक्ष पर जमे खार जितना होगा।
बहुत हुआ तो
मृत मछली की नुची-गली चमड़ी जितना।

अचानक मुझे खयाल आया :
चाँदनी रात में समुद्र जब
अंधेरे के सारे वस्त्रों को चीर कर
नग्न हो चमकता होगा
तब इस झीने अंधकार का क्या होता होगा ?
कभी तो इसे मैंने
चींटियों के राजमार्ग-से
सूखे-सड़े वृक्ष की आंखों में
गन्दे कपड़े की तरह घुसकर बैठा देखा है
और कभी
हरे पत्तों के पीछे
जर्जर तम्बु-सा तना हुआ देखा है !

किन्तु जब
चाँदनी की चार कुशल अंगुलियाँ
छाती पर पड़कर
नीचे पीठ तक को प्रकाशित कर देने वाले
आदिम जोश से धँसती होंगी,
तब इस बेचारे

जंगली कुत्तों के बीच फँसे
बिल्ली के बच्चों की तरह भयभीत
इस रेशमी अंधकार का क्या होता होगा ?

मुर्दा आँतों को पकड़ कर
गिद्ध जैसे हवा में झूले झूलता है
वैसे ही
ये सब इसे धीरे धीरे
झुलाते होंगे ।

बेचारा आज की रात का यह पारदर्शी अंधकार,
सूअर की आँखों की करुण गुहाएँ
इसे सदैव की तरह
आज भी अपने अंक में भर लेंगी ।

मछली के चिकने काँटे का उपभोग करते-करते
इसे युद्ध-बन्दी की तरह भागना पड़ेगा,
तब
कौन पवित्र पुरुष इसे
अपने हाथों में थामेगा ?
कौन वेश्या इसे अपने वक्ष पर आलेप कर
अपने प्रियतम को स्नेहोपहार देगी ?
कौन लघु-लहरी
कौन-सा कच्छप
(जो आज इसकी शीतल-पाटी बिछाकर सोये हैं)
इसे शरण देंगे ?

ओ रे अंधकार
तेरा स्थैर्य मर जाएग. .
तेरी सतह उबलेगी
और अन्तत:
तुझे शायद
जैसे तैसे इसी सागर की पीठ की भीतरी त्वचा में
रंग बदल कर रहना पड़ेगा ।
●●●
अनु० म० मो०

सूर्य का जन्म

जयन्त पारेख

चिकने ईरानी गलीचे पर
सोई है श्याम-शर्वरी !
भूमध्यसागरीय प्रदेश की हाला से
तरबतर
धूसर रुपहले अम्बर
इसके
खिसके
हल्के चन्द्राकार स्तन झलके !
मौलश्री के फूल की मृदुता से
खेलने देता हूँ
इसकी गोद में
अंगुलियाँ वाचाल मोद में !
सूँघ कर कस्तूरी केश
लगा लेता हूँ इसके होठ से लगे
शीराज़ी जाम
होठों से अपने
दो-चार सपने-से अस्फुट शब्दों व
उच्चारते उच्चारते
छुपा लेता हूँ इसके मुखरित
अपनी बादल-हथेली में
लक्ष-लक्ष तारकों की झिलमिल
बज उठते हैं व्याकुलता के स्वर

डरी-डरी
श्याम-शर्वरी
अपने में समा लेने के लिए
कस लेती है मुझे बाँहों में
आहों में !
समाकर
यों परस्पर हम दोनों
हो जाते हैं एक
सृष्टि के जन्म के पहले के
अंधकार में अपने-अपनेपन तज
........और जनमता है सूरज

●●●

अनु० भ० प्र० मिश्र

मैं

आसन्नेय

दूर दूर
बादलों के परकोटे के उस पार
आकाश के खण्डहरों में
चन्दा का भभकता दीप ले
मेरी तलाश में
तू अब भटकना मत !

मैं यह रहा
तू मेरी कुशल-क्षेम पूछे
उससे पूर्व ही कह दूँ :
उस कठोर-स्याह शिला पर
युगों से सूर्य जल रहा है,
बादल बरस रहे हैं
तूफान आ रहे हैं !
उन सबकी चोटों से
वह शिला टूट गयी है !
उस शिला की दरार—
क्षण-क्षण अलक्ष्य रूप से बढ़ती जा रही है !
उस दरार से ही—
मैंने
मेरी अपनी टूटन पहचानी है !

जब मैं सोया होता हूँ :
एक विशाल गोलाकार पर एक बैल को [illegible] पाता हूँ !
उसे नीचे उतरना है।
उसी प्रयत्न में—
वह उस गोलाकार पर

उन्मत्त-सा दौड़ रहा है,
किन्तु फिर-फिर वह घबरा कर
वापस दौड़ पड़ता है !
क्योंकि :
गोलाकार के नीचे को दौड़ते ढाल से
नीचे गिर पड़ने का उसे भय है !
वह उतर नहीं सकता
और मैं अपने बिस्तर पर ही
आक्रोश में भर कर उठ बैठता हूँ ।

और जब मैं जागा होता हूँ :
वन में जल गये मकान की एक मात्र दीवार को खड़ी देखता हूँ !
उस दीवार के बीच—
द्वार विहीन एक प्रवेश-सा
जिसका न कोई आर है
न पार है
न अन्दर है
न बाहर है
मात्र एक खोखाल-सा
मैं स्वयं का पाता हूँ
मेरे पैर
आज कल कभी-कभी
गली हुई चीड़ से हो जाते हैं
मकान के ढह पड़ने के पूर्व-क्षण में
उसकी दीवारों में पड़ी दरारों में
जो कसमसाहट होती है
वैसी ही कसमसाहट
मुझे अपने घुटनों में सुनाई देती है ।
मेरे शंख का भग्न पंजर
भले ही अब समुद्र-तट के जल में झूलता हुआ
खुश हो ले,
पवन अब कभी भी—
उसमें से नाद बन कर गूंजेगा नहीं ।
●●●

वसन्त-वेणु

पिनाकिन ठाकोर

हाँ रे हाँ !
वन-वनान्तर में
आज वसन्त-वेणु गूंज रही है ।
इसके सुरों से आकाश में
जाने किसके आगमन की मधुर आश में
सारे पुष्प अपनी आँखें खोलते हैं
खोलते हैं
और लजाते हैं !

चुप चुप
अनुराग-बिन्दु झरते हैं
फूलों से सहाता नहीं
वन में समाता नहीं
पागल हो जैसे कोई—
प्रेमाब्धि छलकाता है ।
इसे कोई अवरोध नहीं
ज्वार जैसे चढ़ता ही जाता है
बढ़ता ही जाता है
स्वर के संगम में
वह सभी कुछ को साथ लिये
बहता ही जाता है !

●●●

अनु० म० मो०

कहाँ ?

प्रियकान्त मणियार

मछली !
नदी कहाँ
सर कहाँ ?
और कहाँ सागर ?
तीसरी मंजिल पर स्थित छज्जा कहाँ ?

दुग्ध धवल स्तम्भिका
निकट झूलता विहगों का जल-पात्र;
व्योम कहाँ ?
सूर्य कहाँ ?
प्रचण्ड मध्याह्न से त्रस्त
और
वाहनों से गुंजित
नगर कहाँ ?
कहाँ है वहाँ—
उस स्तम्भिका के ऊपर
उस पात्र के जल में ही
जल, पवन, तेज और छाँह के मिश्रण से
खेलती
कूदती
मछली तैरती ?

●●●

अनु० जयेन्द्र दवे

एक स्त्री का डाइंग डिक्लेरेशन

मकरन्द दवे

मत पूछो
मत पूछो
मुझ से कुछ भी मत पूछो !
अब तो मुझे चैन से सो जाने दो !
स्वयं ही मेरी पलकों को नोंच कर
तुमने मुझे रुलाया है
और अब तुम्ही मेरे आँसू पोंछने आये हो ?

किसने पिलाया ?
क्या मैंने ही अपने हाथों घोल कर पी लिया है ज़हर ?
कितने बेहूदे हैं प्रश्न ये ?
इनसे अब क्या अन्तर पड़ने वाला है ?
छोड़ो,
छोड़ दो मुझे
अब मुझे सुख से सो जाने दो !

तुम सब उस समय कहाँ थे—
जब यह सारी ज़िन्दगी ही ज़हर थी ?
अब,
जब मैं चिर-निद्रा की शरण में जा पहुँची हूं
क्यों मेरे मुख में उंगली डालकर बुलवाना चाहते हो ?

जाओ,
मुझे कुछ नहीं बताना है !
जाओ
कहीं और जाओ !
जाओ
कहीं भी चले जाओ !
जाकर देखो
कि विवाह-मण्डप में चूंदड़ी की उष्मा
किसने सही थी ?
मेरा तो काम समाप्त हुआ !
मैं तो अब आराम से सोती हूं !

●●●

अनु० म० मो०

सूना घर

राजेन्द्र शाह

वातायन के पास
पातहीन डाली पर
बैठ गया है उल्लू आकर

अंधकार घन
से
ले कर कालिमा
गढ़ी गयी है देह इसकी
मढ़ी गयी है आँखों में
तरुन किरन सूरज की !

अहर्निशि मानो पात ही सरीख ।
महाकाल
पकड़े है मरण-डाल !

चुपचुप फिरती है मज़र,
आंदोलन आँखों का देखकर
लगता है
मन में आवेग है—
इच्छा नहीं, वाचामय वाणी नहीं;
एक बिन्दु थका हुआ
मानो तरंगायित वर्तुल में पड़ा हुआ
होता है विस्तरित ।

आर नहीं, पार नहीं
साहिल नहीं, धार नहीं !

पातहीन डाली पर
मूक
है अलूक !

●●●

अनु० भ० प्र० मिश्र

क्षितिज से

मीनू देसाई

शांत संगीत सागर का
और यह क्षितिज पंथ
इसकी वाणी अबाध है
और मार्ग है अनंत !

ओ री आशा !
मैं तेरी टिमटिमाती दमक देखता हूं
अपनी आँखों के अंधकार को
मैं इसी से धोता हूं ।

ओ रे क्षितिज !
बहुत लम्बा है तेरा पंथ
और मार्ग है अनन्त ।

●●●

अनु० म० मो०

हे स्वप्न-सुन्दर

सुन्दरम्

हे स्वप्न-सुन्दर
मधुर कैसी थी मिलन की वह घड़ी ?
अंधेरा था झुटपुटा
चिलकती धूप में चमकते तेरे केश-सा
था उजाला झुटपुटा
कि तेरे अर्द्धोन्मीलित नयन के उन्मेष-सा
फुल्ल कुसुमों की सुरभि से थका
मीठा पवन जाता था बहा
वसन मानो अप्सरा का
गगन-भर लहरा रहा।

तू वहाँ सटकर खड़ी थी भित्ती से
यों शांत सुस्थिर
महामंदिर वीथि के स्तम्भ पर
उत्कीर्ण जैसे मूर्ति मनहर !

नयन तब ऊपर उठे
कान पर आते हुए वे फूल वेणी के खिले
स्निग्ध अधरों पर हँसी ऐसी खिली
सुरभि भीने कुंद हों जैसे खिले।

थी नहीं मुस्कान वह केवल
कि वह तो था सकल !
गगनचुम्बी गिरि-शिखर के
किसी चम्पक-वृक्ष से जैसे
गिरे हों पुष्पदल झर के;
यह हँसी-हल्की, झरी
लो, अंजुरी मैंने भरी
उस महमहाती रात में
मुस्कान के संग-साथ ही
मैं चल पड़ा अपनी दिशा में !
(घन-अंधेरे से भरी उजली निशा में !!)

हे स्वप्न-सुन्दर
मधुर
कैसी थी मिलन की वह घड़ी ?

●●●

अनु० भ० प्र० मिश्र

शायद

सुरेश जोशी

शायद मैं कल न रहूँ—

कल जो सूर्य उगे तो कहना:
मेरी मुंदी हुई आँखों में
एक आँसू अभी सूखना शेष है;

कल जो पवन बहे तो कहना:
किशोर-वय में एक कन्या के चोरी किये स्मित का पक्व फल
अभी मेरी शाख से झड़ना शेष है;

कल सागर में जो ज्वार उठे तो कहना :
मेरे अन्तस् में जम गये
पाषाणी ईश्वर को चूर चूर करना अभी शेष है;

कल जो चाँद उगे तो कहना :
मेरे अंकुश की कैद से मुक्त होने को
एक मत्स्य अभी मुझमें तड़प रहा है;

कल जो अग्नि प्रज्वलित हो तो कहना :
मेरी विरही परछाई की चिता
अभी प्रज्वलित करना शेष है।

शायद
मैं कल न रहूँ !....

●●●

अनु० म० मो०

दुःख का सुख

हँसमुख पाठक

जब बहुत गहरा जाता है दुःख
जाने कैसा तो होता है सुख
कि उसी में खो जाते हैं।

कैसे हुआ ?
किसने किया ?
कैसी भूल ?
पूछते बनता नहीं
सारे प्रश्न उसी में खो जाते हैं
कि आश्चर्य होता है।

फिर भी
किसी स्वप्न में,
किसी रात मे
किसी राह में
हर्ष की किसी बात में
वह पकड़ा जाता है।

अस्तित्व के बीच भूलता
रोम रोम से
कभी इतने जोम से
यह एक क्षण में प्रकट हो जाता है
कि रोना आ जाता है।

जब बहुत गहरा जाता है दुःख
जाने कैसा तो होता है सुख
कि वह धुल जाता है।

●●●

अनु० म० मो०

भावन : अभावन

सुरेश दलाल

नहाकार आये बालक की तरह
(नग्न और निर्दोष)
कोई शब्द भी, किन्तु कितना मोहक होता है ?

देखता रहूँ, मुग्धाता रहूँ
चुमकारता रहूँ
(जैसे भी बने)
मैं उसे खिलाता रहूँ !

शब्द का भी, किन्तु
अपना अनुपम रूप होता है—(नैसर्गिक)

श्रीमंत
(बीते कल तक जो रंक था) की
पोशाक क्या ?

(भड़कीले)
शब्द मुझे नहीं भाते।

●●●

अनु० म० मो०

कहानियाँ

घनसुखलाल महेता
पन्नालाल पटेल
ईश्वर पेटलीकर
प्रागजी डोसा
शिवकुमार जोशी
सुरेश जोशी
चुन्नीलाल मडिया
कुन्दनिका कापडिया
शान्ता जोशी
धीरू बहन पटेल

नाटक

धनसुखलाल मेहता

रमणलाल हाल ही में ग्रेज्युएट हुआ था। कुछ दिन पहले ही सूरत-नगर में उसका विवाह हुआ था और वह 'हनीमून' के असर से अभी ऊपर नहीं उठा था। नवागता पत्नी के साथ एकान्त पाने की उसकी तीव्र आकांक्षा रहती, जो कि घर में माता पिता, बहन-भाई आदि के कारण कठिनाई से ही मिल पाता था। अभी अभी डिग्री ली थी, अतः पति-पत्नी के प्रेमालाप और हास्यादि की भूख भी काफी थी।

उसकी पत्नी रमा मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त, उच्चकुल की लड़की थी और चौबीसों घण्टे ज़रा-ज़रा सी बात में हँसी की फुहारें छोड़ती रहती थी! उसके इस स्वभाव के कारण बहुत से लोग उसे प्यार में 'हँसती चिड़िया' कह कर पुकारा करते! हँसने पर रमा के गाल में जो छोटा-सा गड्ढा पड़ता, उसे देख रमणलाल के मन की वही दशा हो उठती, जो माशूक के तिल को देख अरब के शाह की हुआ करती थी! पत्नी को

ज़रा-सा भी कष्ट होने पर वह किस आसानी से अपना सर्वस्व न्योछावर कर देगा—यही सब वह प्राय: ही सोचा करता । उसे लेश-मात्र दर्द या घबराहट हो जाने पर वह डॉन-क्विक्ज़ॉट की तरह सारी दुनिया को पैरों तले कुचल देने पर आमादा हो उठता । ऐसे क्षणों में रमा पति के मुख की ओर देखती रहती और फिर हँसी का झरना बहाते हुए कहती—यह क्या पागलपन करते हो ? इतने में ही क्या तुम्हारी रमा को गरम सलाखें चिपट गयीं ?

एक शाम, रमणलाल होप-पुल पर घूमकर सातेक बजे घर लौटा तो उसे वहाँ कुछ असाधारण घटना का आभास मिला । छोटा भाई और छोटी बहन सामने वाले कमरे में शीर्षासन करने का प्रयत्न कर रहे थे । यह अजीब दृश्य पिताजी ने भी देखा, किन्तु वे सहज रूप से मुस्कुराते हुए दूसरे कमरे में चले गये । बड़ी बहन से इस प्रकार की कसरत सम्भव नहीं थीं, अत: वह बार बार सीढ़ी के दो दो पगथिये साथ-साथ उतर चढ़ रही थी । इस उत्साह और उस मादक मस्ती का कोई कारण समझ में न आने पर उसने छोटे भाई से पूछा ।

छोटे भाई ने उछलते कूदते उत्तर दिया—अरे वाह भैया । तुम्हें अभी तक पता ही नहीं ? अरे आज अपन नाटक देखने जाएँगे । छ: पास आये हैं !

—आ हा ! यह तो बहुत बढ़िया बात हुई !—नाटक और वह भी मुफ्त में देखने का अवसर मिला है, यह जानने पर रमणलाल भी खुशी से फूल गया ।

न मालूम क्यों और कैसे, किन्तु ऐसी हालत में मानव-प्रकृति कुछ अजीब व्यवहार कर बैठती है । मनुष्य कितना भी वैभवशाली हो और चाहे जो वस्तु क्रय करने की शक्ति से सम्पन्न हो, फिर भी जैसा आनन्द उसे किसी वस्तु के मुफ्त में मिलने पर होता है, वैसा पैसा खर्च कर उस वस्तु को प्राप्त करने में कभी नहीं मिलता । फिर नाटक और सिनेमा के लिए फ्री-पास मिलने पर तो अवर्णनीय आनन्द मिलता है ।

साधारण रूप से पचास रुपयों पर पानी फेरते भी जिसे हिचक नहीं होती, उसी को यदि इन आमोद-प्रमोदों के लिए दो तीन मुफ्त टिकिट मिल जायँ तो वह खुशी में अपनी जान भी शैतान के हाथों सौंप दे । यह बात इतनी सर्वविदित है कि अधिक लिखना व्यर्थ है ।

रमणलाल बेहद खुश था और उस खुशी को पत्नी के साथ मिलकर भोगने के लिए वह उत्सुकतापूर्वक तीन चार बार अपने व्यक्तिगत कमरे में हो आया; किन्तु काम का समय होने से रमा ऊपर नहीं आ सकी । अन्ततः निराश होकर वह सामने कमरे में ही पड़ी आराम-कुर्सी पर निढाल होकर सोचने लगा कि कौन से कपड़े पहन कर नाटक देखने जाना चाहिए । महीन धोती और लम्बा सिल्कन कुरता पहनना चाहिए या कि सूट इसी उलझन में वह उलझ गया । रमा कौन-सी साड़ी में अच्छी लगेगी, इस विषय में भी वह काफ़ी परेशान हो रहा था ।—साले, इन संयुक्त परिवारों में यही तो आफ़त है । अकेले होते तो अभी बुला कर निश्चय कर लेते । कुढ़ कर वह मन ही मन यह सब बुदबुदाने

लगा । विचार-शृंखला आगे बढ़ी । एक गाड़ी में सारा परिवार तो बैठ नहीं सकता, अस्तु पुरुष वर्ग को तो निश्चय ही पैदल चलना होगा, यह उसे विश्वास था । अस्तु गाड़ी में पत्नी के साथ बैठ पाने की आशा करना तो एक प्रकार की मूर्खता ही थी । नाट्यशाला में यदि वह बुद्धि से काम ले तो रमा के साथ बैठा जा सकता है, उसने सोचा । फिर भी इन विषयों में पुराने और नये लोगों के विचारों में अन्तर होता है, इस सचाई से भी वह अनभिज्ञ न था । यों खुले आम पति-पत्नी साथ बैठ जायँ तो जैसे उल्कापात ही हो जाने का भ्रम पुराने लोगों को हो आता है । और ऐसे नवदम्पतियों को साथ बैठने दें तो वे पूरे समय व्यर्थ की चख चख करते रहते हैं । उधर छोटे बच्चों के मन में यह ख़याल घर किये रहता है कि पति-पत्नी साथ बैठ जायँ तो बड़ा भाई छोटे भाई-बहनों की ओर ध्यान ही नहीं देता है ! फिर भी रमणलाल को विश्वास था कि मन में सच्ची लगन होने पर इन सब बाधाओं को चुटकियों में दूर किया जा सकता है ।

वह अपने विचारों में उलझा था, तभी रसोई में से माँ की आवाज़ सुनाई दी—अरे जल्दी जल्दी खाना खा लो । फिर नाटक में समय पर पहुँचना है ।

रमणलाल नीचे जाने को उठा ही था कि उसकी बड़ी बहन हाथ में कपड़े लिये उधर से निकली । रमणलाल ने पूछा—क्यों दीदी, तेरी भाभी ने अभी कपड़े नहीं निकाले ? —रमा भाभी ने ? अरे वह कहाँ जा रही है कि कपड़े निकालेगी ? —कुछ भी और पूछने से पूर्व ही बड़ी बहन धड़ाधड़ सीढ़ियाँ उतरती चली गई ! ऊपर के कमरे में रमणलाल अकेला रह गया ।

ज़रा देर में फिर माँ की पुकार आयेगी कि खाना खाने चलो, इसी परेशानी के बीच वह फिर जल्दी जल्दी सोचने लगा—लेकिन रमा नाटक देखने क्यों नहीं जा रही है ? बात क्या है आखिर ? अरे-रे, अब समझा । पास तो कुल छः ही हैं । माँ, पिताजी, दो बहन और दो भाई । बेचारी रमा के लिए तो गुंजाइश ही नहीं रही । छिः छिः कितनी बुरी बात है ? कितनी निष्ठुरता है यह ? संयुक्त परिवार की इस अग्नि में कितने निर्दोषों को बलि का बकरा बनना पड़ता है ? इसीलिए रमा एक बार भी ऊपर नहीं आई ! लेकिन रमा ! तेरा पति ऐसा निर्दयी नहीं , इतना स्वार्थी नहीं है । यदि रमा नाटक देखने नहीं जाएगी, तो रमण भी नहीं जाएगा ? यह बात ध्यान में आते ही उसने सोचा कि अब जो कुछ करना हो, तुरन्त करना चाहिए । अभी माँ पुकारेगी तो उत्तर में कुछ न कुछ तो कहना ही पड़ेगा । एक क्षण को इच्छा हुई कि माता पिता के इस अन्यायपूर्ण व्यवहार के विरुद्ध विद्रोह करना चाहिए; किन्तु इतनी हिम्मत तो हुई नहीं ! फिर सोचा कि स्वयं भी बहाना करके नाटक देखने का सुख त्याग दे और फिर पत्नी को दिखा दे कि वह उसके प्यार में कहाँ तक अपने सुख-भोगों का त्याग कर सकता है । उसने तुरन्त सोचा कि मेरे पेट में पहले जब, तब दर्द रहता था, सो वही बहाना ठीक रहेगा ? यह निश्चय करते ही माँ की पुकार आई—अरे भाई चलो न !

छोटा भाई दौड़ता हुआ ऊपर आया । कहने लगा—जल्दी चलो न भैया, देर हो जाएगी तो नाटक शुरू हो जाएगा ।

—जा, माँ से कहना कि मेरे पेट में दर्द है । मैं खाना नहीं खाऊँगा । कह कर रमणलाल वहीं दरी पर लेट गया ! छोटे भाई के नीचे जाकर वह सब कहते ही माँ, पिताजी और बड़ी बहन दौड़े दौड़े ऊपर आये—क्या हो गया ? बहुत दर्द है ? डॉक्टर को बुलाएँ ? और अन्त में माँ ने पूछा—मैं तेरे पास रुकूँ ? नाटक देखने नहीं जाऊँ ?

सबका अपने प्रति यह स्नेह देखकर क्षण-भर उसने मन में सोचा कि मैं इन्हें इस प्रकार धोखा देकर ठीक नहीं कर रहा । तभी माँ ने कहा—जाओ, तुम सब खा लो ! मेरा तो एकाहार है आज; सिर्फ दूध ही पीना है ! तुम्हारी भाभी खाना परोस देगी ! इतने मैं हींग ले आऊँ ! नाभि में भर दूँगी तो चैन पड़ जाएगा ! पहले भी इसके ऐसा ही दर्द होता था न !

रमणलाल का द्रवित होता हृदय फिर आक्रोश से भर गया !—काम करने को भाभी और मौज उड़ाने को दूसरे । मेरी तबियत खराब है, फिर भी उसके सिर सबको खिलाने का काम । जैसे अपने पति की देख-भाल वह नहीं कर सकती ?

पिता खाना खाने जाते हुए बोले—एक जिंजर मंगाये देता हूँ । पी लेना । हम खाना खायें, इतने में ठीक लगे तो चलना, नहीं तो फिर आज आराम करना । नाटक तो रोज़ ही होते हैं । फिर देख आना ।

रामजी जिंजर ले आया । माँ ने हींग चुपड़ दी ! नीचे खाना-पीना समाप्त हुआ और फिर कपड़े पहनने की धूम शुरू हुई ! सबके खा चुकने पर नौकर के लिए खाना निकाल कर रमा ढका-ढकी में लग गई, अस्तु ऊपर आ ही नहीं सकी । सब तैयार हो गये ! गाड़ी भी आ गई । तब बड़ी बहन ने पूछा—पिताजी, रमण आ रहा है ?

पिता ने रमण से पूछा—क्यों भाई, कैसी तबियत है ? चलना है ?

रमणलाल ने गर्दन हिला कर ना करदी । कहा—मैं तो ज़रा सोऊँगा ! तबियत ज़रा हल्की हो जाएगी !

पिता बोले—हाँ-हाँ, यही ठीक रहेगा !

—लेकिन एक पास बच गया, उसका क्या होगा ? —बहन ने पूछा ।

—तेरे दूल्हे को तो नाटक का शौक है नहीं, सो उससे तो पूछना ही व्यर्थ है । रास्ते में तेरे देवर को ले लेंगे । वह इन सबका बड़ा शौकीन है !

रमणलाल इस सब से और भी क्षुब्ध हुआ । बहन के देवर की याद इन्हें आगयी, लेकिन आँखों आगे खड़ी रमा की याद किसी को नहीं आई । कैसा अत्याचार है ?

सभी नीचे उतरने लगे ! अच्छा भाई, हम चले ! रामजी ही दरवाज़ा खोल देगा । तुम अपने सो जाना ! —पिता ने कहा ।

फिर माँ की आवाज़ सुनाई दी—रमा हम जा रहे हैं ।

रमा ने नीचे से उत्तर दिया—हाँ, आवजो ।

—रमा भाभी, तुम कैसी लटक गयीं ?—छोटे भाई की आवाज़ सुनाई दी ।
—अरे, मैं जाऊँगी तो तुम्हें भी लटकता छोड़ कर जाऊँगी । रमा ने उत्तर दिया और उसके मुख से मीठी हँसी की लहर निकल पड़ी । माँ और पिता भी थोड़ा-सा हँसे और फिर शान्ति छा गई ।
ऊपर रमणलाल संयुक्त परिवार की प्रथा के प्रति क्रोध प्रकट करता और पत्नी के प्यार के लिए किये गये अपने महान् त्याग के कारण स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता, फिर से आराम कुर्सी पर पड़ गया । कुछ ही देर में रमा ऊपर आई ।

कुछ लजाती और पति की अस्वस्थता से कुछ घबराती रमा रमणलाल के निकट आकर बोली—अब कैसी है तबियत ? एकदम क्या हो गया यह ? नाटक में भी नहीं जा सके । रमा के पास आते ही रमणलाल एकदम उठ खड़ा हुआ और उसे अपनी बाँहों में जकड़ते हुए हँसकर बोला—मैं, बीमार ? अहा—बीमार तो हूँ मैं, किन्तु प्रेम का बीमार । बाँहों से छूट कर रमा धीमे से बोली—मेरी तो समझ में कुछ नहीं आ रहा । दर्द मिट गया तो फिर नाटक में क्यों नहीं गये ?
रमणलाल धीरे धीरे उसके पास गया । उसके दोनों कंधों को पकड़ कर बोला—मैं समझाता हूँ तुझे ! जब मुझे पता लगा कि माँ व पिताजी तुझे नहीं ले जा रहे हैं तो मैंने सोचा कि जो सुख तुझे नहीं मिल सकता, वह मुझे भी नहीं चाहिए । इसीलिए मैंने पेट-दर्द का बहाना किया और नहीं गया । कैसे निर्दय होते हैं लोग ।
उसके प्यार-भरे वाक्य सुनकर रमा स्तम्भित रह गई । कुछ क्षण उसकी ओर एकटक देखती रही । फिर स्नेहावेग में कुछ देर उसके ओठ फड़के । फिर उसी आवेश में उसका स्वाभाविक हास्य फूट पड़ा । हँसी रोकते हुए वह बोली—हद हो गई । यह क्या मज़ाक लगा रखा है तुमने ? ढोंग करके सभी को घबरा दिया और नाटक देखने का मौका खो दिया । तुम्हें पूछना तो चाहिए था । बिना किसी विशेष कारण के ही वे मुझे नाटक देखने नहीं ले जाते ?
—तो, तो वे तुझे ले क्यों नहीं गये ?
—बताती हूँ । मेरे पीहर के रिश्ते में उस मनसुख का विवाह है कल और ग्रह-शान्ति वगैरह के सारे काम आज रात होंगे । उसकी मां के रूप में सब कुछ मुझे ही करना है, सो रात भर वहाँ रहना पड़ेगा ।
प्रतिक्रिया में रमणलाल के चेहरे के बदलते भावों को देखकर रमा फिर हँस पड़ी । खीझ कर वह बोला—हैं । इसलिए तू नाटक में नहीं जा रही थी ? तो तूने मुझे पहले ही क्यों नहीं बताया ? परिस्थिति समझने पर उसके प्रेम का स्वरूप बदलता जा रहा था ।
—तुम्ही ने कब पूछा था, और कब मैंने नहीं बताया ? पता नहीं क्यों तुम यह माने बैठे हो कि सारी दुनिया मुझे दुख देती है ।
रमणलाल कुछ क्षण रुका और फिर शान्त रहने का प्रयत्न करते हुए बोला—ठीऽऽक ।

अब ऐसा नहीं मानूँगा । अब तुम पीहर जाओगी और सारी रात वहाँ रहोगी, यही न ?
—हाँ ! हाँ ! उसके बिना कोई चारा भी तो नहीं । अनजाने ही रमा से रमणलाल के बोलने के तरीके का अनुकरण हो गया ।

हूँ ! तो जाओ । लेकिन मुझे तो भूख लगी है । रामजी को पता न चले, ऐसे कुछ ले आ खाने को ।

भूख के कारण अच्छे अच्छों का ईमान डोल जाता है । अपने सौ सौ पुत्रों के शवों का ढेर लगा कर माता गांधारी फल लेने के लिए किस प्रकार उस ढेर पर चढ़ी थी—यह कथा कौन नहीं जानता ?

—अब खाना कहाँ से लाऊँ ? माताजी ने तो सब रामजी को दे डाला है । कल तो अपन सबों को विद्या बहन के घर भोजन के लिए जाना है ।

किस्मत की इन लगातार चोटों से ढीला पड़ा हुआ रमणलाल बोला—अरे रूखा-सूखा कुछ तो होगा ? नही तो दूध ही ले आ । —अरे भई, अब मैं क्या करूँ ? खाने को रत्ती भर नहीं है और ऐसी हालत में तुम्हें दूध दिया नहीं जा सकता था, सो ससुर जी के लिए एक कप चाय लायक दूध रख कर बाकी मैंने जमा दिया । —पति की इस हालत से व्याकुल होती रमा क्षण-भर को अपनी हँसी भूल कर बोली !

—तो इतना-सा दूध भी क्यों रखा है ? मटकी का पानी ही काफ़ी होता । ख़ैर, जो हुआ सो हुआ । एक कप चाय तो बना दोगी, या वह भी नहीं ?

—हाँ, उसके लिए मैं कहाँ मना कर रही हूँ ?

तभी नीचे से पुरोहित की आवाज़ आई—रमा बहन ! अब चल रही हो या नहीं ? सब तुम्हारी राह देख रहे हैं । माँ ने कहलाया है कि गहने-कपड़े वहाँ हैं, सो ले चलने की आवश्यकता नहीं है ।

—मैं·······मैं आ रही हूँ । तुम ज़रा नीचे रुको । —फिर रमणलाल से पूछने लगी—मैं रामजी को चाय बनाने के लिए कह दूँ ? काफी देर हो गई है ।

क्षण भर को रमणलाल ने सोचा कि देर हो तो हो चाय तो रमा के हाथों बनवा कर ही पीनी है । किन्तु रमा का मुँह देखकर वह ऐसा कह नहीं सका ।

—हाँ हाँ, रामजी से ही कह दे ।

ऊपर से ही रामजी को एक कप स्ट्रांग और मसाले वाली चाय बनाने को कहकर रमा फटाफट सीढ़ियों की ओर बढ़ी । तभी उसकी दृष्टि भाग्य के क्रूर हास्य का भोग बने रमणलाल के चेहरे पर पड़ी । मन में कोई नयी बात उठी । लज्जा को दबाकर वह फिर रमणलाल की ओर पलटी । रमणलाल कुर्सी पर बैठा था । नीचे झुक कर उसने रमणलाल का एक प्यार भरा चुम्बन लिया । इस आकस्मिक आक्रमण से मुक्त होकर वह प्रत्याक्रमण करता, उससे पूर्व ही रमा धड़ाधड़ सीढ़ियाँ उतर गई । फिर भी उतरते उतरते उसे मज़ाक सूझा । हँसते हुए उसने कहा—अब ऐसा पागलपन फिर कभी न करना ।

●●●

सैकण्ड क्लास में

पन्नालाल पटेल

एक ओर अहमदाबाद से हमारी गाड़ी छूटी और दूसरी ओर किसी ने बाहर से हमारे डिब्बे का दरवाज़ा खोला।

यदि थर्ड-क्लास होता तो यह कोई आश्चर्य की बात न होती पर यह तो सैकण्ड-क्लास था और वह भी ऐसा, कि जिसकी चारों बर्थ रिज़र्व कराई हुई थीं। उससे भी बड़ी बात यह थी कि रात थी और समय थी ग्यारह बजे का, अर्थात् पूरी तरह सोने का।

मेरी सीट दरवाज़े की ओर बगल में थी, इसलिए पहले मुझे यह पता न चला कि आगन्तुक कौन है। फिर मुझे इसकी चिन्ता भी कम थी, क्योंकि मुझे इस बात का विश्वास था कि इस अतिरिक्त यात्री के विरोध का अवसर आने से पहले, सामने की सीट वाला वह अधेड़ उम्र का मिल-मालिक चाहे जिसको कानून बता सकता था। उसकी सीट के इधर

बैठकर सिनेमा सम्बन्धी पत्र के पन्ने उलटता हुआ वह युवक 'फिल्म हीरो' तो टिकिट चेकर के काम में भी बाधा उपस्थित करने वाला मालूम हुआ था। लेकिन मेरा विश्वास था कि मेरी सीट पर बैठा हुआ युवक फौजी अफसर इन दो में से एक भी बात न होने देगा। अरे, उसका भारी डील-डौल और उसकी साँड जैसी आँखें ही काफी थीं।
वह दरवाज़े की ओर गर्दन घुमा कर तुरंत खड़ा हो गया, साथ ही वह सिनेमा-एक्टर भी। और तो और, गुदगुदे तकिये के सहारे लेटे सेठ जी भी आधे बैठे हो गये।
मुझे भी उस घुटन भरे वातावरण ने खड़ा कर दिया। "लेकिन है क्या ?"
देखता हूँ तो फौजी युवक के हाथ में सारस के पंखों जैसे दो तकिये हैं, जबकि वह सिने-अभिनेता उस सुकुमार यात्री को चढने में सहारा दे रहा था। मैं भी आगे बढ़ा। लेकिन मेरे पहुँचने से पहले ही उन दो जवानों को 'थैंक यू' की मधुर आवाज में मिह-नताना भी चुकता कर दिया गया।

अपनी बग़ल में काफ़ी जगह खाली होने पर भी सेठ जी ने तकिये की तरफ खिसकते हुए, बिछे हुए बिस्तर को हाथ से ठीक करके उस अत्यन्त सुन्दर युवती को बैठने का निमंत्रण दिया।
लेकिन इतने में तो उस फौजी युवक ने दूसरे की सीट खाली करके ही कृष्णार्पण कर दी। मेरी सीट पर उन दो तकियों को रखते हुए उस युवती ने जैसे प्रार्थना की—'बैठिये !' और फिर वह स्वयं भी उस युवती की बग़ल में बैठ गया। वह हीरो भी जाने-अनजाने उसी सीट पर जम गया।
और देखते रह गये—से मुझको, सेठ जी ने अपने बिस्तर का किनारा दे दिया।
लेकिन मुझे तो यह दूसरे की जगह और भी काम की लगी। कारण, जैसे चित्र अमुक दूरी में सुन्दर प्रतीत होता है, वैसे ही संगमरमर से गढी हुई-सी वह मानवी मूर्ति, जहाँ मैं बैठा था वहाँ से, और जिस कोण से मै देख रहा था, उससे गज़ब की सुन्दर और आकर्षक लगती थी।
यह अवश्य है कि वह उम्र में ढलती-सी लगती थी, पर उसके गोल-मटोल नयनों की चपलता और होठों तथा मुँह पर खेलते भावों की क्रीड़ा देखकर लगता था कि उसने यौवन को अभी पूरी तरह जाने नहीं दिया है। वे दोनों तकिये भी सफेद थे और यह युवती भी ऊपर से नीचे तक सफेद कपड़े पहने थी। यह देखकर मुझे क्षण भर को ऐसा लगा कि कहीं कोई हिमपरी ही तो हिमालय से नहीं उतर आई। वह आई भी [illegible] इसी ढंग से थी न ? अरे, मुझे तो डिब्बे की रोशनी भी दुगुनी हुई-सी जान पड़ती थी।
मैं समझता था कि उसकी आँखें जितनी चंचल थीं, उतनी ही तेज़ उसकी जीभ भी [illegible] और बहुत करके इस छोटे से डिब्बे में वह अभी अंग्रेजी में ही धूम मचा देगी, लेकिन वह तो पर्स से पंखा निकाल कर, गले के नीचे से हुक की कोर को तनिक ऊँचा कर हवा खाने लगी।

मुझमें बेचैनी जैसी कोई चीज़ पंख फड़फड़ाने लगी। सेठ जी ने दबाये हुए तकिये को और ज़ोर से दबाया। फौजी युवक ने पैर की अंटी मारी, जब कि हीरो ने पतलून की जेब से सिगरेट निकाल ली। ठीक है, गर्मी ही गर्मी को मारती है न ?

लेकिन हम सबकी अपेक्षा वह फौजी युवक कम विचलित होता दिखाई दिया। दूसरे ही क्षण वह उठा और सेठ जी की ओर चलते पंखे को उसने युवती की ओर घुमा दिया। उस युवती ने फिर जैसे शहद लगा रोटी का टुकड़ा फेंका—'थैंक यू !'

फिर शान्ति छा गई, लेकिन बाहर ही, क्योंकि अन्दर हम सबके मन अशान्त ही थे।

यही तो कारण था कि वह फौजी युवक और हीरो, अमुक स्टेशन पर गाड़ी सबेरे कितने बजे पहुँचेगी, वहाँ से दूसरी गाड़ी कब छूटेगी और फिर किस किस साधन से उस युवक-कॉन्फ्रेन्स में पहुँचा जायगा, आदि एक बार पहले की गई बातों को फिर दुहराने लगे थे। और यहीं फौजी युवक के सिक्का जमाने से पहले हीरो ने समय से लाभ उठाया ! अपने घुटनों पर झुकती युवती स्वय गुजराती है या नहीं, यह अंग्रेज़ी में पूछ कर उसने जान लिया और फिर गुजराती में ही उससे पूछा—'क्या आप भी इसी कॉन्फ्रेन्स में जा रही हैं ?'

'जी हाँ।' उत्तर मिला। उसके सुन्दर ओठों से मन्द-मन्द हास्य भी झरता जाता था। उन दो युवकों को तो वह अमृत ही जान पड़ा होगा। तभी तो उस युवती से उन्होंने स्थान, समय और वाहन के विषय में बातचीत करना आरम्भ कर दिया था ?

लेकिन युवती कुछ अभिमानिनी निकली। 'हाँ' और 'नहीं' के संक्षिप्त उत्तर देती हुई जैसे वह अपने व्यक्तित्व को अलग ही रख रही हो। बात समाप्त होते ही वह पूर्णतः पृथक् हो जाती थी।

फिर वही शान्ति और बेचैनी ! अन्यथा जहाँ पलक झपकने का भी मन न हो वहाँ 'हीरो' को सोने की इच्छा क्यों होती ? उसने फौजी युवक से अंग्रेजी में ही कुछ पूछा। मैं शब्द तो पूरे न समझ सका, पर आशय समझ गया कि वह सोने की व्यवस्था करने को कह रहा है।

और इस बार जैसे सहसा ध्यान आ गया हो, ऐसे हीरो ने उस युवती की ओर सहज भाव से झुकते हुए पूछा—'आपका कोई सामान तो स्टेशन पर नहीं रह गया ?'

जैसे कृपा कर रही हो, ऐसे मुस्कराती हुई वह युवती बोली—'जी नहीं।''

'तो आप·······बेडिंग·······।'

वह झटक कर बीच में ही बोल उठी—'बस, ये दो तकिये काफ़ी हैं।'

'अरे, कहीं ऐसे चलता है,?'' सेठ जी बोल उठे। उन्हें लगा कि वे पीछे रह गये। इसलिए अपने ओढ़ने के कपड़े को खींच कर उसे देते हुए कहा—'लो, यह बिछा लो।'

गर्मी होने से ओढ़ने की जरूरत न थी, फिर भी सेठ जी ने कहा—'ओढ़ने की जरूरत पड़ेगी तो मेरे पास यह शाल है।'

मुझे लगा—'लेकिन जगह का क्या होगा ?'' इन लोगों का आतिथ्य-सत्कार देख कर मैं मन ही मन क्षुब्ध हो रहा था। फिर उन अहमदाबादी सेठ जी ने जो फट से बिछौना निकालकर दे दिया था, और सस्ती वाहवाही लूट ली थी, उसका भी ध्यान आया। उन दो युवकों को 'बर्थ' के लिए परेशान देखकर मैं हीरो के सिनेमा-पत्र में ही खोया रहा। 'चाहिए तो सही, देखें बर्थ के लिए क्या करते हैं ?'

हमारी यह गाड़ी खास तौर से छोड़ी गई स्पेशल थी, इसलिए सब यात्री उस जकंशन स्टेशन से ४०-५० मील दूर होने वाली कॉन्फ्रेंस में जाने वाले हों तो स्वाभाविक ही था। इस दृष्टि से सबको रात के शेष छः घण्टे गाड़ी में ही गुज़ारने थे।

हाँ, थर्ड-क्लास में तो रात या नींद का हिसाब लगाया ही नहीं जाता। परन्तु इस ऊँचे क्लास में तो सोने की बात पहले सोची जाती है। अन्यथा व्यर्थ ही दुगुने-तिगुने पैसे खर्च करने का अर्थ ही क्या है ?

उन दोनों को परेशानी में पड़ा देखकर युवती (मेरे निश्चय के अनुसार तो मुझे ही सुनाने के लिए) ज़ोर से बोली—'अरे, क्यों परेशान हो रहे हैं ! मैं यहीं नीचे ही ...... इसी दृष्टि से तो ये दो तकिये और साथ ही एक नॉवेल लेती आई हूँ।'

सचमुच ही मुझे उसके अभिमान पर दया आई। लेकिन दूसरी ओर उसके अभिमान से कुचल न जाने का अभिमान मुझे भी था। इसलिए मेरी ओर देखने वाले उन दो परेशान युवकों को उत्तर न देकर मैंने हँसकर उस युवती से ही कहा—'इससे तो यही अच्छा है कि हम दोनों उपन्यास और बर्थ की अदला-बदली कर लें।'

युवती ने प्रसन्नता-पूर्वक अद्भुत दृष्टि से देखा। लेकिन ऊपर से अब भी वह 'अरे नहीं, नहीं ! आपको क्यों व्यर्थ कष्ट में डालूँ।' जैसा कह रही थी।

मैंने फिर कहा—बल्कि यह कहे बिना न रह सका—'मैं ठीक कहता हूँ। इस अदला बदली से दोनों चीज़ों का उचित उपयोग हो जाएगा।'

वह इतनी मूर्ख तो थी नहीं कि समझ न सके। इसलिए सहज मुस्कुराहट से बोली—'तो ऐसा कीजिये कि हम दो-दो घण्टे की पारी तय करलें।'

'पहले आप।' मैं भी हँसा।

'लेकिन मुझे जल्दी नींद नहीं आएगी।' उसके मुँह पर लाचारी थी। मेरा भी मन हुआ कि कह दूँ—'तो आपको जागता हुआ देखकर तो मैं भी नहीं सो सकता !' लेकिन जब कहा तो कुछ और ही—'आप शान्ति से बैठिये। इस बीच मैं यहाँ नीचे ही एक नींद लिये लेता हूँ।' और मैं अपने लटकाने वाले बैग से दरी आदि निकालने लगा।

भ चक्के से होकर हम दोनों की बात सुनने वाले उन दोनों युवकों को मैं बाजी मारता हुआ-सा लगा हूँगा । तभी तो तुरन्त हीरो बोल उठा—नहीं जनाब ! आप इस बर्थ के ऊपर ही आराम से सो जाइये । बिस्तर भी भले ही बिछा रहने दीजिये ।

'फौजी' युवक काठियावाड़ी लहज़े के साथ (मुझे तो उसके राजपूत बल्कि कोई छोटा-सा राजकुमार होने का भ्रम था) बोल उठा—'वहाँ सोने की अपेक्षा—' और हीरो को समझाने लगा—'ये भले ही मेरी वर्थ पर सो जायँ। मुझे तो जागने की आदत है इसलिए मैं तो पढ़ता हुआ बैठा रहूँगा ।'

और यह कहने के साथ ही वही मुझसे हीरो की पत्रिका लेकर सेठ वाली सीट पर मेरी जगह बैठ भी गया ।

लेकिन जब हीरो को यह अच्छा न लगा होगा कि उसका भाग्य हेटा निकले या यह होगा कि उसे एक सम्भ्रान्त स्त्री के जागते रहने और अपने सोते रहने में अशिष्टता दिखाई दी होगी । कुछ भी हो, उसने मुँह बनाकर कहा—'मुझे भी यही कष्ट है। ट्रेन में मुझे नींद ही नही आती ।'

मैंने हँसी रोककर कहा– तब तो अच्छा है कि आप भी अखबार लेकर एक कोने में बैठ जाएँ ।' मैंने देखा तो मेरी ओर आँख मारती युवती के गालों में चक्कर खाती हुई स्मित मेरे अभिप्राय को जानने की साची दे रही थी । और मैंने 'अच्छा तो' कह कर ऊपर की बर्थ पर चढ़ने की तैयारी करने से पहले उन दो मित्रों, सेठ जी और अन्त में उस युवती की ओर देख कर जैसे सोने की आज्ञा ली ।

और उन सब में से युवती ने ही—आंखों में जैसे खुमारी भरी हो, ऐसे आज्ञा दी ।

मैं ऊपर चढ़ गया और हीरो के इस सुन्दर बिछौने पर पैरों की ओर सिरहाना करके लम्बा भी हो गया ।

लेटने पर यह जगह मुझे अनेक प्रकार से लाभप्रद जान पड़ी । एक तो उस युवती पर औरों की अपेचा अपनी भलमनसाहत की अधिक छाप पड़ी । दूसरे दरी के बदले मजे का बिस्तर मिला । फिर एकान्त भी था । और इस सबसे भी अधिक लाभ की बात यह थी कि आंखों को हाथों की ओट में करने पर सब कुछ दिखाई दे सकता था ।

उन तीन प्राणियों के जागरण ने मेरी नींद को भी उड़ा दिया था । जैसे अपने को कम समझ रहा हो, ऐसे एक्टर बन्धु ने मेरे सिर की ओर रखे अपने बैग में से ताश निकाले । कदाचित् युवती को मेरे एकाकी जीवन के प्रति दया आई होगी । उसने उठ कर मुझे अपना नॉवल दिया और मुस्कराकर बोली—'लीजिये, हमारी चख-चख में आपको यदि नींद न आवे तो आपके पास पढ़ने को रहेगा ।

'अच्छा' कहकर मैंने अंग्रेज़ी उपन्यास हाथ में ले लिया । खोल कर नाम देखा—''अन्ना

केरेनिना !' उसके बाद प्रभाव डालने के लिए उसे पढ़ने का ढोंग करने लगा। वैसे सच पूछा जाय तो जैसे सेठ जी के सहित इन चारों प्राणियों को ताश खेलने में मज़ा आ रहा था, वैसे ही मुझे इन खेलने वालों को देखने में मज़ा आ रहा था। कदाचित् उनसे पहले ही मैं सोचने लगा—'इस युवती का जोड़ीदार कौन हो तो अच्छा है ?' एक प्रकार से तो मुझे लगा कि दूसरे के श्रम पर ऐश करने वाला सेठ ताश खेलने में अधिक तेज़ होगा। वह फौजी युवक भी भले ही सर कटाने के लिए माल खाता हो, लेकिन जब तक सर कटाने का वक्त नहीं आता, तब तक तो वह ताश खेलने जैसा ही कोई फ़ुरसत का काम करता होगा। इसलिए मुझे तो ताश खेलने में वह भी उस्ताद जान पड़ा। रही हीरो की बात, सो कहने को वह नौकरी भले ही करता हो पर सच पूछो तो उसे नौकरी में ही अमीरी भोगनी थी, इसलिए उसे ताश खेलने में होशियार होना ही चाहिए। यदि ऐसा न होता तो ताश साथ रखने की बात ही कैसे सूझती ? संक्षेप में मुझे तीनों का काम ताश खेलना जान पड़ा। फिर देवीजी का 'पार्टनर' चाहे जो हो। 'किन्तु देवीजी कैसी खिलाड़ी होंगी ?' इस समय इस सवाल का जवाब मिलना मुश्किल था। यों वह सादी होने पर भी खद्दरधारी तो थी नहीं। फिर न वह घरघुसनी थी, और न शिक्षिका ही जान पड़ती थी। हाँ, पढ़ी-लिखी तो लगती ही थीं। विलायत हो आई हो, तो भी आश्चर्य नहीं !

उल्टे-सीधे ताश फेंटते हुए उसके हाथ लगे तो अभ्यस्त-से, पर उसका मस्तिष्क कैसी आदत वाला था, यह अभी देखना था। 'पार्टनर' के रूप में भी उसके हिस्से 'फौजी' युवक ही आया, जिसको शेष दो की अपेक्षा ताश खेलने का अभ्यास अधिक होना सम्भव था।

मुझे तो देवीजी भी होशियार लगीं। उसके बाद तो उनका गर्व भी चूर करने लगीं। वह जोड़ीदार को ममता से, तो हीरो को व्यंग्य से बनाती जाती थी, जबकि सेठजी को अपने पक्ष में करती हुई हुंकारा भरवाती जाती थी। वे दोनों युवक भी अब निस्संकोच भाव से सिगरेट पर सिगरेट फूँकने लगे थे।

और इस प्रकार हमारे इस सैकण्ड क्लास में पत्तों का खेल जमा था।........

मैं भी फिर ऐसा सोया कि सबेरे पाँच बजे ही आँख खुली।

वे लोग भी 'अब यह आखिरी !....बस यह एक ही !' करने लगे थे।

इस बीच मैं दातुन-कुल्ला करके निवृत्त हुआ और उन्होंने भी देवीजी को जिताते हुए रखकर, बाजी समेटी। बाजी समेटने के साथ ही सेठजी ने बाथरूम पर कब्जा किया। 'हीरो' बिस्तर लपेटने लगा। फौजी युवक भी तौलिया वगैरह निकाल कर सिगरेट फूँकता हुआ तैयार होकर बैठ गया। इधर देवी जी ने भी तकिये में से तौलिया निकाल ली। मैं उस उपन्यास को निकाल कर निश्चित भाव से बैठा हुआ वह प्रसंग पढ़ रहा था

जिसमें कि अम्मा अपने पुत्र से मिलने आती है। स्टेशन आने में अभी घण्टे भर की देर थी।

सेठजी के बाथरूम से निकलने के बाद युवती को बाथ-रूम का 'चांस' देने का तनिक-सा आग्रह करके फौजी युवक ही—जैसे वह युवती की आज्ञा को शिरोधार्य कर रहा हो, ऐसी मुद्रा में—बाथ-रूम में गया। उसके बाद युवती और अन्त में 'हीरो'—यों बाथरूम का दरवाजा खटाक-खटाक होता रहा।

इतने में ही स्टेशन आ गया और हम सब तैयार हो गये। मैंने पुस्तक को वापस देने के लिए उसे युवती के सामने रखते हुए कहा—'लीजिये।'

'रहने दीजिये न! कॉन्फ्रेन्स में तो आप भी दो दिन रहेंगे न? ....अरे, आपका पता न चले तो मैं पता लगा लूंगी। लेकिन आप पूरी तो पढ़ें।'

मुझे कहना ही पड़ा—'मैंने इसे एक बार तो पढ़ा है। लेकिन यह जो—अम्मा अपने पुत्र से मिलने आती है यह—'

'आहा!' देवीजी बोल उठी–'कितना हृदय-द्रावक है? मैं तो इसे पूरा पढ़ भी नहीं सकती।' तभी गाड़ी प्लेटफॉर्म पर आ खड़ी हुई।

एक ओर कुलियों की पुकार लगने लगी तो दूसरी ओर हमारे डिब्बे में सामान की उठा-धरी होने लगी। सेठजी और हीरो का सामान बहुत था, जब कि मेरे पास केवल लटकाने वाला बेग ही था और उस फौजी युवक के पास भी एक छोटा-सा बैग था।

'हीरो' ने एक कुली को अपने समान के साथ उस युवती के दो तकिये भी दे दिये। उसी समय अपने नौकर को सामान दिखा चुकने के बाद सेठजी ने उस युवती के सामने प्रस्ताव रखा—'यदि आपको अभी तीसरी गाड़ी और फिर बस में बैठने का खटराग न करना हो तो मेरी मोटर में काफ़ी जगह है। घण्टे भर में पहुँच जायँगे।'

युवती प्रसन्न होती हुई बोली—'सचमुच? लेकिन आपको कुछ असुविधा तो न होगी न? वैसे इन लोगों की 'कम्पनी' है, इसलिए मुझे कुछ परेशानी न होगी।' यों उसने सहमति-सूचक बात कही।

दूसरे ही मिनिट उसने मुस्कराहट-युक्त मुख और स्नेह-पूर्ण आँखों से सेठजी के साथ जाते हुए हम तीनों से एक-एक करके विदा ली।

मैंने भी उसे 'नमस्ते' किया, जब कि फौजी युवक ने विदा देते हुए हँस कर कहा—'कॉन्फ्रेन्स में मिलेंगे।'

लेकिन जब मैंने देखा तो मि० हीरो का सिर्फ मुंह ही नहीं उतर गया था, वरन् उस युवती के जाने के बाद उसके मुंह के ऊपर उसके अन्तर की बेचैनी भी झलकने लगी थी। मेरा मन हुआ कि कह दूं—'तकिया वापस करने के कारण यह हाल है क्या?'

लेकिन तभी रेस्तरां में चाय पीते पीते वह कहने लगा—'मैं समझता था कि सिनेमा की दुनिया ही ऐसी है, पर नहीं ! बाहर की दुनिया में भी औरत को एक डाल से दूसरी पर बैठते देर नहीं लगती ।'

मैं और फौजी युवक समझ न सके । मैंने पूछा—'सो कैसे ?'

'यह जो गई है, इसी की बात मैं कहता हूँ ।'

लेकिन उसकी बात फौजी युवक को भी व्यर्थ जान पडी । वह हँसकर बोला—'वह सेठजी की मोटर में गई तो इससे क्या हो गया ? उसे सुविधा मिली इससे तो उल्टे हमें खुश होना चाहिए । यह तो आपका 'नेरो माइण्ड' कहा जायगा—क्यों है न जनाब ?'

उसके साथ मुझे भी सहमत होता हुआ देखकर हीरो तुनक पड़ा—'मुझसे प्रेम का लिखित वादा करने के बाद पाँच मिनिट में ही ऐसी हो गई, जैसे मुझे जानती ही न हो—' उसी समय फौजी युवक की शक्ति ऐसी हो गई जैसे किसी ने थप्पड़ मार दिया हो ! लेकिन दूसरे ही क्षण वह सम्भल गया और हँसी दबाकर बोला—'आप कहते हैं पर हम कैसे मानें ?'

'ठीक है । ऐसी अभिमानिनी स्त्री तनिक से परिचय में प्रेम का लिखित वादा कभी कर ही नहीं सकती !' मैंने कहा ।

'तो मेरी 'शर्त' रही ।' हीरो बोल उठा ।

'रही !' मजे में आकर फौजी युवक भी बोल उठा ।

'सौ-सौ की ।' हीरो बोला ।

'नहीं । पचास-पचास की ।' मैंने कहा ।

'मंजूर !'

'तो निकालो !' कहते हुए फौजी युवक ने पतलून की जेब से बटुआ निकाला ।

दूसरे ही क्षण तटस्थ व्यक्ति के रूप में मेरे हाथ में दोनों ओर की पचास-पचास की रकम आ गई ।

'एक मिनिट !' मैंने कहा—'इस पचास का क्या उपयोग करना है ?'

'इससे हम सब तफरीह करेंगे !' फौजी युवक ने कहा । हीरो भी उससे सहमत हो गया । इसके बाद हीरो ने झट से अपनी कमीज की जेब से आसमानी रंग के कागज का दुहरा मुड़ा एक टुकड़ा निकाला, खोला और मेरे सामने रखते हुए विजेता जैसी मुद्रा में बोल उठा—'पढ़ो !'

सचमुच उस टुकड़े में स्त्री के ही अक्षरों में लिखा था—'इतने संक्षिप्त परिचय में ही मैं आपको कभी नहीं भूल सकती । फिर अपने हृदय का यह लिखित वादा किये बिना मैं रह नहीं सकती । क्षमा कर देंगे न ?'

हाँ, नीचे किसी के हस्ताक्षर न थे, पर यह तो ऐसे कागज और ऐसी परिस्थिति में कोई करेगा भी नही ।

स्वभावत: निस्तेज होकर मैंने उस फौजी युवक को वह टुकड़ा देते हुए कहा—'देखो भाई !' लेकिन उसका मुख तो नितान्त निर्विकार था ! चिट्ठी देखने के बदले वह तो मस्ती से हँस रहा था ! बोला—'मैं तो पहले ही पढ चुका हूँ ।'

मुझे लगा कि उसके पास कुछ रहस्य है । इसलिए मैंने जान-बूझकर कहा—'तो कहो, हार मंजूर !'

'हार तो मंजूर करनी है हमारे 'हीरो' महाशय को । कहिये, यह आपको बाथ-रूम से मिला है न ?

'हाँ ।' हीरो ने कहा ।

'तो आपने यह कैसे जाना कि यह किसी दूसरे ने न लिखा होगा ?'

हीरो असमंजस में पडा । बोला—'लेकिन मुझ से पहले बाथरूम में वही गई थी । फिर स्वयं बाहर निकलते हुए उसने हँस कर मुझ से 'जाओ मिस्टर शरीफ' कहा था और बाथ-रूम में भेजा था । उस समय वह चुपचाप साकेतिक हँसी भी हँस रही थी । रही हस्ताक्षर की बात, सो आप ही बताइये कि क्या कोई ऐसी परिस्थिति में हस्ताक्षर कर सकता है ?

धीरज चुकने पर फौजी युवक स्वयं ही बोल उठा—'तो सुनो मिस्टर शरीफ ! नहीं मानते तो लो, मेरी डायरी के पन्ने से मिला लो इस टुकड़े को ।'

बस हो गया ! शरीफ के काटो तो खून नही ! फीकी हँसी हँसते हुए उसने फौजी युवक की ओर देखते हुए कहा–'अच्छा, मेरी कही हुई बात तो अब आपको भी स्वीकार करनी पड़ेगी ।' और मैं दुनियादारी सीखते इन दो युवको पर तरस खाता हुआ एक अनुभवी की मुद्रा में उन्हे देखता हुआ मुस्कराने लगा ।

●●●

मूंछ का बाल

• •

ईश्वर पेटलीकर

उकेड़ ने कहा : यह रिश्तेदारी की बात है, सो बीस और दो ही सही। नहीं तो पूरे पाँच बिना बात ही कौन करता है ?

भईजी बोला : ऊपर के दो निकाल दो।

उकेड़ का छोटा भाई बोला—ना ना, यह नहीं होगा। यह तो तुम्हें सगे-सम्बन्धी समझ कर ही कह रहे हैं।

उकेड़ : और ब्याह-शादी के दिनों में तो इसके बीस की जगह तीस भी कम हैं।

आखिर हाँ-ना करते तीसरा बोला : अच्छा चलो, दोनों की बात रही, बीस और एक दे देना।

जीभई ने शर्त रखी : आधी रकम अभी और बाकी की सावे पर देनी होगी ! भईजी ने सहारा दिया : यह तो होगा ही ! तब उकेड़ ने अपनी शर्त कही : बच्ची दस-बारह वर्ष की हो जाय तो उसे हमको वापस देना होगा।

तो उस समय तुम्हें दस रुपये देने पड़ेंगे ।—भईजी ने कहा ।

ऐसा हो तो रहने दो ।—उकेड़ का छोटा भाई बोल पड़ा ?

भईजी ने समझाया : अब सब ही देते हैं । यूँ भरण-पोषण के खर्च का हिस्सा भी तो देना ही पड़ता है । गई सर्दी में उस तखू ने बिरादरी के सामने रुपये दिये थे । भूल गये ?

दलाल एक बार फिर बोला : ठीक है; ऐसा अन्याय तो नहीं ही चल सकता । चलो, दस के बदले सात तो दोगे ?

उकेड़ स्वीकारते हुए बोला : ठीक है, अब लेने कब आओगे ?

जीभई ने सोचकर कहा : आज से आठवें दिन, रविवार की दोपहर में, निश्चित् ।

कुछ शेष रह गया हो, ऐसे उकेड़ का छोटा भाई बोला : अच्छा देखो, छूट-छेड़ा देना हो तो तुम्हारे सिर !

जीभई : नाते की औरत का छूट-छेड़ा कैसा ? मेरी तो दो औरतें नाते गईं । मैंने तो उनसे कोई छूट-छेड़ा नहीं माँगा । ब्याहता हो तो कोई बात भी है । भईजी बात को समाप्त करते हुए बोला : चलो, वह हमारे सिर रहा । फिर ये हैं, और बिरादरी है ।

उकेड़ की बहन एला के पति ने जब दूसरी औरत को घर में डाल लिया, तो अपनी तीन बरस की बच्ची मंगी को लेकर भाई के घर आ गई थी । उसके साथ जीभई का नाता तय हुआ ! चूड़ी पहनाने का दिन अगले रविवार को निश्चित कर, उसी शाम दोनों मित्र—जीभई और भईजी—घर लौट आये । जीभई और भईजी के पास अपने छोटे छोटे तालाब थे । सरकारी नौकरियाँ थीं । जीभई विवाहिता सहित तीन स्त्रियाँ घर में ला चुका था, किन्तु एक भी नहीं टिक सकी । विवाहिता को सर्प ने डस लिया और अन्य दो साल-छः महीने रहकर नाता करके अन्यत्र चली गईं । आसपास की औरतें जीभई को ही दोष देती थीं कि मुआ यही ऐसा है कि औरत को कभी डाँट-डपट करना या मारपीट करना तक नहीं जानता । औरत कहीं ऐसे रखी जाती है ? जीभई स्वभावतः ही नम्र था । तिस पर एक बार एक सिपाही ने एक चमारी को बेगार के लिए मारा ! होनहार थी, सिपाही तीसरे ही दिन बुखार में ऐसा पड़ा कि फिर कभी उठा ही नहीं । तुम मानो या न मानो, पर लोग बाग यही कहते हैं कि जीभई उसी दिन से औरत पर हाथ नहीं उठाता । उसकी तीसरी औरत नाते गई, तब इसकी उम्र कोई पैंतीस-सैंतीस की रही होगी; सो उसने औरत के पीछे अब पैसा बर्बाद करने का विचार ही छोड़ दिया । बड़े भाई के घर में ढेर-से बच्चे थे ही । उनके साथ मस्त रहता और भाई के घर पड़ा रहता । हर महीने नौकरी से चार रुपये मिल जाते और पाँच बीघे सरकारी जमीन थी, खेती करने को । भाई के लिए वह दुधारू गाय ही था ।

भईजी उसे कई बार कहता : अरे यूँ भाई के साथ आखिर कब तक रहेगा ? हारी-बीमारी में कोई तो चाहिए न ? किन्तु वह हर बार यही कह कर टाल देता कि भाग्य में दुख ही लिखा होगा तो क्या औरत और क्या सन्तान ?

इसी प्रकार उसने पांच वर्ष निकाल दिये। किन्तु एक जरा सी बात को लेकर उसके मन में औरत लाने की खलबली मच गई!

उसकी पड़ोसिन अम्बा के एक ग्यारह महीने का दुधमुँहा गोद में था ही, कि एक और बच्चे के जन्म की तैयारी हो गई। यह देख हँसी-हँसी में जीभई बोला—अरे तुमने तो ढोरों को भी मात कर दिया। अम्बा भी कम नहीं थी। मुँह तोड़ जवाब दे बैठी—मर, मरे मनहूस! तू तो हीजड़ा है। नहीं तो ऐसा हट्टा-कट्टा जवान होते हुए भी बिना औरत के रहता? उस धरम सेठ को देख! साठ बरस का होने पर भी औरत बिना नहीं रह सका और छः हजार रुपये खर्च करके बहू ले आया। उस परधा पटेल को ही ले। बेटों के भी बेटे-बेटी हैं, फिर भी दूसरी औरत लाया है। इधर तू है कि बुढ़ापे में पानी पिलाने वाला भी नहीं है। सभी तुझ जैसे नामरद थोड़े ही होते हैं।

और इतना कहकर वह ऐसी कुटिल हँसी हँसी, कि वह हँसी जीभई के मर्म को बींधती चली गई। उसने तत्क्षण कसम खाई कि अगर यह आषाढ़ उतरते-उतरते मैं औरत न ले आऊँ, तो मुझे देखना कहना!

कहने को तो वह यह सब कह गया, किन्तु शाम चौपाल पर उसे पता चला कि आषाढ़ में तो मात्र दस दिन ही शेष हैं। जाकर अपने हर काम के साथी भईजी से कहा कि मैं तो औरत लाना चाहता हूँ।

ठहाका मारते हुए भईजी बोला : अरे अब यह कैसे सूझा?

क्यों? क्या मैं बूढ़ा होगया हूँ?

बूढ़ा तो नहीं हुआ, लेकिन.......

तो?

कहीं भाई से तो झगड़ा नहीं हो गया?

नहीं, वह सब मैं फिर बता दूँगा। मुझे दस दिन के अन्दर औरत ले आना है।

और तीसरे ही दिन उन्होंने उकेड़ की बहन के साथ रिश्ता तय कर लिया। अब दूसरा सवाल था पैसे का। साढ़े दस की जगह दस रुपये नकद देने के और लाल ओढ़नी, गोटेदार पोलका और छरेदार लहँगा औरत के लिए, और कुछ नहीं तो कम से कम पांच रुपये तो बनिया माँगेगा ही। किन्तु जीभई को विश्वास था कि साठ वर्ष की आयु में भी स्त्री की कद्र समझने वाला धरम सेठ पगार पर ड्योढ़े पैसे लेने करके तो देने की ना नहीं करेगा!

शाम घर आकर वह सेठ के पास गया। बोला : सेठ! पन्द्रह रुपये दोगे?

क्या करना है?

औरत लानी है। हकलाते हुए जीभई ने कहा!

जैसे किसी पागल की बात सुनकर कोई चौंक पड़े, वैसे ही सेठ को भी जीभई की बात पर आश्चर्य हुआ। सलाह देते हुए वह बोले : बावले! रह रह कर यह क्या सूझा है? इसमें कोई सार नहीं है! रहने ही दे यह सब जंजाल।

अपनी ही तरह किसी और औरत का भविष्य न बिगड़ जाय, इस दृष्टि से सेठानी रसोई में बैठे बैठे ही बोल उठी : अरे क्यों फजूल किसी बेचारी की ज़िन्दगी खराब करना चाहता है ?
सेठ ने भी सहारा दिया : ठीक ही तो है। यह तो हम जैसों से निभ सकता है कि पीछे कोई न भी हो तो कम से कम खाने की चिन्ता तो न रहे ! सेठानी के मन में आग लग गई। वह कहना ही चाहती थी कि अपने इस धन में आग लगा दो। पैसे से पेट ही तो भरा जा सकता है, मन की भूख थोड़े ही उससे मिटती है, कि जीभई, जिसे इस परामर्श की कतई आवश्यकता नहीं थी, फिर से बोला : सेठ ! मुझे क्या उत्तर देते हो ?
काहे का उत्तर ?
रुपयों का !
अभी तो तनख्वाह मिली थी। उसका क्या हुआ ?
एक पगार तो मालगुज़ारी में दे दी। फिर पिछली एकादशी पर आठ रुपये मिले थे, दो महीनों के, सो धोती लाया और तुम जैसों से हाथ-उधार लेने पड़ जाते हैं, सो वे भी इन्हीं में से चुकाने पड़ते हैं। सो यूँ ही पगार पूरी हो गई। जीभई ने अपने वेतन का ब्यौरा बता दिया।
—तो औरत के आने पर कैसे कुछ बचेगा कि तू कर्ज़ा चुकता करेगा ?
—वह भी तो कुछ करेगी ही। बैठे बैठे थोड़े ही खायेगी। अभी चौमासे में खेतों पर काम होगा। फिर तुम्हारे जैसों के यहाँ पानी-वानी भर दिया करेगी, तो एकाध रुपया मिल जायगा। जीभई ने उसकी आमदनी के साधन बता दिये।
सेठ ने आश्वस्त होते हुए कहा : ठीक ! तो पगार मिलते ही रुपये लौटा देने पड़ेंगे।
—यह भी क्या कहने की बात है ?
—ब्याज हम औरों की तरह ज़्यादा नहीं लेते। बस इकन्नी रुपया दे देना। सेठ ने अपनी उदारता प्रकटी।
—अच्छा ! वक्त पर आऊंगा।
मन ही मन खुश होता जीभई घर लौटा। अम्बा बाहर ही बैठी थी। मन हुआ कि कह दे- इसी रविवार को यह मूंछों वाला पट्ठा घर में औरत ले आयेगा। देख लेना। —फिर सोचा कि नहीं, पहले ले आऊँ, तभी कहूँगा।
वायदे के अनुसार तीन ही दिन शेष थे कि बरसात आ धमकी। बिजली की कड़क और मूसलाधार वर्षा। पानी नदी के संकरे पाट के ऊपर होकर बहने लगा। पानी के तेज़ प्रवाह में नीचे कीचड़ और ऊपर झाग के जैसे टीले दौड़ रहे थे। पानी की इस उफ़नती छाती पर झूलने की लालसा में कई नौजवान '८३ की बाढ़ से पूर्व नदी में कूद जाया करते थे। किन्तु '८३ की बाढ़ का विकराल स्वरूप लोगों ने पेड़ों पर चढ़ चढ़कर देख लिया था, तब से कोई भी नदी में कूदने का साहस नहीं करता था। तिस पर पंचिक

कोस आगे एक गाँव वसादरा में किश्ती उलट जाने से हसन जमादार डूबकर मर गया, तब से लोगों के मन में यह वहम घर कर गया था कि नदी में अब सत् नहीं रहा, नहीं तो माँ होकर क्या अपने जीते-जागते बेटे को वह खा सकती है ? तब से कोई भी बाढ़ में जाने को तैयार होता तो लोग-बाग उसे रोक लेते ।

शनिवार की शाम बरसात तो रुक गई, किन्तु रविवार के दिन सबेरे तक पानी का चढ़ाव बढ़ता ही जा रहा था ।

जीभई बोला : कुछ भी हो । आज गये बिना नहीं चलेगा । यों शगुन में ही झूठे पड़ जायँ तो आगे अपना विश्वास कौन करेगा ?

दूसरा बोला : इस चढ़ते पानी में मरने जाना है क्या ?

तीसरा बोला : अरे, एकाध दिन में क्या बिगड़ जाएगा ?

पर, तीन दिन पीछे तो सावन शुरू हो जाएगा । यही सोच जीभई के मन को चैन कहाँ ? वह बोला : अरे '८३ की बाढ़ से पहले न जाने कितनी बार इस नदी में उतरे होंगे, अब क्या कोई नयी बात हो गई ?

तलावियावाड़ की पूरी बस्ती रोकती रही, किन्तु जीभई नदी पर पहुँच गया । पहनी हुई धोती और आने वाली औरत के लिए लिये गये कपडे उसने एक घड़े मे रख लिये । अंगोछा लपेट कर उसे लंगोट की तरह कस लिया और घड़े का मुँह पकड़ कर नदी में कूद पड़ा । तट पर खड़े लोगों को रह रह कर यही आश्चर्य हो रहा था कि देखो, जो जीभई कभी औरत की बात तक नहीं करता था, उसी पर ऐसा क्या भूत सवार हुआ कि अब दो दिन भी नहीं रुक सकता ? किन्तु मूल कारण तो उन्हें तब मालूम हो, जब वे अम्बा से कुछ पूछें ! तब तक तो पानी की धारा में जैसे खिंच कर जीभई दूसरे तट पर जा पहुँचा ।

वहीं से उसने भईजी को हाँक लगाई : अब तो नदी में उतरने की हिम्मत करेगा ?

—अब और उपाय ही क्या है ? —कह कर भईजी ने भी कच्छ मारा और बगल में तुम्बा लेकर वह भी कूद पड़ा ।

पानी-कीचड़ में चलकर दोपहर में वे नायर पहुँचे तो उन्हें देख सभी को आश्चर्य हुआ । उकेड़ बोला : मैंने तो सोचा था कि बरसात की वजह से आज क्या आओगे ?

जीभई छाती निकाल कर बोला : बरसात का बाप भी होता, तो भी वायदा नहीं तोड़ते ।

उसी रात एक मटकी में दीपक रख कर जीभई और एला के मस्तक आपस में छुआकर उस दीपक के दर्शन करवाये गये । इस प्रकार नाते की रसम पूरी हुई । फिर तेल से तर बाटियाँ खाकर और मूँछों की आबरू बच गई—इस सन्तोष के साथ जीभई गहरी नींद सो गया ।

तीसरे दिन, अमावस के अगले दिन एला को साथ ले जीभई घर पहुँचा। अम्बा से बोला : क्यों आषाढ़ उतर कर सावन तो परसों लगेगा न ?

हाथ नचाते हुए तपाक से अम्बा बोली : ओ हो ! बड़े मीर मार कर आया है। अभी घर तो चला कर देख।

एक हफ्ता निकल गया। साथ आई मंगी रोती ही रहती। ज्वार की रोटी देने पर वह उसे टुकड़े करके जहाँ-तहाँ बिखेर देती, किंतु मुँह में न डालती। मुखिया के घर से मांग कर लाई गई कढ़ी अवश्य उसने एकाध बार पी होगी, जीवा अहीर के घर से लाया गया बकरी का दूध भी दो एक बार पी लिया, किन्तु रोटी तो जैसे वह छूना भी पसन्द नहीं करती। रह रह कर वह एला की गोदी में घुसने की चेष्टा करती। एला उसे परे हटाने की कोशिश करती और जीभई पूछता : इस छोकरी को हो क्या रहा है ? एला कहती : नयी जगह है, सो बच्चे झगड़ा करते ही हैं। मंगी उसकी ओढ़नी हटाकर दूध पीना चाहती, तो ऐला उसे मारने लगती। वह सोचती कि तीन बरस की होकर भी यह दूध पीती रहेगी, तो जिस घर को मैं बसाने आई हूँ, वह कब अपने बच्चे का मुँह देखेगा ? लड़की ने जब बहुत ही फसाद मचाया, तो जीभई कंधे पर लाठी रख कर बाहर जाते हुए बड़बड़ाने लगा : इस छोकरी ने तो खून पी लिया।

बाहर ही बैठी अम्बा ने उसे इशारे से बुलाकर कहा : औरत को वश में रखना कब सीखेगा तू ?

क्यों, क्या बात है ?

दीखता नहीं ? आयी तभी से यह छोकरी रोती ही रहती है !

तो मैं क्या करूँ ?

झूठ झूठ ही जैसे चिढ़कर अम्बा ने कहा : सिर तेरा ! इतना भी नहीं समझता ? छोकरी को वश में रख, जिससे तेरी नवेली कहीं चली न जाय ! नहीं तो, महीने भर बाद उसका भाई उसे लेने आयेगा, तब यह छोकरी भी साथ ही वापस जाएगी। ऐसे में उन्हें बहाना मिल जाएगा कि तेरी औरत को भी रोक लें !

जीभई की समझ में बात आ गई। पूछा : तो मैं क्या करूँ ?

अम्बा ने समझाया : इसमें क्या बड़ी बात है ! कभी एक पैसे के ममरे, कभी गोली और वह होता है न रबर का, जिसे फूँक मार कर बच्चे फुलाते हैं, लाकर दिया कर।

उसी दिन से जीभई मंगी के लिए आये दिन कुछ न कुछ लाने लगा। कभी बनिया उधार देने को मना कर देता तो वह भीखला वाघरी की बाड़ी से सरकारी नौकरी का रोब दिखा कर मुफ्त ही ककड़ी, फूट, भुट्टे ले आता। पन्द्रह ही दिन में मंगी उससे इतनी

हिल गई कि जीभई के घर पहुँचते ही मंगी उससे लिपट जाती और पूछती; बापू क्या लाये ? और जीभई उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए जेब से निकाल कर कुछ न कुछ खाने की चीज़ दे देता।

कभी मंगी ज़िद कर बैठती कि बापू मुझे गुब्बारा ला दो।

चुटकी लेते हुए कभी कभी अम्बा कहती : मरे ! तू तो अभी से बाप भी बन गया ! जीभई तब मूँछों में हँस पड़ता !

सावन उतरते उकेड़ बहन को लेने आया। एला बोली : देख मंगी ! मामा आये हैं। लेकिन मंगी न तो जीभई की गोद से नीचे उतरी और न कुछ बोली ! अम्बा घूँघट में से बोली : देखो मरी को ! इनकी कैसी लाड़ली बन गयी है !

पहली बार आई थी, सो एक बार पीहर जाना आवश्यक था। मंगी साथ नहीं गयी। एला उकेड़ के साथ चली तो गयी, किन्तु मंगी के बिना उसका मन नही लगा। वह पाँचवें ही दिन लौट आई।

पड़ोसी उकेड़ से कहने लगे : इसे इतनी उमर में तीसरे घर में बैठना पड़ा। पर इस बार आदमी अच्छा मिला। और बात थी भी ऐसी ही ! यह तीसरा घर एला को मनचीता मिला। पहले भी जीभई औरत पर हाथ नहीं उठाता था, और अब तो मंगी को भी वह अपनी सन्तान से ज्यादा प्यार करने लगा था। हर महीने सरकार से चार रुपये मिलते। दो रुपये एला पानी भर कर ले आती। धरमचन्द सेठ का इकन्नी रुपया ब्याज चढ़ता ही था, तो भी मुफ्त में उनके घर भी पानी के दो घड़े डाल आती ! फिर मंगी को गोदी में लिये लिये, दोपहर में खेतों पर मज़दूरी करने जाती। जीभई मुखिया के घर का काम कर देता और शाम को खाने के समय खिचड़ी और कढ़ी अपने साफ़े के छोर से ढक कर घर ले आता। इस तरह खाने पीने का भी एला को सुख ही था। अधेड़ होने के कारण जीभई छेड़-खान ज़रा कम ही करता, यह बात अवश्य जवान एला को कभी कभी सालती। किन्तु एला यह कह कर मन को समझा लेती कि उधमधाड़ा तो वे दोनों भी बहुत करते थे, पर एक ने भी ज़िन्दगी भर का साथ नहीं दिया।

इसी तरह सात-आठ महीने निकल गये। एला अब इस घर को अपना घर समझने लगी थी। जीभई को भी विश्वास हो गया कि वह अब उसे छोड़ कर अन्यत्र नहीं जाएगी। तभी उसे अम्बा की याद आई। मौका पाकर उसने अम्बा से कहा : क्यों अब तो मैं मूँछ वाला सिद्ध हुआ ?

—अरे जा करमहीन ! पराई सन्तान का बाप बनने से ही तू मूँछ वाला बन गया ? अभी अपनी सन्तान पैदा करके तो दिखा ?—अम्बा ने टोक दिया।

भगवान की दया हो तो घर में बच्चा आते क्या देर लगती है ? छः महीने बीतते न बीतते एला की गोद में बेटा खेलने लगा ।

चौपाल से लौटते हुए एक दिन फिर उसने अम्बा को टोका : क्यों, अब तो सब ठीक है न ?

हाथ में लाठी देख कर अम्बा बोली : यह लाठी रख आ, फिर बताऊँगी । लाठी को घर में रख आकर जीभई बोला : ले, अब कह !

अम्बा धीरे से मज़ाक के स्वर में बोली यह तेरा ही बेटा है, इसका क्या प्रमाण ? इस बात पर जीभई के हाथ, जिसे कभी गुस्सा आता ही न था, लाठी उठाने को खुजलाने लगे ! अम्बा हँसते हुए बोली : लाठी ढूँढ रहा है ? वह भी मुझे मारने को ! धत् तेरे की ! मेरी ही वजह से तो आज तू बाल-बच्चेदार हुआ, और मुझे ही यह बदला चुका रहा है ? जीभई बिना कुछ कहे, नीची गर्दन किये अपने घर में चला गया ।

●●●

श्रद्धा ही सञ्जीवनी है

प्रागजी डोसा

देवशंकर एक कुशल शिल्पी था। उसकी बनाई मूर्तियां जैसे सजीव-सी भासित होती थीं। अङ्ग-प्रत्यङ्ग के सौष्ठव, मुख की भाव-भंगिमा! हाथों के प्रत्येक मोड़ तथा शरीर के प्रत्येक स्नायु में जैसे जीवनी-शक्ति भर दी गई हो! लेकिन, था देवशंकर मनमौजी। वह मात्र देवी देवताओं की ही प्रतिमाएँ गढ़ता, जिन्हें बेचते समय से मार्मिक व्यथा होती थी। किन्तु पेट के गढ़े के लिए जो मुट्ठी भर अन्न अनिवार्य था, उसकी प्राप्ति के लिए उसे यह विनिमय समय समय पर करना ही पड़ता था। अपनी बनाई मूर्ति के बदले में उसे पन्द्रह-बीस दिन के गुज़र लायक राशि मिल जाया करती थी!

नितान्त अकेली जान, घर में दूसरा कोई नहीं, ऊपर से मस्त तबियत वाला, सो जब मन में उमंग उठती, तभी वह मूर्ति घड़ने बैठता! कभी-कभी तो महीनों तक एक भी प्रतिमा न बन पाती। फिर भी, भगवान् पर उसे अखण्ड श्रद्धा थी कि

जिसने जन्म दिया है, वह कभी भूखे पेट सुलायेगा नहीं। परन्तु, भगवान भी जैसे उसके धैर्य की परीक्षा लेते हों, प्रायः ही उसकी मूर्तियाँ पड़ी रहतीं। अपनी मूर्तियों को एक मकान के चबूतरे पर रख कर वह घण्टों बैठा रहता कि कोई तो भगवान का भक्त आयेगा ; परन्तु आने-जाने वाले मूर्तियों पर दृष्टिपात किये बिना ही ऐसे आगे बढ़ जाते जैसे सागर तरंगें किसी की भी परवाह किये बिना बहती जाती हैं।

भगवान पर श्रद्धा रखने वाला देवशंकर अब भूखे पेट ही सोने लगा। सुबह मुर्गा बांग देता, उस समय तक तो वह अपनी हाट सजा कर बैठ जाता, परन्तु कोई मूर्त्तिपूजक उसे नहीं मिलता। मकान के चबूतरे से उठा कर एक मन्दिर के चौक में वह अपनी मूर्तियों को ले गया। किन्तु वहाँ भी लोग-बाग उन मूर्तियों के मात्र दर्शन करके चले जाते, किसी ने भी कोई प्रतिमा क्रय करने की इच्छा कभी व्यक्त न की। दर्शनार्थी आते, भिखारियों के आगे वे पैसे डाल जाते। देवशंकर यह सब देखता; परन्तु वह तो एक शिल्पी था! वह कैसे भिक्षुओं की पंगत में बैठता ?

एक दिन सांझ होने पर अपनी मूर्तियों को समेट कर वह अपने घर की तरफ चल दिया—शून्यमनस्क, कंधे पर झोली डाले, अकेला, एकाकी वह चला जा रहा था; रास्ते में उसे एक भव्य भवन की ऊँची अट्टालिका दीखी। उसके झरोखे में कोई श्रीसम्पन्न युवक खड़ा-खड़ा धूम्रपान कर रहा था। देवशंकर ने मन में सोचा·······धुएँ के गुब्बार के साथ यह युवक नित्य प्रति कितना धन उड़ा देता होगा ? मात्र अपने मन की मौज के लिए ही ! क्या यह मेरी सहायता नहीं कर सकता ?

देवशंकर उस बंगले के द्वार के निकट जाकर खड़ा हुआ, पर उसे दरबान ने अन्दर जाने से रोक दिया। उसने काफ़ी विनती की, परन्तु दरबान टस से मस न हुआ। देवशंकर की विनती के प्रत्युत्तर स्वरूप बड़े घर का दरबान बोला : 'तुझ जैसे रखड़ैल यहाँ सैंकड़ों आते हैं और बंगले पर हाथ साफ़ कर चल देते हैं।

'परन्तु भाई, मैं तो हाथ मारने नहीं, अपने हाथ की कारीगरी दिखाने आया हूँ।'

'अब तू जाता है या नहीं ? या फिर मैं अपना हाथ दिखाऊँ ?' दरबान ने अपनी शक्ति का परिचय दिया। उनकी बातचीत ने उग्र रूप धारण कर लिया और उच्च स्वर में बोलते हुए दरबान के शब्द उस युवक के कानों में पहुँचे तो वह नीचे झांकते हुए बोला—'मंगलसिंह ! कौन है ?'

'खिलौने बेचने वाला है साहब।'

'उसे ऊपर आने दे।'

ऊपर से हुक्म मिलने पर अपनी विजय-सूचक दृष्टि दरबान पर डाल कर देवशंकर हर्षित होता हुआ. मखमली गलीचे पर पाँव रखता हुआ सीढियाँ चढने लगा। उसे प्रतीत हुआ कि

दुनिया से अभी मानवता निर्मूल नहीं हुई है । वह ऊपर पहुँचा और शिष्टाचारवश हाथ जोड़ कर नमस्ते करना ही चाहता था कि युवक बोल उठा :

'दिखला, क्या लाया है ?'

ज़मीन पर बैठ कर देवशंकर ने अपना खज़ाना खोला । सभी देव-देवियों की प्रतिमाएँ— वंशी-बजैया कृष्ण कन्हैया, ब्रज-विहारिणी राधिका, कैलाश-पति भगवान शंकर, वीणापाणि सरस्वती, राजीवलोचन श्रीराम, पवनसुत हनुमान आदि········

'इनके अलावा और कुछ है ?'

'आप किस देवता के उपासक हैं ?'

'मैं किसी देवता का उपासक नहीं ।'

'तो आप देवी-भक्त हैं ?'

'देव देवियो की बात छोड़ ! स्नानरता कोई सुन्दरी, सौन्दर्य की रानी वीनस या ऐसी ही कोई और मूर्त्ति है तेरे पास ?' युवक ने अपनी रुचि दर्शायी !

'जी नहीं, मैं ऐसी प्रतिमाएँ नहीं बनाता। कृपया इनमें से कोई आप पसन्द कर लें तो·····'
'मुझे कुछ पसन्द नहीं आया ।'

'मेरे मुँह में अन्न का दाना नहीं गया है । यदि इनमें से एकाध ले लें तो आपकी कृपा होगी और भगवान आप का···· ·· '

उसे बीच में ही टोकते हुए युवक बोला :

'यह ले, न तो मुझे कोई मूर्त्ति चाहिए और न भगवान् ! तू भूखा है न सो यह ले जा, कहते हुए युवक ने अपनी जेब से दो रुपये निकाले और देवशंकर को देने का आग्रह किया !
'रहने दीजिये श्रीमान्,' कुछ उग्र स्वर में देवशंकर बोला, 'मैं भिक्षा नहीं चाहता ।'

'मंगलसिंह इसे बाहर निकाल दो ।' और इतना कह, वह अपने कमरे में चला गया । उसकी चाल से भी उस समय रोष प्रकट हो रहा था ।

देवशंकर अपनी जमा-पूंजी समेट कर चल दिया । वह फुटपाथ पर चला जा रहा था किन्तु उसका मन आज के युवक-वर्ग की कलाप्रियता के विचारों में उलझा था । स्पष्ट रूप से ही उसकी समझ में आ गया कि ईश्वर पर से लोगों की श्रद्धा समाप्त होती जा रही है । श्रद्धा के अभाव के कारण ही उसे जन-जीवन कलुषित प्रतीत हुआ !

वह थक गया था । अन्न के अभाव में उसकी शक्ति क्षीण हो गई थी । गली के मोड़ पर उसे एक बड़ा-सा वट-वृक्ष दिखाई दिया । वह उसकी शीतल छाया में बैठ गया, माथे का पसीना पोंछा और अपने भविष्य की चिन्ता में डूब गया । तभी एक राहगीर ने वृक्ष के नीचे एक पैसा डाला । एक स्त्री ने आकर वृक्ष को प्रणाम किया और चवन्नी चढ़ाई ।

देवशंकर ने देखा कि वृक्ष के नीचे तेल-सिन्दूर लगा हुआ एक पत्थर रखा था। उसे आक के फूलों की माला पहना रखी थी और पास ही तेल का एक शकोरा पड़ा था। देवशंकर समझ गया कि इसे हनुमानजी की प्रतिमा मान कर ही भावुक लोग वहाँ भेंट चढ़ा रहे थे। कुछ दूर धूल में बैठा हुआ एक हृष्ट-पुष्ट साधु चिलम पी रहा था। देवशंकर को अपनी तरफ़ देखते हुए पाकर, उसने चिलम का दम लगाने के लिए देवशंकर को बुलाया, परन्तु देवशंकर ने इन्कार कर दिया। उसकी विचार-शृंखला आगे बढ़ी। देवी-देवताओं के प्रति अब भी लोगों में श्रद्धा विद्यमान है, उसे निश्चय हो गया। इस भावना में, इस भक्ति में दैवीशक्ति अवश्य है। उस शक्ति का उपयोग किया जाय तो ? मन ही मन कुछ निश्चय कर वह उठ खड़ा हुआ।

देवशंकर ने एक पुराना खण्डहर-सा मकान ढूंढ निकाला। उसमें कोई नहीं रहता था, सिवाय एक कुतिया के, जो अपने बच्चों के साथ वहाँ घूम रही थी। उस मकान की-सड़क की ओर वाली-दीवाल में बाहर की तरफ़ एक आला था। देवशंकर ने उस आले को साफ़ किया; जाले आदि सब हटाकर उसमें मुरलीमनोहर की त्रिभंगी मूर्त्ति स्थापित कर दी और स्वयं मकान के चबूतरे पर बैठ गया। काम-धन्धे से निवृत्त होकर लोग अपने घरों को जा रहे थे। थकावट उनके चेहरों पर स्पष्ट झलक रही थी; उनकी चाल भी धीमी थी, पर घर पहुँचने की, स्वजनों से मिलने की उत्कण्ठा तो थी ही। उस दिन तो किसी का ध्यान उस मूर्ति की तरफ़ नहीं गया, क्योंकि आज से पूर्व वह मूर्त्ति वहाँ थी ही नहीं। अन्धकार व्याप्त हो गया और वह मार्ग जन-शून्य हो गया, तब देवशंकर ने मूर्त्ति को अपनी झोली में रखा और अपने घर की तरफ चल दिया। एक-एक कदम पर उसका विश्वास दृढ़ होता गया कि श्रद्धा पर ही मनुष्य जीवन टिका हुआ है।

दूसरे दिन उषा की सुवर्ण-कान्ति अवनि पर उतरे, उससे पूर्व ही देवशंकर जाग गया। स्नानादि से निवृत्त होकर मुरलीमनोहर की मूर्ति उठाई और उसी खण्डहर के पास पहुँचा। आज वह अपने साथ एक मिट्टी का दीपक भी लाया था। उसमें तेल डाल कर, एक बत्ती रख कर उसने दीपक जलाया। प्रकाश अभी फैला नहीं था, सो दीपक के प्रकाश में मूर्ति की मनोहर आकृति सविशेष देदीप्य हो उठी। इसी कारण काम पर जानेवाले नर-नारियों का ध्यान उधर आकर्षित हुआ। आह ! कैसी भव्यता, कैसी सौम्य मुखाकृति, कैसा त्रिभंगी ललित स्वरूप ! देखते ही भक्ति-भाव से लोगों के मस्तक झुकने लगे।

शाम होते होते मूर्त्ति के आगे डेढ़ेक रुपये की परचून, तीन श्रीफल, कुछ पेड़े और फल-फूल इकट्ठे हो गये। यह सब श्रद्धा जनित ही था। और वह भी उस श्रद्धा द्वारा ही जन जन के अन्तर में सुषुप्त चेतना को जगाना चाहता था। रात होने पर वे सब पैसे उसने यत्नपूर्वक रख दिये, अपने निर्वाह के लिए उनको उपयोग में न लिया। चढ़ाये गये प्रसाद में से ही कुछ खाकर शेष को गरीबों में बाँट दिया।

दूसरे दिन भी वही क्रम रहा और फिर तो जैसे जैसे समय व्यतीत होता गया, मूर्त्ति की प्रतिष्ठा भी बढ़ती गई। देवशंकर के अन्तःकरण ने कहा : 'वाह रे मेरे प्रभु ! प्रतिष्ठा पाने के लिए तुम्हें भी तप करना पड़ता है।'

अब देवशंकर ने दाढ़ी बढ़ानी शुरू कर दी थी। सिर पर काली जटाएँ झूलने लगी थीं, धोती को लंगोटनुमा लपेट कर ऊपर भगवा कुर्त्ता पहन लिया था। उसकी देहयष्टि भी देखते ही आकर्षित करती थी।

एक दिन एक भव्य मोटरकार उस खण्डहर के पास आ कर रुकी। उसमें से एक सम्पन्न घराने की स्त्री उतरी, उसने भक्तिभाव सहित मूर्त्ति को नमन करके एक रुपया चढ़ाया और देवशंकर की तरफ़ मुड़ कर बोली : 'महाराज, आपका नाम ?'

'देव,' देवशंकर ने संक्षेप में ही कहा। पर नाम में भी एक प्रकार का चत्मकार रहता है। देव शब्द सुनते ही उस स्त्री के मन में देवशंकर के प्रति पूज्य-भाव बढ़ा।

'कल एकादशी है, देव महाराज ! मेरे घर भोजन के लिए पधारें। मैं गाड़ी भेज दूँगी।'

कृतज्ञता पूर्वत देवशंकर उस स्त्री को देखता रहा। जाना चाहिए या नहीं, इसी द्विविधा में वह था, कि उस स्त्री ने फिर कहा :

'मेरी पुत्रवधु प्रसव-पीड़ा से छटपटा रही है। समय पूरा हो चुका है, किन्तु प्रसव नहीं हो रहा। आप जैसे देवपुरुष के आशीर्वाद की आवश्यकता है।'

देवशंकर ने भगवान् का चरणामृत देते हुए कहा: 'लो, यह प्रभु का चरणामृत अपनी पुत्रवधु को पिला देना; किन्तु उससे कह देना कि पीते समय वह इतना अवश्य कहे कि हे सर्वशक्तिमान् ! मेरी आप में पूर्ण श्रद्धा है।'

स्त्री ने सम्भाल कर चरणामृत का पात्र ले लिया और मोटर में बेठते हुए देवशंकर से कहा : 'कल इसी समय आपको लेने मोटर आएगी, अवश्य पधारें।'

मोटर-ड्राइवर गाड़ी का दरवाज़ा खोले ही खड़ा था; सेठानी के बैठते ही उसने दरवाज़ा बंद किया और अपनी जगह पर बैठ कर मोटर चालू कर दी। मोटर चलने लगी तब उस स्त्री ने फिर देवशंकर को हाथ जोड़े। कुछ ही क्षणों में हवा से बातें करती मोटर अदृश्य हो गई।

अगले दिन देवशंकर उस स्त्री के घर पहुँचा, तब उसने सुना कि उसकी पुत्रवधु ने पुत्र-रत्न को जन्म दिया है। वहाँ उत्सव हो रहा था। स्नेही-सम्बन्धी एवं पड़ोसी एकत्र थे और सबकी जीभ पर एक ही बात थी कि देव पुरुष की आशीष फली। और देव-शंकर के पहुँचने पर सब उसे नमन करने लगे।

कुछ ही दिनों में देवशंकर की ख्याति सर्वत्र फैल गई। लोग उसको चमत्कारी व्यक्ति मानने लगे एवं अपनी आधि, उपाधि आदि त्रिविध तापों का रोदन उसके आगे करने लगे। उन सभी को मुरली मनोहर कन्हैया का चरणामृत देकर वह इतना ही कहता : 'इस चरणामृत को लेते समय कहना कि हे सर्व-शक्तिमान् ! मेरी तुझमें पूर्ण श्रद्धा है।'

जो रोग-मुक्त हो जाता, वह दूसरों को कहता और इससे अब देव महाराज के दर्शनार्थ लोगों की भीड़ बढ़ने लगी । तब सन्ध्या समय देवशंकर उन्हें श्रद्धा की महिमा समझाता.... श्रद्धा तो संजीवनी शक्ति है, यह चेतना सभी के अन्त:करण में सुषुप्त-सी रहती है । हृदय रूपी पात्र में भक्ति की बत्ती रख कर उस श्रद्धा के दीपक को जलाने मात्र की आवश्यकता है, और बस ! वह संजीवनी तुम्हारी रग रग में अमृत भर देगी । संजीवनी तो महाशक्ति है ।....लोग मन्त्र-मुग्ध-से यह रहस्य सुनते एवं देवमहाराज के इस उपदेश को एक नया मंत्र मानते ।

वह जो खण्डहर था, उसके स्थान पर अब मन्दिर बन गया था और उस में वही मुरली मनोहर की त्रिभंगी मूर्ति प्रतिष्ठापित हो गई थी ।

कई बार देवशंकर विचार-मग्न हो जाता कि यह सब कैसे हुआ ? तब उसकी आत्मा में उसे बोध होता, 'मात्र श्रद्धा की शक्ति, और कुछ नहीं । और वस्तुत: बिना श्रद्धा या विश्वास के मनुष्य जीवन टिक ही नहीं सकता । इसी कारण यह मूर्ति-पूजा की परम्परा टिकी हुई है । यही, बस इस का रहस्य है ।'

देवशंकर की ख्याति अब चतुर्दिक फैलने लगी । परन्तु भगवान् के नाम से मिलने वाली उस प्रतिष्ठा को देख कर, अपनी ख्याति सुन-सुनकर उसका हृदय तिलमिला उठता । इस कारण वह किसी के घर न जाता; मात्र मुर्लीमनोहर की सेवा में ही वह लगा रहता । जो कुछ भेंट-पूजा चढ़ती, वह सब वह ग़रीबों में एवं धर्मार्थ संस्थाओं में बाँट देता । इसका यह परिणाम हुआ कि उसकी ऐसी नि:स्वार्थ सेवा से लोग और भी उसके प्रति आकर्षित होने लगे ।

तभी एक दिन वही मोटर वाली स्त्री फिर उसके पास आई । बोली : 'देवमहाराज शहर के एक प्रतिष्ठित सज्जन रामदास सेठ का एक मात्र पुत्र गम्भीर बीमारी से ग्रसित है । डाक्टर लोग भी उस रोग का न तो निदान ही कर सकते हैं न चिकित्सा ! अब तो वह तुम्हारे आशीर्वाद से ही बच सकता है ।'

'नहीं, माता !' देवशंकर ने कहा, 'आशीर्वाद तो प्रभु का ही हो सकता है । उससे कहो, वह उस परम कृपालु भगवान से प्रार्थना करे । मैंने तो किसी के भी निवास-स्थान पर जाना बंद कर दिया है ।'

'वह परम कृपालु तुम्हारे अंतर में है, देव महाराज ! तुम्हारी चरण-धूलि का स्पर्श होते ही....'

'मुझे शर्मिन्दा न करो मां ! वह दयानिधान तो सभी के हृदयों में बसा है । श्रद्धा एवं भक्ति द्वारा उसे पहचानो !'

पर देवशंकर की कोई भी दलील चली नहीं, तब अंत में प्रभु का चरणामृत दे कर देवशंकर ने कहा : 'लो, मां ! यह चरणामृत रोगी को पिला देना । मेरा मंत्र तो तुम्हें याद होगा ही । उससे कहना कि भगवान् पर अटल श्रद्धा और अपनी स्वयं की शक्ति पर विश्वास-पूर्वक यह चरणामृत पान कर ले । श्रद्धा-पूर्वक लेगा तो अवश्य नीरोग हो जायगा ।'

चरणामृत लेकर वह स्त्री चली गई। उस दिन के बाद नित्य प्रति रामदास सेठ की गाड़ी आती—कभी कभी सेठ भी आ जाते। देवशंकर से साथ चलने को अनुरोध करते, पर वह न जाता। सत्य तो यह कि सेठ का पुत्र स्वास्थ्य-लाभ करने लगा था। एक मास व्यतीत होने पर रामदास ने मंदिर में आकर देवशंकर से कहा कि उनका पुत्र रोग-मुक्त हो गया है एवं कल ही वह प्रभु के दर्शनार्थ वहाँ आयेगा।

दूसरे दिन मंदिर में भीड़ लग गई। रामदास सेठ के मृत्यु मुख में पड़े हुए पुत्र का रोग सर्वथा लोप हो गया है और वह भगवद्दर्शन एवं देवमहाराज के आशीर्वाद के लिए मंदिर में आयेगा—यह बात विद्युत-वेग से सर्वत्र फैल गई थी। रामदास सेठ ने मंदिर को भी खूब सजाया था।

नौ बजते ही रामदास सेठ की मोटर मंदिर के बाहर आकर रुकी। सेठ और उनका युवक पुत्र मोटर में से उतरे और लोगों का नमन ग्रहण करते हुए मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ने लगे। देवशंकर तो मंदिर के गर्भागार में ही था। मंदिर में जाकर उस युवक ने मुर्लीमनोहर को साष्टांग प्रणाम किया। घण्टे बजने लगे एवं देवशंकर ने भगवान की आरती उतारी। आरती पूरी होने पर आरती का पात्र उसने नमन करने के लिए श्रेष्ठि-पुत्र के सामने किया तभी दोनो की दृष्टि परस्पर मिली। देवशंकर की आँखों को देख उस युवक को भास हुआ कि इन्हें तो उसने पहले भी देखा है। कई वर्ष पूर्व का अतीत उसके मानस-पटल पर कौंध गया। देवशंकर ने सस्मित धीरे से उस श्रीमन्त पुत्र से कहा : 'मैं सिर्फ़ देव-देवियों की ही प्रतिमा बनाता हूं।' श्रीमन्त युवक को वह प्रसंग याद आया—एक गरीब मूर्ति बेचने उसके पास आया था और उसने दरबान मंगलसिंह से कहा था, 'इसे बाहर निकाल दे'; और आज वह स्वयं ही देवशंकर से आशीर्वाद की भिक्षा लेने आया है। उसकी अंतरात्मा द्रवित हो गई और तत्क्षण उसने देवशंकर के चरणो में साष्टांग प्रणाम किया। देव-शंकर ने उस श्रीमन्त पुत्र से इतना ही कहा: 'भाई, तू अपनी आत्मनिष्ठा द्वारा ही रोग-मुक्त हुआ है।'

भक्त लोग इन शब्दों में निहित गूढ़ भाव को नहीं समझे, परन्तु उन्हें यह तो निश्चय हो गया कि देवमहाराज अवश्य देवपुरुष ही हैं। कुछ देर में सब चले गये।

मन्दिर के गर्भ-गृह में मुर्लीमनोहर की वह त्रिभंगी मूर्ति हास्यमय छटा में खड़ी थी। देवशंकर को उसका त्याग कर जाने में लेशमात्र पीड़ा नहीं थी। उसे पूर्ण श्रद्धा थी कि प्रभु को दूसरा पुजारी मिल रहेगा।

दूसरे ही दिन लोगों ने देखा कि मन्दिर के द्वार खुले पड़े हैं। देवशंकर का कहीं पता न था। लोगों ने मन को समझाया, 'वह तो देव पुरुष था। उसे काल का या समय का बंधन क्यों?' सब ने देखा, गर्भद्वार पर एक तख्ती रखी थी, जिस पर लिखा हुआ था—'श्रद्धा ही संजीवनी है।'

●●●

पिछली रात

•

शिवकुमार जोशी

'एक खुराफ़ात सूझी है, परंतप' ।

'अरे यार, गाड़ी चलाने दे तू ! अभी उस आदमी से टक्कर हो जाती । तुम भी, किशोर निरे.......

'वाक्य पूरा कर लो ! निरे क्या ?'

'पीछे तुम्हारी श्रीमतीजी बैठी हैं । वे न होतीं तो बताता कि—'

'कोई हर्ज नहीं, परंतप भाई । इनके गुण-अवगुण मुझ से छिपे थोड़े हैं ?'

'तू बीच में मत बोल, उर्मि !, ये तो 'मैन ओनली' की बातें हो रही हैं । है न परंतप ! देख बेचारी मधुछन्दा भाभी कुछ बोलती हैं क्या ? कैसी शान्त होकर अपने कोने में दुबकी हुई मन ही मन मीठी धुन अलाप रही हैं ।'

'क्या कहा ? किशोर कुमार, फिर वही मेरे नाम से मज़ाक ? और खबरदार, जो मेरे पति को हैरान किया। मुश्किल से तो पुलिस ने उसका लाइसन्स लौटाया है; उस दिन तुमने इनका ध्यान उस पंजाबन के ब्लाउज़ के कट पर खेंचा और.......'

'गाड़ी ग्राण्ड होटल के चबूतरे पर चढ़ते चढ़ते बाल-बाल बच गई। तुम्हारे पति में तो शतावधान की शक्ति है, पर यदि तीन-चार ही अवधान की शक्ति होती, तो भी हम सब के सर सलामत रहते! मान लीजिये, परंतप एक साथ ही मोटर चलाये, सिगरेट के कश खींचे, बाँये फुटपाथ पर चलती युवती की पोनी-टेल पर दृष्टिक्षेप कर सके और दाँये हाथ की तरफ़ के फ़ुटपाथ पर सामने से आती हुई किसी भद्र महिला के आडम्बरपूर्ण परिधान की प्रशंसा कर सके, फिर भी, ऑफ़कोर्स एक्सलेटर, क्लच, ब्रेक एवं स्टियरिंग पर तो यंत्रवत् यथासमय अपना काम·······'

'तुम तो बहुत बातूनी हो गये हो इस परंतप की सोहबत में पड़कर। मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता कि तुम्हें बार बार टोकना पड़े—

'पर, उर्मि डियर! तू क्यों इस तरह मुझे टोकती रोकती है? हमें अपना दाम्पत्य जीवन प्रसन्नतापूर्वक चलाते रहने की इच्छा हो तो—'

'किशोर! अरे किशोर! देख तो साथ की लैन्डमास्टर के ह्वील पर किस का काबू है, देख तो—'

'मैं वह सब देख लूँगा, पर महरबानी करके गाड़ी को ज़रा बाँये हाथ सम्हाल कर रख मेरे यार। फ़ज़ूल पराई औरतों को देखने में कुछ हो गया तो पुलिस स्टेशन पर ही पहुँचना पड़ेगा—उधर कीर्तन व दीप्ति का प्लेन रवाना हो जायगा और पुष्पहारों के पैसे बेकार जायँगे।'

'और ये रसगुल्ले व खीरमोहन मधुछन्दा बहन को वापस घर ले जाने पड़ेंगे। इन्हें बम्बई तक कौन पहुँचायेगा? है न मधु बहन!'

'उर्मिला बहन, अपने पति की देखा-देखी तुम भी इनके भाषण में बढ़ावा न दो, नहीं तो फिर मुझे भी परंतप का साथ देकर तुम्हें जवाब देना पड़ेगा। तुम्हारे पतिदेव तो अब साहित्यिक बने हैं। जब कि परंतप तो सत्रह बर्ष से कहानियाँ लिखता है। कितने ही मासिक एवं दैनिक इसने प्रकाशित कर डाले हैं—'

'अरे! उस सारे स्टफ़ को कोई भी कहानी का नाम देने से रहा। फिर तुम्हारी जाति-सम्बन्धित मासिक पत्रिकाओं में कोई प्रतिष्ठित लेखक अपनी कृति भेजेगा ही क्यूँ?····मेरे किशोर की बराबरी करने को तो तुम्हारे परंतप को पाँच जन्म और लेने पड़ेंगे।'

'अरे रे, यह क्या? लड़ने झगड़ने को क्या तुझे और कोई विषय नहीं मिलता, मधु?

'अरे, लड़ने भी दो! यह खटपट खड़ी न हो, इसी के लिए तो मैं मन बहलाव की वह बात कहने वाला था। तुमने उसे उड़ा ही दिया।'

'अब भी क्या बिगड़ा है? अभी तो हम हैरिसन रोड पर भी नहीं पहुँचे, डमडम पहुँचने में तो अभी कम से कम पन्द्रह मिनिट और लग जायँगे। कहो, क्या कह रहे थे तुम।

'हम भी उस रस का पान कर सकती हैं ?'

'यदि तुम पचा सको तो हम लोगो को तो कोई ऐतराज नही है, उर्मि ! लेकिन फिर किसी के सामने चुगलखोरी न करना ।'

'यह तो प्रसिद्ध ही है कि बिल्ली के पेट में खीर हजम हो जाय तो—'

'तो क्या ? बोलो । बोलो न ? रुक क्यूँ गये ?'

'क्या बोलें ? तुम्हारे पति में इतनी हिम्मत भी है कि अपना वाक्य पूरा कर सकें ?'

'यह कहना चाहते थे कि यदि बिल्ली के पेट मे खीर टिक जाय तो मधुछंदा के पेट में बात टिके ।'

'यह बात है ! तो फिर तुम्हारी उर्मिला रानी ?'

'बात यह है मधु भाभी, कि उर्मिला की इस तरह बराबरी करने लगो तो शाम होते होते वह पति के वचनो को ब्रह्मवाक्य मानकर, पञ्जो को घिस-घिस कर अवश्य ही यह सिद्ध कर दें कि वह एक बिल्ली है !'

'देखो किशोर ! फिर बढने लगे हो तुम ! किसी की नकल करना ठीक नही, मिस्टर ! नही तो…… …'

'तो क्या होगा, यह तो मैंने अभी परोक्ष मे कह ही दिया है, डियर उर्मि !'

'लो सुन लो, उर्मि बहन ! अग्रगण्य साहित्यकार की पत्नी हो, तो सुन लो अब ।'

'फिर भी मुझे तो अपने पति पर गर्व है, मधुछन्दा बहन !'

'अरे, तुम अपनी बात पूरी करोगे, श्रीमान् किशोर या कि इन दोनों औरतों को लड़वाते ही रहोगे ?'

'फिर देखो वही ? हम औरतें हैं, क्यूँ ?

'प्लीज़, मधु !'

'हाँ तो सुनो, मुझे एक मज़ेदार बात सूझी है । हम चारो को कल्पना करनी है कि आज १० :४० पर छूटने वाले प्लेन में एयर इण्डिया की वाइकाउण्ट सर्विस से कीर्तन व दीप्ति बहन बम्बई जा रहे हैं । है न ?'

'अपने समाज का बच्चा बच्चा यह जानता है; इसमे तुम्हे खेल जैसा क्या दीखा ?'

'पूरी बात तो सुन लो, परंतप । अब कीर्तन साढ़े तीन महीने के लिए यूरोप के सफ़र पर जाएगा । आज इतवार है, करीब बुध के दिन वह बम्बई से रवाना होगा । है न ?'

'हाँ भाई, हाँ । अब जो कहना है कह डालो । यूँ गँवई गाँव के स्कूल मास्टर की तरह क्या सवाल जवाब किये जा रहे हो, यार ?

'वह देखो, साले बदमाश को । इस पञ्जाबी टैक्सी-ड्राइवर से तो तंग आ गये । हरामी

ने कैसा टर्न लिया है ? हाथ से साइड बताते बताते भला उसकी दाढ़ी में ऐसी क्या खुजली उठी·········बदमाश कहीं का·········?

'ज़रा वह सुन सके ऐसे, हिन्दुस्तानी भाषा में गाली सुनाओ, तब तुम्हें अपनी मर्दानगी का मज़ा मिलेगा परंतपभाई ।'
'तुम भी क्या हो उर्मिबहन ? किशोर भाई को आगे बोलने दो न ?'
'हुँ ! मैं क्या कह रहा था, मधुछन्दा भाभी ?'

'कि कीर्तन भाई बम्बई से इसी बुध की रात को प्लेन से यूरोप के लिए रवाना होंगे । इसके आगे तुम्हें पता न हो तो मैं बताऊँ कि दीप्तिबहन चार-पांच दिन अपने पिताजी के घर रुक कर बम्बई से जल्दी ही लौट आएँगी । कीर्तन भाई की अनुपस्थिति में घर के सिवाय ऑफिस का काम भी वही सम्भालेगी । हम जैसी पढ़ी-लिखी सहधर्मिणी से क्या लाभ है, यह भी कुछ मालूम है, तुम दोनों नाशुक्रे मर्दो को ?'

'अच्छा, मैं अपनी बात आगे बढाऊँ या कि तुम्हारी यह विरुदावली ऐसे ही अविरल चलती रहेगी ?'
'अब नहीं बोलेंगे । बस ?'
'और तू मधु ?'
'मैं तो कब से चुप्पी साधे बैठी हूँ ।'
'अच्छा तो आगे बढ़ो किशोर ।'

'तो मैं तुम तीनों से—परंतप, मधुछन्दा भाभी और तुझ से भी उर्मि—यह कह रहा हूँ कि कल रात तीन चार महीनों की विरहावस्था जिनके भाग्य में लिखी गयी है, उन दोनों ने कल की रात किस प्रकार व्यतीत की होगी, उस विषय में अपनी अपनी कल्पना बताओ। हम चारों में जिसकी भी कल्पना विशेष होगी, उसे मेरी ओर से उसकी योग्यतानुसार इनाम मिलेगा ।'

'मास्टरपीस·········दोस्त किशोरीलाल ! तुम्हारा दिमाग़ कभी-कभी ऐसे प्लॉट ढूँढ निकालता है कि ······ बस ! अच्छा मैं बताऊँ ?
'धीरे, परंतप भाई, धीरे—सिर्फ़ अपने ही अनुभवों या आदतों के आधार पर ही कीर्तन-दीप्ति की उस रात्रि की घटनाओं की कल्पना न कर बैठना ।'
'No tips—ऐसे सूचना देना ठीक नहीं किशोर !

'श्याम बाज़ार का चौराहा पार करने तक सोच लेने की सब को इजाज़त है । फिर हमें बारी-बारी से विचार अपने कह डालने होंगे ! है मंजूर ?'
'मंज़ूर ! मंज़ूर ! मंज़ूर !' तीनों ने कहा !
'हाँ ! अब परंतप, सबसे पहले तुम; बोलो ! तुम्हारे चेहरे से स्पष्ट है कि तुम बोलने को सर्वाधिक उत्सुक हो ।'

'मेरा विश्वास है कि दीप्ति बहन को अपने साथ विदेश यात्रा में न ले जाने के लिए कीर्तन ने जो जो बहाने बनाये होंगे, उन्ही से वह रात शुरू हुई होगी।'

'जैसे कि ?'

'ऐसे कि······ देख, दीपू ! बात यह है कि········'

'तुमसे किस ने कहा कि कीर्तनभाई दीप्तिबहन को दीपू कह कर पुकारते हैं ? तुम्हारी तरह सभी अपनी पत्नी का नाम छोटा करके बिगाड़ ही देते होंगे, यह कैसे मान लिया?'

'मधुछन्दा भाभी ! No personal नोक-भोंक प्लीज़ !

'बीच में चपड़ चपड़ नहीं। हाँ, मैं क्या कह रहा था ? ······ देख दीपू ! बात यह है कि फ़ोरेन एक्सचेंज की कितनी दिक्कत है व्यापार के लिए विदेश जाने वाले पुरुषों को ऐसी ज़रूरत भी क्या है ? इस तरह हमारे देश का पैसा परदेशों में मौज-शौक में उड़ा देने को थोड़े ही है ··· यह सुनते ही दीप्ति बहन गुर्राईं होंगी।'

'क्या कहा ? गुर्राई होंगी ? ऐसी सौम्य, शान्त, समझदार दीप्तिबहन गुर्राने लगें, यह तो सम्भव ही नहीं है ! तुम क्या सोचते हो किशोर ?'

'मुझे क्या लगता है, यह तो अपनी बारी में बतलाऊँगा डियर उर्मि। Will you please now keep quiet ?'

'तुम्हें मालूम नहीं उर्मिलाबहन ? सभी पुरुषों को किशोर जैसा ही सहिष्णु और कम-अक्ल न समझ बैठना—My apolojies to you Kishore !—एक बार कीर्तनभाई को दीप्तिबहन को दीपड़ी कहते तो मैंने भी अपने कानों सुना है। हाँ, तो तब दीप्ति बहन गुर्राई होंगी कि बस बहाने बनाने तो खूब जानते हो, ऐक्सचेंज तो चाहे जितना मिल सकता है, वह रीतेश बनर्जी अपनी पत्नी मंदस्मिता के साथ पिछले ह्फ्ते ही तो गये हैं—ब्लैक में ऐक्सचेंज लेकर।

'इसी तरह साढ़े ग्यारह बजे तक उनका वाक्‌युद्ध चलता रहा होगा। अंत में, पत्नी के साथ ये तर्कसम्मत दलीलें करते रहने में क्या रखा है, यह सोचकर विलायत से उसके लिए बहुमूल्य अण्डरवियर्स, पैरिस के सैण्ट वगैरह लाने का वायदा कर, समझा-बहला कर सुला दिया होगा ······ बस ! मैं तो भाई यही सोचता हूँ।'

'Next उर्मि, अब तू बोलना चाहती है या कि मधुछंदा भाभी को बोलने दिया जाय ?'

'मुझे तो अभी कुछ सोचना है।'

'सोचने ही सोचने में डमडम की बस्ती आ जायगी।'

'अभी तो यह श्वेताम्बर जैनों का बगीचा आया है। डमडम तो काफ़ी दूर है, समझी उर्मिला बहन। किशोर भाई से डरने की कोई ज़रूरत नहीं।'

'अच्छा तो, मधुछंदा भाभी, तुम ही बताओ।'

'मैं तो खैर बताऊँगी ही। और यदि मैं जीत गई तो तुम से ग्रेट ईस्टर्न में फ़ुल डिनर लिया जायगा·······'

'पर कुछ कहना शुरू भी करेगी ? अपनी विजय के प्रति इतना विश्वस्त होना भी ठीक नहीं, मधु !'

'आप को यह डर लग रहा होगा कि कहीं आपकी अपेक्षा आपकी पत्नी की कल्पना-शक्ति तेज़ न निकल जाय । पुरुष न जाने ऐसे ईर्ष्यालु क्यों होते हैं ?'

'यह हम स्त्रियों की मोनोपोली थोड़े ही है, मधु बहन !'

'मैं कहता हूँ, इधर-उधर की मगज़मारी में वक्त ज़ाया न करो । ऐरोड्रोम पहुँच गये तो यह हमारी मज़ेदार बात अधूरी ही रह जायगी ।'

'मुझे तो लगता है कि········मुझे तो लगता है········'

'अरे, रे ! कह डाल न देवी ! मैं तेरी बात में ध्यान पिरोऊँ कि मोटर चलाऊँ ?····कुछ भी न सूझता हो तो रहने दे ।'

'तुम चुप भी रहोगे ? सुनो, मैं समझती हूँ कि प्रियंकर देसाई के यहाँ से उनकी बर्फ़ पार्टी से वे दोनों रात सवा दस बजे लौटे होंगे । कीर्तन भाई मिसेज़ क्षिप्रा देसाई की भोजन सामग्री एवं डाइनिंग टेबुल की सज्जा आदि की प्रशंसा करने लगे होंगे····'

'नितान्त मौलिक एप्रोच, कम अलाँग मधुभाभी, यू आर स्कोरिंग········'

'तभी दीप्ति बहन का पारा गर्म हो गया होगा········कल ही तो जा रहे हो, बीच में सिर्फ यह एक रात ही तो रही है, फिर भी तुम्हे क्षिप्रा देसाई की रसोई और रूप सज्जा की सूझ रही है ।'

'Here here'.

'मेरी पत्नी की इतनी प्रशंसा मेरे हृदय में ईर्ष्या प्रज्वलित कर देगी, समझे मिस्टर किशोरीलाल ?'

'लल्लो-चप्पो की ज़रूरत नहीं है, परमू ! मुझे गड़बड़ाने का व्यर्थ प्रयत्न न करो····'

'अरे तुम आगे बोलो न मधुछंदा भाभी । पति के साथ घर पहुँचकर वह झगड़ने लगी····कैसा मज़ा आ रहा था ? प्लीज़ मधुभाभी ।'

'और दीप्ति बहन ने अपनी काञ्जीवरम की साड़ी उतार कर पलंग पर फेंकते हुए कहा होगा····'तीन दिन हो गये, मैं नित्य रंग बिरंगी साड़ियाँ पहन कर, तरह तरह के जूड़ों में कहीं कहीं से लाकर मोगरे की वेणी बाँध कर अपना सिंगार कर के तुम्हारे पास आती हूँ, पर तुम हो कि इस परदेश गमन की ज्वाला में तुम्हें पत्नी की तरफ़ स्थिर दृष्टि से देखने तक की फ़ुर्सत नहीं········'

'सिम्पली वण्डरफुल, मधुभाभी, गो ऑन ।'

'औरत की तर्क बुद्धि ! और नारी की छिछली इच्छा····हिश, यह भी कोई कल्पना है····? अरे ओ बुढ्ढ जरा सम्भल के चलो. रास्ता की बीच मरने के लिए क्यं घसते हो········?

'तुम्हारी इस हिन्दी से तो मेरी तर्क-बुद्धि और कल्पना कहीं अच्छी है। हूं····फिर है न, कीर्तन भाई को होश आया होगा, ऐसे, कि एक तो अपनी पत्नी को छोड़ कर इतनी दूर इतने लम्बे समय के लिए जा रहा हूँ, फिर दौड़-धूप और लोगों की पार्टियों के कारण पत्नी की तरफ़ तो मैंने देखा ही नहीं·······और तब फिर उसे मना लिया होगा।'

'सो किस तरह ?'

'परंतप भाई, हर प्रश्न पूछा नही जाता। हम स्त्रियों से कुछ तो लिहाज़ करना सीखो।'

'देख, उर्मि, अपन चारों वयस्क हैं, और वयस्कों के विषय में ही यह स्पष्ट बात है। तुझे ठीक न लगे तो साड़ी का एक छोर कानों में ठूँस कर, या और किसी तरह बहरी बन जा····क्यों, ठीक है न, परंतप ?'

'राइट, किशोर ! ऐब्सोल्यूटली राइट·······देखो यह डमडम आ गया, बोलो अब कौन आगे आता है ? किशोर तुम, या उर्मिला बहन ?'

'मेरी कल्पना अभी जमी नही है, मैं आखिर में बताऊँगी।'

'यानी हम तीनों की कल्पनाएँ जान लेने पर बहन जी आखिरी विस्फोट करेंगी, यही ना ? खैर ! क्या फ़र्क पडता है ? किशोर, तुम सुनाओ।'

'मैंने ही यह योजना बनाई थी इसलिए अन्त में बोलने का हक तो मेरा है, पर इस उर्मि से कौन ज़िद करे·······? ऑल राइट, सुनो तब········बात यह हुई कि····,

'बात हुई ? तुम तो ऐसे कहते हो जैसे तुमने सब कुछ अपनी आँखों देखा हो। तुम कहीं उनके शयन-खण्ड में तो नही बैठे थे ?'

'ये रात भर हमारे ही शयन कक्ष में थे, इसका प्रमाण मैं दे सकती हूँ, परंतप भाई।'

'बोली ! बोली तो सही उर्मिला बहन। कभी कभी तुम भी गहरी बात कह देती हो····'

'मैं आगे सुनाऊँ ? डमडम तो पीछे रह गया और हिज़ मास्टर की फेक्टरी भी आ गई····'

'बक अप········'

'····दीप्ति ! दीप्ति ! तुझे पीड़ा हो रही है, मैं समझता हूँ। रोम नगरी की शिल्प विद्या और स्थापत्य कला, वहाँ की वैटिकन सिटी, स्विट्ज़रलेण्ड में आल्प्स की गगनचुम्बी हिमाच्छादित चोटियों से घिरे निर्मल जलाशयों की सैर, लड़ाई से ध्वस्त मलबे में से नवजीवन की अंगड़ाइयाँ लेते बर्लिन, बॉन, हेम्बर्ग और अन्य शहर, हौलेण्ड के मक्खन व पनीर एवं वहाँ फूलों से झूमते बगीचे और वे पवन चक्कियाँ और लंदन के बकिंगहम पैलेस की वह August ugliness।'

'लेकिन, किशोर·······पहले पेरिस में पूरे ग्यारह दिन बिता कर, तब कीर्तन भाई विलायत जायेंगे ! ·······यह तो तुमने साबुत काशीफल ही दाल घोल दिया ?'

'अरे, सुनो तो सही ! वह तो कीर्तन की चाल थी सिर्फ़, और जैसे तुमने अभी मुझे टोका, वैसे ही दीप्ति बहन ने भी कल रात कीर्तन के कान उमेठे थे·······'

'क्या यह सच है, किशोर भाई ? उर्मिला बहन की ही तरह दीप्ति बहन ने भी पति को वश में करने का यह नुस्खा पहले से–बचपन से ही सीख रखा था क्या ?'

'मधुछंदा बहन ! कह चुकीं ? तुम जैसा समझती हो वैसी सख्त–दिल मैं नहीं हूँ । मैं तो अपने किशोर को फूल की तरह सहेज कर रखती हूँ ।

'उर्मिला, No love-songs at present. अपने प्रेम-गीत फिर फ़ुर्सत के समय गाना···· आगे कहूँ ?'

'हाँ, चलने दो, स्वामीनाथ ।'

'बड़ा अच्छा लगा यह सम्बोधन·······हूँ······ तब दीप्ति बहन ने कीर्तनलाल की खबर ली·······क्यूँ, क्या पैरिस का प्रोग्राम कैन्सल कर दिया, कीर्तन ? तो क्या कोपनहेगन से किश्ती लेकर सीधे लन्दन जाओगे ?·······'

'बहुत खूब ! बहुत खूब किशोर ! दीप्ति बहन की आवाज़ भी नकल करके सुना दी तुमने तो ।'

'नाटकीय तो यह सदा से ही हैं न । सो इसमें कौन बड़ी बात है ?'

'मेरी कल्पना शक्ति से ईर्ष्या न करो, मधुभाभी ?'

'अच्छा अच्छा, आगे चलो ।'

'दीप्ति बहन के इस प्रश्न से श्रीमान् कीर्तनलाल घबरा उठे, और कुछ सोचकर बोले : अरे राम ! यह तो मैं भूल ही गया था·······'

'भारत लौट कर व्यर्थ निःश्वास छोड़ते रहने से तो पैरिस की बातें भूल जाना ही अच्छा है ।'

'पैरिस तो क्या, अन्दमान तक की भी यात्रा तुम्हारे भाग्य में लिखी नहीं है । क्यों व्यर्थ पैरिस के सपने देख रहे हो ?···नहीं तो मुझे देखा है ?'

'माँ जगदम्बा का ही अवतार हो, जैसे ।'

'नहीं दोस्त परंतप । ज़रा पीछे मुड़कर देखो तो, तुम्हारी पत्नी इस वक्त जगदम्बा-स्वरूप तो नहीं, हाँ, साक्षात् भद्रकाली कपालिनी अवश्य दीख रही हैं·········अच्छा, आगे चलाऊँ ?'

'हाँ ···साढ़े तीन मिनिट में डमडम एयरोड्राम पर पहुँचा दूँगा····और अभी तुम्हारी श्रीमतीजी बाकी हैं । ज़रा जल्दी करो तो ठीक रहे ।'

'फिर जब कीर्तनबाबू ने पैरिस में ऑपेरा फ़ोलीबर्जेस, नाइट क्लब्ज़ के फ्लोर शो जैसी पैरिस की रंगीली दुनिया में पैर भी न रखने की क़सम खाई, दीप्ति बहन के गले पर हाथ रख कर किन्तु दृष्टि ताज़ी पेण्ट की हुई छत की तरफ़ किये हुए·······?

'जैसे तुम्हें सब कुछ मालूम है ? कब, क्या और कैसे किया होगा सब कुछ तुम जानते हो । तुम भी यार बड़ी दूर की नापते हो ! अच्छा फिर ?'

'यूँ क़सम खाने पर ही दीप्तिबहन ने समझौता स्वीकार कर········'

भला 'किस बात का समझौता, किशोर ?'

'मैं तो समझी थी, कि दीप्ति बहन ने शरणागत को स्वीकार कर लिया। उर्मिला बहन, तुम्हारे पतिदेव यूँ गड़बड़ सड़बड़ बोल जाते हैं कि कई बार बड़ी गड़बड़ी हो जाती है। है न ?

'अच्छा ! अच्छा ! अब यह जैसा भी है, मुझे तो सब तरह अनुकूल है। जो कुछ घोटाला होना था, सात बरस पहले हो चुका। जैसे कि·········'

'उर्मि ! इस वक्त अपने मधुर अतीत को याद करने की ज़रूरत नहीं······· अब मुझे सिर्फ़ दो-तीन वाक्य ही कहने हैं। तुम लोगों को सुनना है ?'

'हाँ।'

'तो, दीप्ति बहन ने स्वीकार किया कि रात सवा-ग्यारह से सबेरे साढ़े पाँच तक कीर्तन दीप्ति बहन को ·······'

'प्लीज़, किशोर, मुझे आगे नहीं सुनना।'

'तुम्हारे पति तो बिल्कुल निर्लज्ज हैं उर्मिला बहन !'

'प्लीज़, किशोर ? मुझे तो वह सब सुनना ही है। स्त्री-वर्ग को न सुनना हो तो वे अपने कानों में उङ्गली डाल लें।'

'लेकिन अब तो मुझे भी आगे कुछ नहीं कहना है ! तुम तीनों ने ही मेरी बात को समझने में भूल की। साधारण रोमांस की बात मैं कहना नहीं चाहता था। मैं तो कहना चाहता था कि······· अरे, परंतप दाँये हाथ को मोड़ो गाड़ी। तुम तो एयरोड्राम पीछे छोड़ कर आगे दौड़े जा रहे हो।'

'अरे हाँ ! पिकनिक के लिए हेरिंगहाटा की डेयरी पर जाने की कुछ आदत-सी पड़ गई है, सो ज़रा आगे बढ़ आया ·· ए····यह लो, घुमा लिया बस ? लेकिन तुम कह क्या रहे थे ?'

'मेरी बात तो पूरी हो गई। अब उर्मि, अपन दो मिनिट में एयरोड्राम पहुँच जायँगे। तब तक जो कुछ कहना हो, कह डाल। वहाँ तो जाने कौन कौन उन्हें पहुँचाने आये होंगे। उनके सामने यह पुराण-प्रकरण थोड़े ही खोला जायगा।'

'ना, अब मैं कुछ नहीं कहना चाहती।'

'क्यों भला ?'

'ऐसा कैसे हो सकता है, उर्मिला बहन ? मेरी मधु से तो तुमने सब कुछ उगलवा लिया और अपनी बारी में तुम साफ़ बच जाना चाहती हो। वह हम न होने देंगे।'

'बात यह है कि तुम तीनों ने तो अपनी अपनी कल्पनाएँ सुना सुना कर अपनी अपनी मनोवृत्तियाँ ज़ाहिर कर दीं। तुम्हारी तरह मैं भी अपने आपको अनावृत्त करना नहीं चाहती।'

'यह किसी तरह नहीं होगा। उर्मिला बहन ! मोटर यहीं से लौट जायगी।'

'और ये फूल मालाएँ रास्ते में ही फेंक देंगे। दीप्ति बहन तुम्हारी अन्तरङ्ग सखी ठहरीं, बिना फूल हार पहनाये ही वापस भवानीपुर न लौटा ले जायँ तो हम मधु-परंतप नहीं·····'
'शाबाश, मधु शाबाश ! मैं गाड़ी लौटाता हूँ। क्यों उर्मिला बहन ! बोलती हो ?

'एक सेकण्ड, परंतप ! मुझे एक खयाल आया है। क्यों न उर्मि को अपन दूसरा काम सौंप दें ? दीप्ति बहन इसकी अन्तरङ्ग सखी हैं ही। अगर यह पूछे, तो गत रात्रि का कीर्तन भाई व दीप्ति बहन का परस्पर का·······समझ गये ना ? वह सब हाल मालूम करके यह हमें बता देगी·······'

'हाँ, इसके लिए ये तैयार हों, तो इन्हें बख़्श दिया जाय।'

'हाँ, हाँ, तभी। क्यों उर्मिला बहन अपने पति की शर्त तुम्हें मंजूर है न ? चिन्ता में कैसे पड़ गई ? क्या करूँ, मेरी तो वहाँ चलेगी नहीं, नहीं तो········'

'खैर, तुम तीनों की यही मर्ज़ी है तो मैं भी तैयार हूँ। लेकिन एक शर्त पर—दीप्ति बहन से मैं अकेली बात करूँगी। मगर, तुम अब मोटर की रफ्तार बढ़ाओ तो अच्छा।'

'हुर्रे···ऽ····ऽ···'

'भई किशोर, पन्द्रह मिनिट हो गये। यहाँ पाकिस्तान इण्टरनेशनल एयरवेज़ के काउण्टर के पास खड़े खड़े दो दो सिगरेटें भी फूँक चुके और तुम्हारी श्रीमतीजी अभी तक दीप्ति बहनको अलग तक नहीं ले जा सकीं।'

'ज़रा धीरज रखो ! इतने लोग उन्हें विदा करने आये हैं। ऐसे में उन्हें एक तरफ खींच कर बातें करना कोई खेल थोड़े है ? तौबा है तुम मर्दों के अधैर्य और अविवेक से तो।'

'अरे, देखो-देखो परंतप ! वह देखो उर्मि ने हाथ-पाँव चलाने शुरू कर दिये हैं। दीप्ति बहन के बाँये कन्धे पर उसने धीरे-से हाथ मारा है··· ·· वह देखो !'

'शाबाश, उर्मि बहन, शाबाश ! सच कहते हो, किशोर ! वह देखो, वे हिलीं ! आखिर सबके बीच में से अपनी आत्मीय सहेली के इशारे को समझकर दीप्ति रानी खिसकीं तो !'
'जैसे स्वयं ही परदेश जा रही हों, ऐसे नखरे कर रखे हैं ! बनारसी साड़ी की चौड़ी काली किनार मानो उनकी विरह-व्यथा व्यक्त कर रही है।'

'और उस पीले रंग की साड़ी पर लाल पीले रंग का कसीदा उसके हृदय के स्नेह व रंगराग को अभिव्यक्ति दे रहा है : यही कहना चाहते हो तुम कवि किशोर ?'

'तुम दोनों ही निरे झक्की हो, कोई सुनेगा तो क्या सोचेगा ?'

'कोई नहीं सुन सकता मधुछन्दा भाभी ! कोई नहीं सुनेगा। इस पाकिस्तान एयरवेज़ के काउण्टर और इण्डियन एयर लाइन्स कॉर्पोरेशन के काउण्टर के बीच में सत्ताइस फ़ीट, साढ़े सात इञ्च का अन्तर है·· ····अरे, पर एक और चीज़ देखी तुमने परंतप ?'

'क्या ?'

'बातें करते करते उर्मि ने धीरे-से दीप्ति बहन के होठ का कोना पोंछ दिया है ?'

'अरे ! पर, अब तक मुझे यह खयाल क्यों नहीं आया ?'

'क्या, मेरी प्रियतमे ?'

'दीप्ति बहन ने आज लिपस्टिक नहीं लगाई है ! क्या यह नयी बात नहीं है ? छोटी-सी पार्टी या नाच समारम्भ में भी जाना हो, तो लिपस्टिक काम में लेने वाली यह स्त्री, ऐसे अवसर पर वाइकाउएट द्वारा बम्बई जाते समय ऐसे सूखे निस्तेज होठों के साथ ?'

'शायद, उर्मि ने भी यही सवाल उनसे किया हो ? और देखो हँस कर दीप्तिबहन ने उसे जवाब भी दिया है। पर ……फिर उर्मि ने हँसने में साथ क्यों नहीं दिया ?'

'उर्मिला बहन तो उल्टे कुछ गम्भीर हो गईं। है न मधु ?'

'देखो दीप्ति बहन के कन्धों को पकड़ कर वह अपनी तरफ खींच रही हैं न ? दोनों सहेलियाँ हम सबके सामने ही लिपट न पड़ें तो अच्छा—'

'तुझे उर्मि बहन से ईर्ष्या हो रही है क्या मधु ?'

'चुप भी रहोगे ?'

'अरे ! अरे ! वह देखो तो, आलिंगन के बहाने उर्मि ने दीप्ति बहन के कान में कुछ कहा……यह तो उसकी पुरानी आदत है।'

'लेकिन किशोर ! लिप-मूवमेएट से उन्होंने क्या कहा होगा, यह तो तुम समझ ही गये होगे। अपनी पुरानी आदत के अनुसार क्या तुम इतना भी नहीं समझ सकते ?

'मुझे तो लगता है, उर्मि ने दीप्ति बहन को कोई सान्त्वना की बात कही है।'

'कैसे भला ?'

'होगा दीप्तिबहन, घबराओ मत ! अगली बार कीर्तन भइया जरूर तुम्हें साथ ले जायँगे ! यूँ दिल छोटा न करो ! पुरुष तो आदत से ही स्वार्थी होता है……ऐसा ही कुछ कहा होगा।'

'निरी गप्प ! कुछ होश में भी हो ?……वह देखो दोनों सखियों ने आँखें मिला कर कैसा सुन्दर संकेत किया है ? जैसे दोनों हाथ पकड़ कर, उन्हें झुलाते हुए एक दूसरी को सहारा दे रही हों, ऐसा लग रहा है मुझे तो।'

'मधु, तेरी कल्पना-शक्ति इतनी तीक्ष्ण होगी और इतनी दूर से यह सब तू इतनी तीक्ष्णता से देख सकेगी, मैंने तो सोचा तक न था ……और देखो दोनों अलग हो गईं……और लो कीर्तन भाई गुलाब का गुच्छा सूँघते हुए बीच में ही आ टपके। अब ?'

'देखा, तीनों ही हँस पड़े ! दीप्ति ने कुछ मज़ाक किया है।'

'ना रे ना ! कीर्तन भाई को कुछ उपालम्भ दिया है।'

'नहीं, मधु यहाँ तू मात खा जायगी । उपालम्भ का जवाब इतनी गम्भीरता से दे दे, ऐसा कीर्तन नहीं है । लो अब उर्मिला बहन ने 'आवजो' कहा है । अब दो क्षण में ही उन्हें इधर आ जाना चाहिए ।'

'हुँ, Now be serious, वह गम्भीर हो रही हैं । हम तीनों भी वैसे ही गम्भीर बन कर किसी अन्य विषय पर बात करना शुरू कर दें ! परंतप, तुम्हें ऐसा भास नहीं होता कि यह बी० ओ० ए० सी० कामेट सर्विस आरम्भ होने से इण्डिया इण्टरनेशनल को करारा धक्का पहुँचेगा ?'

'ऊँ हूँ । जे० आर० डी० टाटा के बिज़नेस आउटलुक को तुम नहीं समझते । ऊँट ने कुब्बड़ निकाला तो मनुष्य ने काठी को धर दबाया—जैसी ही उनकी सूझ-बूझ है । वह भी कोई न्या आकर्षण खड़ा करेंगे ही ।'

'दोनों इतने चिल्ला-चिल्ला कर बातें क्यों कर रहे हो ?ज़रा धीरे····'

'यह तुम्हारा विषय नहीं है, मधुछंदा भाभी !'

'तू चुप रह न मधु ! हाँ तो, समझे न किशोर ! अन्तर्राष्ट्रीय हरिफाई में खड़े रहना, शनिवार की शाम को ताश पीटने जैसा आसान नहीं है·······पर········'

'क्यों, रुक क्यों गये, परंतप ? पीछे क्या देख रहे हो ?'

'क्या बात है, उर्मिला बहन ? ऐसी उदास कैसे ?'

'कुछ नहीं, वैसे ही ! तुम लोग इतने ज़ोर-शोर से क्या चर्चा कर रहे थे ?'

'कोई खास बात नहीं । तुम अपनी बात पर आओ, उर्मिला बहन ! तुमने दीप्ति बहन से बात निकलवा ली ?'

'जाने दो वह बात, मधु बहन ?'

'क्यों भला उर्मि !'

'शर्त तोड़ने का कोई कारण ?'

'यह नहीं होगा, उर्मि बहन ! बताओ क्या मालूम किया तुमने ?'

'कोई खास बात नहीं है ।'

'तो फिर तू इतनी गम्भीर क्यों है ? तूने अपने पास बुला कर उससे क्या क्या बात की, उस सबकी पूरी रिपोर्ट देनी ही होगी ।'

'तुम तीनों की रुचि योग्य तो कुछ भी नहीं है ।'

'फिर भी कुछ तो होगा ? हमें तो हर बात में मज़ा आता है । बस के चार पैसे के टिकिट की छपाई से लेकर चंद्रलोक तक पहुँचे हुए रशियन रॉकेट तक में·······कम अलांग, उर्मिला बहन ।'

'तो फिर सुनो ।'

'यस·······'

ऐसे मुँह, बनाये क्या खड़े हो तुम दोनों ? कोई देखे तो क्या समझे ? अजीब लगते हो·······तुम कुछ क्यों नहीं कहतीं, परंतप भाई को ?'

'किशोर भाई तुम्हारा कहा मानते हों तो ये मेरा मानें ।'

'हमारे फटे मुख-कमल की ओर न देख कर तू अपनी बात शुरू कर, उर्मि !'

'तुम तीनों का आग्रह है और मैं ज़बान दे चुकी हूँ, सो अब चारा भी नहीं है कोई ।'

'पर इसमें निःश्वास छोड़ने की क्या बात है, उर्मि बहन ? बताओ न कि पिछली रात को·······'

'तुमने उनसे बात निकलवाई कैसे ?'

'उनके होठ के एक कोने पर पौंछी हुई लिपस्टिक का हल्का-सा रंग मुझे दिखाई दे गया·······'

'और वह तूने पौंछ डाला, अपने रूमाल से····यही न ?'

'हाँ, और मैंने पूछा कि आज इतनी सादी-सादी कैसे ?

'फिर उनने क्या कहा ?'

·········· ·······

'बोल ना, चुप क्यों हो गई ?'

'कह ही डालूँ ? दीप्ति बहन को अपने साथ ले जाने की कीर्तन भाई की तो बहुत इच्छा थी, पर दीप्ति बहन ने ही मना कर दिया ।'

'क्या कह रही हो ?'

'पर क्यों ?'

'इसलिए कि उनकी अनुपस्थिति में ऑफ़िस का ध्यान रखने वाला भी तो कोई होना चाहिए ? फिर·······'

'फिर क्या ?'

'कीर्तन भाई ने इस पर कहा कि तब तो मैं अपना काम जल्दी से जल्दी निपटा कर लौट आऊँगा । बाद में मौका निकाल कर साथ साथ चलेंगे, तब ही घूमें-फिरेंगे ।'

'है तो सत्पुरुष, इसमें शक नहीं । किशोर भाई, वह हम तुम जैसा नहीं है । समझे ?'

'यह सब चर्चा क्या कल रात में ही हुई थी ? तुम्हें तो पिछली रात की बात मालूम करके लानी थी न ?

'मुझे जो कार्य सौंपा गया था, उसका पूरा ध्यान था····समझे ? कल रात ही प्रियंकर के यहाँ भोज से लौट कर कीर्तन भाई तो थकान से निढाल होकर पड़ रहे । पिछले कई दिनों की भाग-दौड़, ऑफ़िस के स्टाफ़ को हिदायतें देना, दोस्तों के यहाँ से ऊपरतली निमन्त्रण, खरीदी वगैरह, इन सब से वह इतने थक गये थे कि लेटते ही सो गये । तब रात के ढाई बजे तक दीप्ति बहन ने ही बाकी का समान बाँधा । फिर से देखा कि कुछ

रह तो नहीं गया । पति के जरूरी कागज-पत्र उनके पोर्टफ़ोलियो में जमा दिये·······'

'इन बातों में हमें कोई रस नहीं आ रहा है, उर्मि बहन !

'इसमें मेरा क्या वश है परंतप भाई ?····· हाँ तो इतने में अचानक ही कीर्तन भाई जाग गये—'

'हाँ, हाँ, फिर ?'

'तुम्हें मज़ा आये, ऐसा तो आगे भी कुछ नहीं हुआ, यह मैं कहे देती हूँ ।'

'तो भी ?'

'दीप्ति बहन सब चीजें करीने लगा रही थीं, यह देख कर उन्हें दुःख हुआ·······मदद करने जैसा कुछ भी तो बाकी नहीं रहा था, फिर भी हाथ बढ़ाने लगे । यही नहीं, अभी जो मैंने कहा था, वे सब बातें हुईं ।'

'ओह ! बस ? कुछ तो रोमाण्टिक ? थ्रिलिंग ?'

'लेकिन दीप्ति बहन ने उन्हें सौगंध दे दी कि सब कुछ देख कर ही आना, बाकी कु भी न रखना ।'

'पेरिस की नाइट-लाइफ़ ? फ़ोली बर्जेस·······?'

'इस तरह खुले शब्दों में तो नहीं, पर परोक्ष में । इन सबको देखने और अनुभव में लेने पर भी तुम मुझे नहीं भूले, ऐसा जब मैं जान लूँगी, तब हमारा यह दाम्पत्य जीवन अधिकाधिक सुखद और उल्लासमय बन जायगा—काजल की कोठरी में से बेदाग़ निकल आओ, इतना ही चाहती हूँ मैं तो । हमारी स्नेह-साधना ने हमें कहाँ लाकर छोड़ा है, इसकी भी कभी परीक्षा हो जाय, तो हर्ज क्या है ?'

'लेकिन तुमने यह न पूछा कि ऐसी जोखों उठाते हुए अगर कुछ हो जाय, तो—ना, ना, यह तो यूँही एक बात है—'

'नहीं यह तो मैंने नहीं, पूछा परंतप भाई । इस वक्त तो उनका विश्वास और उस की वजह से उनके चेहरे पर जो चमक आई हुई थी, वही मेरे लिए सबसे बड़े सुख की बात थी····मालूम है, उन्होंने क्या कहा ?'

'क्या कहा भला, उर्मि ?'

'अरे फिर सस्पेन्स ले आईं, उर्मि बहन ?'

'वह बोली कि कीर्तन दूसरी ही मिट्टी से बना है, यह मैं खूब जानती हूँ और मैंने ग़लत व्यक्ति पर विश्वास नहीं किया, इतना निश्चय है ।'

'हियर हियर·· ····'

'यह मज़ाक जैसी बात नहीं है, किशोर····हर समय यह अच्छा नहीं लगता ।'

'तो फिर होठों के कोने पर लगे लिपस्टिक की क्या बात थी, उर्मिला बहन ?'

'तुम्हें सब को उस एक ही बात की उत्कंठा है, बस ?
'इसमें गुस्सा करने की क्या बात है? मधु वह तो सहज—'
'अपने पुष्ट रङ्गीन होठों का प्रलोभन भी कहीं विदेश में पति को याद न आता रहे, कुछ ऐसे ही विचार से, चलने को तैयार होकर, आदत के कारण लगा ली गई लिपस्टिक को उन्होंने तुरत पोंछ डाला था।'
'ओह, ऐसी बात है ?'
'खूब रही भई ! दीप्ति बहन ने तो पति की ज़बरदस्त परीक्षा लेनी चाही है। क्यों किशोर भाई, इस परंतप की भी कभी ऐसी दुर्गति करनी चाहिए।'
'मधुछंदा भाभी, तुम्हें उस राजपूत वीरांगना की बात याद है ? युद्धरत पति अपनी नवयुवती पत्नी को देखने रणाङ्गण में से वापस आ गया। कहीं युद्ध में फिर से मेरी याद इसे धर्मच्युत न कर दे, यह सोचकर तलवार से अपना सिर काट कर उसने अपने पति को दे दिया था—उस दृष्टि से तो दीप्ति बहन भी उसी कक्षा में रखी जा सकती हैं। क्यों उर्मि डियर, ठीक कह रहा हूँ न ?
'तुम्हारी तो यह जीभ हो तराश देने लायक है········बिलकुल ही वैसे ही !····लो, चलो अब वाइकाउण्ट के चल देने का वक्त हो गया।'
'योर अटेन्शन प्लीज़ पेसेञ्जर्स ट्रेवलिंग बाय वाइकाउण्ट सर्विस टु बॉम्बे········' ●●

धुंध

सुरेश जोशी

चारों ओर भीड़, कोलाहल, वाहनों की खड़खड़ाहट—और इस कोलाहलमय प्रवाह पर कहीं से झड़ कर गिर गये सूखे एक पत्ते की तरह तैरता, ठिलता वह चला जा रहा था कि एकाएक रुक गया। जैसे पानी में भँवर उठती है वैसे ही उसके चारों ओर भँवर का जाल घूमने लगा। उस भँवर ने चारों ओर से उसे घेर लिया और नीचे-नीचे खींचना आरम्भ कर दिया। नितान्त निष्क्रियता को समर्पित हो वह ठिठक गया। मन में सोचा : मैं आखिर रुक क्यों गया? सामने के मकान की दूसरी मंज़िल पर की खिड़की पर गिरती धूप भी जैसे जल उठी। उसकी चौंध से आंखें जलने लगीं। क्या इसी से वह रुक गया? या कि आसपास की भीड़ में पिस जाने से स्वयं को बचा लेने की सहज संरक्षणात्मक वृत्ति के कारण? उसे कुछ समझ में नहीं आया। उसका शरीर जिसके वशीभूत हो यह सारा आचरण कर रहा था, उसका

ज्ञान अभी उसे नहीं हुआ था। आँखें कहीं कुछ देखकर स्थिर होगयी थीं। उनकी स्थिरता के प्रवाह ने विद्युत-वेग से बहकर पैरों को भी जकड़ लिया था। उसने अपने मन को भी आँखों की राह दौड़ाया। क्या था दृष्टि के सम्मुख ? रंगों के कुछ धब्बे, एक दूसरी के साथ मिलकर धुंधली होकर अटकी हुई कुछ रेखाएँ, हवा में तैरते पक्षियों की तरह दूर होते स्वर। इन सब के क्रमबद्ध संयोग से आँखें क्या कोई चित्र रच रही थीं ? उसने बार बार उस चित्र की रचना की और फिर फिर उसे मिटा दिया। उसने अन्ततः प्रयत्न न करने का निश्चय किया कि उसी क्षण उसकी आँखों द्वारा अंकित चित्र उसके सम्मुख प्रकट हो गया। मन बेचैन हो उठा, किन्तु पैर नहीं हिले।

वर्षा की झिरमिर से धुंधलाये खिड़की के शीशे की दूसरी ओर वह थी। उसकी चिर-परिचित इकहरी देह; छोटा-सा ओष्ठ प्रदेश, जाने किस भार से झुकी-झुकी पलकें (वह कहा करता : अपने इन बादामों के अन्दर तू किस जहरी अन्धकार को इतने यत्न से दुनिया से छिपाये है ?) ओठों पर फूल की पंखुड़ी की तरह बिखरा स्मित—वर्षा की झिरमिर ने इस सारे दृश्य को जितना ही धुंधला बना दिया था, उसने उसे अपनी दृष्टि में अधिकाधिक स्पष्टतः पहचान लिया। उसने उसके ओठो को खुलते हुए देखा, फिर अनिश्चय में अपने आप बन्द होते देखा, उन पर उभरते अश्रुत शब्दों को वह सुनने लगा। मुंदी पलकें खुलीं, दृष्टि ऊपर उठते उठते फिर झुक पड़ी। (कई बार मुझे सन्देह होता है कि तूने मुझे आँखें खोल कर पूरा पूरा देखा भी है ?) उसके घुंघराले बालों की एक लट उसकी अंगुली में लिपटने लगी। वह इसी प्रकार बिना कुछ बोले मौन पर ऐंठ चढ़ाती जाती थी, इससे वह उत्तेजित हो उठता। वह तनिक कठोरता से उसके रोष को छितरा देती। अभी उसके सामने कौन खड़ा था ? वह किससे बात करती हुई खड़ी थी ? ('तू औरों के साथ बात कर सकती है, किन्तु मेरे सामने आते ही गूंगी क्यों हो जाती है ?' 'तुम होते हो तब मुझे कोई विक्षोभ नहीं सुहाता। अपनी श्वास भी मुझे कोलाहल जैसी लगती है।') कुतूहलवश वह पैर आगे बढ़ाने को ही था कि वह बाहर निकली, उसकी दृष्टि स्वयमेव ही, वह जिस ओर खड़ा था, उस दिशा में घूमी। दीख पड़ने की उसकी इच्छा नहीं हुई। वह लपक कर पास के लैम्पपोस्ट के पीछे जा खड़ा हुआ। कुछ देर वह अनिश्चय की स्थिति में खड़ी रही। उस समय उसने ऊपर वाले ओठ से नीचे वाले ओठ को दबाया, फिर उसे मुक्त कर दिया। हवा से उड़-उड़ जाते आँचल को कन्धे पर ठीक किया। फिर उसने कदम बढ़ाये। वह उसी की दिशा में बढ़ रही थी। दोनों जब साथ चलते होते, तब तो वह उसे जी भर कर देख भी नहीं सकता था, किन्तु आज वैसा नहीं था। उसने आँख भरकर उसे चलते देखा। उसके पैर उठ रहे थे, किन्तु जैसे चल नहीं रहे थे। उन पैरों को कहीं पहुँचने की व्याकुलता नहीं थी। वे तो मात्र शरीर में एक आन्दोलन, एक लय के संचार के लिए ही गति उपजा रहे थे। उसके पूरे शरीर में होते इस लय के संचरण को वह देखता रहा। उस लय की अन्तिम रेखाएँ उसकी आँखों में शमित

हो जातीं । उसकी आँखों में सभी कुछ को समा लेने की अदभुत शक्ति थी । उसकी काली गहराइयों के तल में न जाने क्या क्या पड़ा होगा । उन आँखों के सामने वह सदा ही व्याकुल हो उठता, उनमे वह सदा सावधान रहता । रात में अचानक ही चौंककर वह जाग जाता और बगल में देख लेता । कई बार वे उसे बुरी तरह उलझा कर दूरी को विस्तार देतीं । शब्द उस दूरी को पाने में असमर्थ हो रहते । वह स्वयं कहीं किसी अनिश्चिन्तता में फेंक दिया गया हो—ऐसा उसे प्रतीत होता । वह इससे खीझ उठता । ('मेरी पलकें झुकी हों तो भी तुम्हें अच्छा नहीं लगता । बताओ अब मैं क्या करूं ?' 'मेरी इच्छा होती है कि तेरी आँखें फोड़ दूँ । इन बादामों को फोड़कर इनकी ज़हरीली गिरी दूर दूर छितरा दूं ।')

वह उसके बिलकुल पास से निकल कर आगे बढ़ गई । आस-पास की परछाइयों में वह उसकी दृष्टि से बिलकुल छिप गया । वैसे भी कब उसने उसे देखा ही था ? चलते समय उसकी गर्दन सदा एक ओर झुकी रहती । जैसे कोई भार अपने कन्धों पर रखे वह चला करती । वह भार सभी से छिपाये हुए किसी रहस्य का भार था—उसे सदा ऐसा अनुभव होता । इसीलिए कई बार वह चलते चलते दोनों हाथों से उसके कन्धों को झकझोर डालता । तब, भीड़ के बीच उसके वस्त्र खिसक गये हों, ऐसे वह अपने अंगों को ढकने लगती । इस पर वह और भी चिढ़ जाता ।

वह आगे बढ़ती ही गई । उसका मन हुआ : मैं इसे पुकार कर ठहरा लूं ? किन्तु इतनी भीड़ के सामने उसे आवाज़ देना ठीक नहीं लगा । वह उसके पीछे पीछे चलने लगा । एक दूसरे को सीधी दृष्टि से न देखने पर भी एक ही दिशा में साथ साथ चलने मात्र से ही दोनों के बीच एक सम्बन्ध-सूत्र स्थापित होगया । वह सूत्र उसे पकड़कर खींचने लगा । उस सूत्र के स्पन्दन में उसे आगे चलने वाले के मन की गति का अनुभव होने लगा । इस निकटता को झेलने की उसमें हिम्मत नहीं थी, अस्तु वह रुक गया । भीड़ के बीच से उसका चेहरा बीच बीच में तैरता हुआ दिखाई दिया । वह काफी दूर होगई, तब उसने फिर से चलना आरम्भा । वे दोनों जब साथ साथ चल रहे होते तो वह सदैव ही किसी न किसी प्रकार सदैव ही पीछे हो जाया करती । वह कभी अधिक न बोलती । बार बार वह उसे हाथ पकड़ कर आगे खींचता । ('तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है न ? जैसे मैं तुम्हें छोड़कर कहीं चली जाऊंगी ।' 'हाँ, मन होता है कि कोई मन्त्र फूंककर मैं तुझे तावीज में बन्द कर लूं या फिर बीज की तरह अपने मन में गाड़ लूं ।') इस समय भी हाथ खींच कर अपने पास कर लेने को उसका मन हो आया । उसी उत्तेजना से भरा वह अनजाने ही तेज़ी से आगे बढ़ा । अब उन दोनों के बीच अधिक लोग नहीं थे । वह उसे पूरी तरह देख सकता था । उसके पैर, हाथ, कन्धे, गर्दन, सिर—इन सबको अपनी इच्छानुसार, अपने संकेतों पर गति करने देने का उसका मन हुआ । उसके ओठों पर, उसी की पसन्द के शब्द उभरें, उसके श्वासों की डोरी भी

उसी के हाथ में रहे, उसकी पलकें उसी की इच्छा से मुंदें, खुलें—इस विचार से उसमें उत्साह भर आया। अग्नि-ज्वाल की तरह लपककर वह उसे घेर ले—इसके अतिरिक्त अन्य किसी आलिंगन में समा सके, ऐसी वह न थी। ('तुझे जब आलिंगन में जकड़ता हूँ तो लगता है कि किसी तीसरे की जगह तू बीच में खाली रख लेती है।' 'मुझमें तो दसियों स्त्रियाँ छिपी पड़ी हैं, तुम उन सभी को एक साथ जकड़ लो न।') उसके ओठों पर शब्द जल उठे अग्नि ! अग्नि ! किन्तु वह अग्नि लाऊँ कहाँ से ? शताब्दियों के जीर्ण पुञ्ज को जलाकर ! उसके मौन को अपने रोष की चकमक के साथ घिस कर !

अब वह लगभग उसकी बगल में आ पहुँचा। उसकी गर्दन की रोमावल पर हाथ फेरने का मन हो आया। अपने हाथों के नीचे उसके कन्धों की गोलाई को अनुभवने का उसका मन हुआ। मन हुआ, अपने हाथ की जकड़ को इतना मज़बूत कर दे, कि उसकी साँस रुंध जाय, कि उस जकड़ से वह उसे गुंगला दे। वह उसके हाथ के स्पर्श-मात्र से ही चौंक उठती थी। उसकी आँखों में भयभीत विवशता कौंध उठती। इसी से वह मानो स्वयं ही परे होकर दूर छिटक जाता और अन्दर ही अन्दर खीझ उठता। (मेरे स्पर्श मात्र से ही तू ऐसे क्यों भागने लगती है; मैं क्या कोई राक्षस हूँ ?' 'पता नहीं,यह स्पर्श जैसे तुम्हारा नहीं लगता। मेरे अनजाने तुम में कोई छुपा बैठा है ! मैं ज़रा-सी असावधान होती हूँ, कि वह तुरत मुझे मार डालना चाहता है, इसीलिए मैं चौंक पड़ती हूँ।')

उसने अपने हाथ कोट की जेबों में ठूंस लिये। हल्के पैरों, ज़रा भी आवाज़ किये बिना, वह उसके पीछे पीछे चलने लगा। उसका मन उसके पैरों की अपेक्षा आगे दौड़ पड़ा। यह अब घर जाएगी ! दिन की डाक, नींबू का शर्बत, पैरों के स्लीपर, इसके कमरे में वह जिस कुर्सी पर बैठता था, सब कुछ पासवाली तिपाई पर रख देगी ! घर में ये सब वस्तुएँ उसकी प्रतीक्षा करेंगी, किन्तु वह स्वयं कभी उसकी प्रतीक्षा में देहरी पर खड़ी नहीं होगी। घर में उसके अस्तित्व की प्रतीक कोई भी वस्तु नहीं होगी। नीचे झुकी दर्पण में देखती वह माथे पर बिन्दी लगाती हो, या नहा कर भीगे बाल सुखाते हुए बैठी हो, कि कन्धे पर से सरकते आँचल को ठीक करती हो—ऐसी किसी साधारण स्थिति में उसने इसे कभी देखा न था। अपना आधा भाग कौन जाने वह किसी अन्य ही जन्म में छोड़ आई थी ? मृत्यु के अतिरिक्त किसी के पास उसकी चाबी नहीं थी।

मृत्यु·······जले हुए कागज़ का कोई भी अक्षर नहीं पढ़ा जा सकता। वह अप्राप्य थी—इसकी उसे इतनी पीड़ा नहीं। इससे उसके अहम् का हनन होता था, यह सच है, किन्तु इससे अधिक तो उसकी वह अप्राप्यता मानो सदैव उसी में छिपे बैठे, किसी को बार बार गुप्त संकेतों से बुलाती रहती थी। उसका वह तर्जनी-संकेत उसे कभी चैन नहीं लेने देता। स्वयं तो वह जिसे चाहती थी, उसका वह स्वयं मात्र

आश्रय-स्थल ही था। यदि वह इस तर्जनी-संकेत को बन्द कर सके, तो स्वयं में छिप कर बैठा वह दूसरा स्वयंमेव ही बाहर निकल जाय! फिर उसके नेत्रों के सम्मुख जैसे कुछ कौंध गया। मृत्यु! 'मेरी तरफ ऐसे क्यों ताक रहे हो?' 'यहाँ मेरे पास आ।' 'किन्तु ऐसे क्यों खींच रहे हो?' 'देखी अपने गले की यह शिरा?' 'अरे रे, दर्द होता है। क्या कर रहे हो? मेरी साँस घुट रही है। देखो तो……' उसकी फटी फटी आँखें उसे नये संकेत से बुला रही थीं। व आो, और आगे बढ़ता जा रहा था। फिर भी वह अपने आप से ज़रा भी दूर नहीं जा पा रहा था। 'अब जो यह मिले तो गला घोटकर मार ही डालूँ।') वह बड़बड़ाया : मृत्यु! उसके सामने कोई नहीं था। उस निर्जन मार्ग पर वह अकेला दिखाई दे रहा था—अपने ही भूत के साथ!

●●●

सम्भ्रान्त-असम्भ्रान्त

चुन्नीलाल मडिया

पलक झपकते ही यह घटना हो गई।

एयरोड्राम से उड़ कर विमान ने पूरी गति पकड़ ली थी! हवा में तैरते रूई के गालों जैसे बादलों को पार कर वह ग्यारह हज़ार फुट की ऊँचाई पर निरभ्र आकाश में यह आधुनिक उड़नखटोला मुक्त हो आगे बढ़ता जा रहा था।

इतनी ऊँचाई से धरा के लघु रूप को प्रवासी प्रफुल्ल हो देख रहे थे। धरा पर ग़लीचों सी बिछी वनराजि, चारों ओर खड़े छोटी छोटी गोटियों से प्रतीत होते पर्वत, पानी की छोटी छोटी धाराओं-सी प्रतीत होती बड़ी बड़ी नदियाँ, गढ़ों जैसे दीखते बड़े बड़े जलाशय, और इन सबके साथ दूर दूर विस्तरित क्षितिज ··· सृष्टि का क्षण क्षण परिवर्तित होता रूप देख देखकर विमान के यात्री रोमांचित हो रहे थे।

यात्रियों में भी काफ़ी वैविध्य था। देश-देश के व्यक्ति इस विमान में एक साथ बैठे थे, मानो कोई छोटी-मोटी अन्तर्राष्ट्रीय सभा कुछ घंटों के लिए यहाँ बैठ गई है। एक एंग्लो-

इण्डियन महिला के निकट ही एक हृष्ट-पुष्ट अरबी बैठा था और इस हवाई यात्रा में अपनी तस्बीह फेर रहा था। भारत के विख्यात व्यावसायिक गयाप्रसाद सपरिवार भ्रमण के लिए निकले थे। उनकी इच्छा इस यात्रा में पूरा विमान अपने परिवार के लिए सुरक्षित करवाने की थी, किन्तु वैसा सम्भव नहीं हो सका। अस्तु उन्हें ऐसे वैसे लोगों के साथ सफर करना पड़ रहा था। इस यात्रा में उनके वैशिष्ट्य और व्यक्तित्व का सामान्यीकरण हो गया था, इसका अफ़सोस गयाप्रसादजी के चेहरे पर स्पष्ट परिलक्षित हो रहा था।

इसी विमान में दो देशों के राजदूत बैठे थे, एक अमेरीकन संवाददाता था, अध्ययन के लिए विदेश जा रहे विद्यार्थी थे, और सिने संसार की ख्याति-प्राप्त अभिनेत्री मुश्तरी थी और एक अंग्रेज़ सेल्समैन भी था।

विमान अपनी पूरी रफ्तार से आकाश मार्ग पर बढा जा रहा था। अभिनेत्री मुश्तरी सारे प्रवासियों की दृष्टि का लक्ष्य बनी हुई थी। गयाप्रसाद की आँखें बार बार इस 'गायिका' की ओर जा रही थी। ऐरोड्रम पर जब सारे यात्री जल्दी जल्दी में जहाँ तहाँ बैठने लगे तो गयाप्रसाद का युवा पुत्र स्वरूप अनजाने ही इस गायिका की बगल में बैठ गया। यह देख उन पर मानो उल्कापात हो गया। उस अवांछित स्थान से उठाकर जब उन्होंने अपने पुत्र को दूसरे स्थान पर बैठाया, तभी उन्हें चैन मिला।
इस प्रकार, सभी व्यक्ति भिन्न-भिन्न दृष्टियों से मुश्तरी को देख रहे थे।

विमान आगे बढ़ता जा रहा था। प्रसन्न-वदना होस्टेस विमान के इस छोर से उस छोर तक घूम-घूम कर यात्रियों का स्वागत-सत्कार कर रही थी अभी वह चाय, कॉफ़ी सर्व करके गयी थी। जिन्हें प्रकृति निरीक्षण में रुचि नही थी, उन्हें होस्टेस अखबार तथा अन्य पत्र-पत्रिका दे रही थी। इतनी ऊंचाई पर सर्दी सहन न कर सकने वाले कमसिन लोगों के लिए वह कम्बल आदि की भी व्यवस्था कर रही थी। कण्व ऋषि के आश्रम की हरिणी-सी वह चंचला इधर उधर घूमते हुए वातावरण में एक प्रकार की नज़ाकत भर रही थी।

होस्टेस का आवागमन पाइलट की केबिन में बढ़ने लगा, तो सभी को आश्चर्य हुआ। कुछ देर बाद, जब वह केबिन में से बाहर निकली, तो उसके चेहरे की मुस्कुराहट गायब हो चुकी थी! उसके ओठ यात्रियों को कोई गम्भीर सूचना देने की उत्सुकता के कारण फड़क रहे थे। प्रयत्नपूर्वक उस उत्सुकता को दबाकर वह अपने नियत स्थान पर जा बैठी।

फिर केबिन का द्वार खुला। और टेलीग्राफ ऑपरेटर ने गर्दन बाहर निकाली। उसने कानों पर रिसीवर पहन रखा था। वह भी मानो कुछ कहने को उत्सुक था, किन्तु मौन संकेत से होस्टेस को अन्दर बुला कर उसने द्वार बन्द कर लिया।

यात्री कुछ न समझ कर आश्चर्य करने लगे ।

विमान इस समय पर्वतीय प्रदेश के ऊपर उड़ रहा था । हवा ज़ोरों से चल रही थी । लगा कि पाइलट की केबिन में कुछ उखाड़ पछाड़ मची है । केबिन का द्वार बार-बार खुल-बंद हो रहा था । सभी चिन्तित हो दौड़-भाग रहे थे ।

क्या हो गया है, या होने वाला है—यात्रियों को यह प्रश्न व्याकुल किये डाल रहा था । अब केबिन के द्वार पर लाल रोशनी चमकी और उसके बीच शब्द उभरे—Fasten the belts ! कमर पट्टे बाँध लो ।

क्यों ? अभी तो ऐरोड्राम तक पहुँचने में कम से कम एक डेढ़ घंटे की देर है, अभी से कमर में पट्टे क्यों बँधवा रहे हैं ? क्या किसी दुर्घटना की आशंका है ? बीच ही में उतरना पड़ेगा ?

यात्रियों में घुस-पुस शुरू हुई । इस आकस्मिक पड़ाव के कारणों की अटकलें लगाई जाने लगीं । यदि विमान ठीक से नहीं उतर पाया, तो क्या क्या आफतें आ सकती हैं—सभी के सामने उसके कल्पना-चित्र उभरने लगे ।

गयाप्रसाद की घबराहट अन्य सभी यात्रियों से अधिक थी । उन्होंने पत्नी व पुत्र को साहस बँधाना आरम्भ किया और मुश्तरी की ओर अधिक तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगे । इस शंकालु व्यापारी को दृढ़ विश्वास था कि इस प्रकोप की कारण मुश्तरी ही है । इस पापिष्ठा के पाप अवश्य ही आज सारे यात्रियों को ले डूबेंगे । उनकी मान्यता थी कि गाने-बजाने का कार्य पाप-कर्म ही है और वह भी सिनेमा-क्षेत्र में—कुकर्मों के कीचड़ में सनने से कम नहीं है । इस समय सेठजी भावी विपत्ति की अपेक्षा इस अभिनेत्री को देखकर ही अधिक कुनमुना रहे थे ।

बेतरह घबराई हुई इधर-उधर दौड़ती होस्टेस से यात्री मात्र इतना ही जान सके कि विमान का इंजिन खराब हो गया है, लौटना सम्भव नहीं है, अस्तु रास्ते में ही उतरना पड़ेगा ।

मुश्तरी के प्रति गयाप्रसाद का रोष बढ़ता ही जा रहा था । इस बाज़ारू औरत को लोग सुन्दरी मानते हैं । सारा देश इसके रूप के पीछे पागल है । ये सारे अखबार वाले भी अंधे ही हैं क्या ? ऐसी कुलटा को कला की देवी कहते ज़रा भी संकोच नहीं होता ? ज़रा शर्म नहीं आती ? पापिष्ठा के कारण यह सारा विमान चूर होकर रहेगा ।

एकाएक गयाप्रसाद की विचार-शृंखला टूटी । धीरे धीरे पृथ्वी पर उतर रहे विमान की गति एकदम तेज़ हो गई । और फिर वह सन्तुलन ही खो बैठा । वह उलटता-पलटता तेज़ी से नीचे उतरने लगा और यात्रियों के पेट में गड़बड़ होने लगी ।

झटका लगा· और चारों ओर से एकाएक ज़ोर की चीखें-उठने लगीं ।

भयभीत यात्रियों की आँखों के सामने मौत मंडराने लगी। अब भी विमान आठेक हज़ार फ़ीट की ऊँचाई पर था। वहाँ से गिर पड़े तो किसी की हड्डियाँ भी न मिलें।

पाइलट की केबिन खोल दी गयी थी, संदेश-वाहक व्याकुल हो ऐरोड्रम पर संदेश भिजवा रहे थे।

गयाप्रसाद ने अब मुश्तरी की जगह भगवान का नाम रटना आरम्भ किया। पत्नी और पुत्र को भी उसने यही सम्मति दी। असहाय हो यह धनपति अब इस विपत्ति से उबरने के लिए बड़ी बड़ी मानताएँ मान रहा था।

यदि इस आपत्ति से बचकर जीवित रह गये, तो इस उजाड़, अनजान प्रदेश से अपने स्नेही सम्बन्धियों के पास संदेश कैसे भिजवाया जा सकता है—यह चिंता सभी को सता रही थी। मात्र मुश्तरी इस प्रकार की किसी भी चिंता से मुक्त थी। इस संसार में नितान्त एकाकी मुश्तरी का कोई भी सम्बन्धी नहीं था। जीवन में उसने कभी नहीं जाना कि उसके माता पिता कौन हैं? होश सम्भालने के बाद वह मात्र इतना जान सकी थी कि किसी गायिका के गर्भ से वह जन्मी है, किन्तु वह माता कौन थी, उसने नहीं जाना। वह स्वयं किन्ही गाने बजाने वालों के यहाँ पली-बढ़ी थी। कई बार बालिका मुश्तरी ने जानना चाहा कि मेरे माता पिता कौन हैं? किन्तु कभी संतोष-जनक उत्तर नहीं पा सकी। फिर तो अपने मधुर कंठ और अतुल सौन्दर्य के कारण उसे सिनेमाओं में एक के बाद एक भूमिकाएँ मिलने लगीं। और मुश्तरी देश भर में विख्यात हो गई।

विपत्ति के इन क्षणों में मुश्तरी द्विगुणित पीड़ा अनुभव कर रही थी। सामने खड़ी मौत के कारण तो वह दु:खी थी ही, उसके अतिरिक्त इन अन्तिम क्षणों में अब उसने पहली बार स्वयं को अनाथ अनुभव किया। अब तक तो सिने-संसार की चकाचौंध ने उसके शून्य को भर रखा था, किन्तु अब वह सब जैसे काटने लगा।

विमान अधिकाधिक डगमगाने लगा कि अब उलटा-तब उलटा। यात्री भय के मारे सिहर उठे। कई तो मस्तिष्क का सन्तुलन भी खो बैठे।

अन्ततः इंजिन ने काम करना बन्द कर दिया और विमान सैंकड़ों फीट की ऊँचाई से तेज़ी से नीचे गिरते हुए पहाड़ी भूमि से टकरा गया। उस प्रचण्ड धमाके में यात्रियों की मरणान्तक चीखें भी डूब गईं।

पलक झपकते ही यह सब हो गया। फिर तो उस यातना को देखने, अनुभव करने कोई जीवित ही नहीं रहा। विमान के गिरते ही पैट्रोल जल उठा और आग ने पूरे विमान को लील लिया।

घाटी में स्थित खेतों में काम करते हुए ग्रामीण किसान हाथों से आँखों पर छाया किये हुए उड़न-खटोले को उड़ते देख रहे थे। निकट की पहाड़ी पर उसे टूट कर गिरते देखें,

सब दुर्घटना-स्थल की ओर दौड़े । इन्ही ने निकटस्थ रेलवे स्टेशन पर यह समाचार पहुँचाया । तुरत तार खड़खड़ाने लगे । कुछ ही क्षणों में उस दुर्घटना की सूचना चारों ओर फैल गयी ।

इस दुर्घटना की खबर ने सारी दुनिया में खलबली मचा दी । दुर्घटना की सूचना मिलने पर विमान कम्पनी ने यात्रियों के घरों तक सन्देश भिजवा दिये । कई विमान दुर्घटना-स्थल की खोज में चल पड़े ।

छः घण्टे !

पूरे छः घण्टे बाद विमान उस दुर्घटना-स्थल को खोज सके । रेलवे मार्ग से भी सहायता पहुँच गई । छः घण्टे बाद भी विमान के भस्मीभूत अवशेष में जहाँ तहाँ लपटें उठ रही थीं । देखते देखते अनेकों सहायक टुकड़ियाँ आ पहुँची । अखबारों में समाचार छप गये । प्रवासियों के स्नेही-सम्बन्धी भी खबर मिलते ही उस ओर चल पड़े ।

मृत प्रवासियों की सूचि प्रकाशित हुई । उसमें भी गयाप्रसाद जी की ही अधिकतम चर्चा की गयी और उसी समाचार के नीचे लिखा था—इस विमान में प्रसिद्ध अभिनेत्री मुश्तरी भी यात्रा कर रही थी ! यह नोट मुख्यत: सिनेमा रसिको के ही लिए प्रकाशित किया गया था, किन्तु शेष के मात्र नाम दे दिये गये थे ! किन्तु हर अखबार में मुखपृष्ठ पर बड़े बड़े अक्षरों में ऊपर ही छपा था—'सेठ गयाप्रसादजी का दु:खद आकस्मिक निधन ।' कई अखबारों ने तो सूचना के चारों ओर शोक सूचक काली रेखाएँ भी खींच दीं । कुछ अधिक उत्साही अखबारों ने उनके एक चित्र के नीचे उनका संक्षिप्त परिचय भी उनकी उदार-सेवाओं आदि के विस्तृत वर्णन के साथ प्रकाशित किया ।

गयाप्रसाद के अपने शहर विक्रमनगर में तो समाचार मिलते ही हड़ताल कर दी गई । शाम को शोक सभा की हलचलें शुरू हो गईं । शोक सभा की अध्यक्षता शहर के अध्यक्ष करने वाले थे । शहर के प्रतिष्ठित नागरिक स्व० गयाप्रसाद को श्रद्धाञ्जलि देने के लिए भाषण की तैयारियाँ कर रहे थे ।

इस आकस्मिक दुर्घटना के कारण गयप्रसाद के परिवार पर गाज टूट पड़ी थी और चारों ओर से उनके कुटुम्बियों पर शोक-संदेशों की वर्षा हो रही थी । उनकी देशव्यापी ख्याति के कारण राष्ट्र के उच्चाधिकारियों ने भी श्रद्धाञ्जलियाँ भेजीं । फिर तो जनता के लिए यह मानना आवश्यक हो गया कि गयाप्रसाद वस्तुत: महान व्यक्ति थे और उन्हें अभी मरना नहीं था ।

गयाप्रसाद जैसे धनिक के साथ ऐसी दुर्घटना हो ही कैसे सकती है ? ऐसे व्यक्ति मरें ही क्यों ? अन्य इक्कीस यात्री मर जायें—यह बात समझ में आती है ...... किन्तु गयाप्रसाद जी ? राष्ट्र के अग्रणी उद्योगपति ?

नहीं नहीं । प्रकृति की निष्ठुरता का सामना करना ही पड़ेगा । भले ही उनकी मृत्यु अति साधारण व्यक्तियों के बीच हुई, किन्तु उनकी मरणोत्तर क्रियाएँ तो इन ऐरों गैरों से विशिष्ट ही होनी चाहिए । वे उन इक्कीस जैसे नहीं थे ।

अब इस सम्मान की योजनाओं पर विचार किया जाने लगा । बड़े बड़े निर्णय लिये गये । दुर्घटना-स्थल पर एक विशेष यान भेजा गया । साथ ही शहर के प्रतिष्ठित डॉक्टर गये । मयाप्रसाद के शव को लाकर शहर में भव्य श्मशान यात्रा करवाई जाएगी । शहर के किन किन भागों से यात्रा की जाएगी,इसकी रूपरेखा भी तैयार हो गयी । अखबारों को खूब मसाला मिलता रहा । हर पृष्ठ पर प्रसादजी के अतिरिक्त कोई समाचार दिखाई ही नहीं देता था । बार बार उनके चित्र तथा उन पर अन्य समाचारों के साथ सम्पादकीय लिखे जा रहे थे ।

शहर भर में तरह तरह की अफ़वाहें उड़ने लगीं । कोई कहता, विमान में गये डॉक्टर अपनी कुशलता के बल पर प्रसाद जी को जीवित कर देंगे । कोई कहता, कि स्वयं नगर-अध्यक्ष शव को लाने के लिए दुर्घटना-स्थल पर जाने वाले हैं ।

दुर्घटना-स्थल पर उदासी छाई थी । आग बुझा दी गई थी और अवशेषों के बीच मानव-देहों की तलाश की जा रही थी । कई यात्रियों के सगे सम्बन्धी आ पहुँचे थे । मात्र मुश्तरी के लिए कोई नहीं आया था । और दूसरा व्यक्ति, जिसका अपना कहलाने वाला कोई न था, वह था पाइलट !

पास ही मैदान में प्रसादजी के लिए आया विमान प्रतीक्षा में खड़ा था ।

किन्तु अफ़सोस ! विमान के अवशेषों में से कुछ शव मिले अवश्य, किन्तु एक को भी पहचाना न जा सका । उन्हें पहचानने योग्य कोई भी चिन्ह शेष नहीं रहा था ।
सभी लौट चले ।

प्रसादजी का शव लेने के लिए गये हुए डॉक्टर भी निराश हो लौट पड़े । उनसे भी अधिक निराश हुए विक्रमनगर के नागरिक । घण्टों से पुष्पहार लिये लोगों की भीड़ विमान की प्रतीक्षा में खड़ी थी । अन्ततः विमान आया, किन्तु उसमें से मात्र डॉक्टर ही उतरे ।
दुर्घटना-स्थल पर सारे शवों को एक साथ ही चिताग्नि की भेंट दे दिया गया और अग्नि की लपटें बाइसों व्यक्तियों को लीलती हुई आकाश को छूने लगीं ।

●●●

अनु० म० मो०

पुनरागमन

कुन्दनिका कापड़िया

ट्रेन में बैठ कर उसने चारों ओर दृष्टि घुमाई। सभी कुछ को स्पष्ट कर देने के लिए ही वह जा रहा था, किन्तु उस क्षण के आने से पूर्व तक कोई उसे पहचान न ले, यह भय उसे खा रहा था। बेचैनी से उसने अपनी आँखों पर अंगुलियाँ फेरीं। चेहरा अवश्य ही काफ़ी बदल जाना चाहिए। बीस वर्ष की आयु में जब वह अपना घर और अपना गाँव छोड़ कर भागा था, तब उसमें मात्र कुतुहल और भय था। दस वर्ष तक वह जिस मानसिक पीड़ा को असह्य होने के उपरान्त भी सहता रहा था, उसके अन्तर में जो द्वन्द्व सतत उद्वेलित होता रहा था, उस सबकी छाप उसके चेहरे पर अंकित थी। मन की जिस पीड़ा को वह ओठ सीकर मन में छिपाये रहा था, उस सबकी अमिट छाया उसके चेहरे पर वर्तमान थी। वह कुछ भी भूला नहीं था। एक वेदना के पार्श्व में दूसरी वेदना आ बैठी थी।

किन्तु मनुष्य की आकृति पूर्णतः तो बदल नहीं सकती ? उसने सोचा और एक म्लान हँसी हँस पड़ा। वह सभी कुछ स्वीकारने, अपनी भूल, अपने पाप का प्रायश्चित करने जा रहा था। फिर अब डर कैसा ? वह अपने आप से ही कहता रहा—अपने सुख, अपनी प्रतिष्ठा, अपने जीवन के भी मूल्य पर, सत्य को एक बार प्रकट होना ही चाहिए। सत्य की उस महा अग्नि में एक बार सभी कुछ को होम होना ही चाहिए। उसका अपराध भी कोई छोटा अपराध नहीं था। जिसे उसने अपने सारे उद्दण्ड आवेग, मधुरतम स्वप्न सौंप कर प्यार किया था और जिस किशोरी ने उस पर विश्वास करके अपनी अंतरतम् सृष्टि के द्वार उसके सम्मुख खोल दिये थे, उसे ही उसने विडम्बना में डाल कर धोखा दिया था। उसके निर्मल प्यार के बदले उसे कलंकित करके, कुटुम्ब और समाज के तिरस्कार के बीच एकाकी छोड़कर वह कायर की तरह भाग छूटा था।
और अब, दस लम्बे वर्षों तक उस अपराध का बोझ ढोते-ढोते वह स्वयं दुःखी हो चला था। अब उसे लगा था कि समाज के सामने उत्तम आचरणी बनकर रहने में ही सारा सुख नहीं है। इससे भी अतिरिक्त कुछ की उसे आवश्यकता थी। सुख के कंकण भरे दो हाथों की झंकार जीवन में न मिले तो न सही, किंतु इस पीड़ा के बीच भी वह सत्य का दीप जला सके, प्रलोभनों के ढेर के बीच भी उसकी ज्योति को अखण्ड बना सके, तो वही पर्याप्त होगी। फिर सुख की भी परवाह नहीं थी। सत्य का यह प्रकाश उसके दुःख को भी प्रकाशवान् कर देगा।

इन दस वर्षों में उसे सुरमा की कोई सूचना नहीं मिली थी। वह जीवित है, या मर गयी, या कि उसने आत्म-हत्या कर ली, उसका बच्चा जीवित है या नहीं, जीवित है तो उसका क्या हुआ, माँ-बाप ने उसे लांछित-प्रताड़ित किया या कि उसका विवाह कर दिया, उसे कुछ भी ज्ञात न था। किन्तु वह कहीं भी जीवित होगी तो उसके पैरों में गिर कर, क्षमा मांग कर, समाज के सम्मुख अपना पाप स्वीकार कर उसके साथ फिर से नया जीवन प्रारम्भने का निश्चय लेकर वह आया था। उसका विवाह हो गया हो, तो भी एकान्त में उससे क्षमा मांगने की उसकी इच्छा थी। बच्चा यदि किसी अनाथालय में या कि सुरमा के माता-पिता के पास हो तो उसे अपने साथ रखने की उसकी इच्छा थी। बिना किसी आवरण के वह अपने सारे अपराध को स्वीकारने के लिए कटि-बद्ध था।
स्टेशन आते ही वह उतर पड़ा। यह उसका अपना गाँव था। दस वर्षों में विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ था। बैग लेकर वह जल्दी जल्दी चल पड़ा। अंधेरा हो चला था, अस्तु उसे कुछ राहत मिली। स्वयं प्रकट होने से पूर्व ही कोई उसे पहचान ले, यह वह नहीं चाहता था। रास्ते उसे याद थे। बीस वर्ष जिस गाँव में रहा था, वहाँ की गली-गली उसकी परिचित थी। माता-पिता के पास न जाकर मौसेरी बहन के घर जाना उसे अधिक उचित लगा।

घर पहुँचकर द्वार खटखटाते समय अनेक आशंकाओं से उसका शरीर काँप उठा।

उसकी बहन ने ही द्वार खोला। दीपक का प्रकाश ज़रा-सा उसके चेहरे पर पड़ा। बहन ने पूछा—किससे काम है ? गले में कुछ अटकता-सा प्रतीत हुआ। उसे भीतर निगल कर वह बोला—इन्द्रा। मैं महेन्द्र हूँ।

आश्चर्य और आनन्द से भर कर इन्द्रा ने महेन्द्र का हाथ पकड़ लिया—महेन्द्र तू आ गया! इतने साल बाद ? उसका हाथ पकड़े-पकड़े वह उसे अन्दर ले गई और हर्ष से भर कर चिल्लाई—अरे छोकरों जाग रहे हो न ? देखो तुम्हारा खोया हुआ मामा आ गया है।

देर तक बहन-बहनोई उससे बातें करते रहे। एक के बाद एक समाचार बहन बताती रही। माता-पिता यह गाँव छोड़ कर अपने देश जा बसे थे। छोटा भाई वकालात करने लगा था। बड़ी भाभी की मृत्यु दो वर्ष पूर्व हो गई थी ? फिर अन्य सम्बन्धियों और पड़ोसियों की बातें, बहनोई की नौकरी, बहन के बच्चों की बातें, महेन्द्र के दस वर्षों का इतिहास····कितनी ही बातें हुईं,किंतु मूल विषय पर अभी भी कोई बात नहीं हो सकी थी। महेन्द्र मन ही मन व्याकुल हो उठा। दिल धड़क उठा। किसी प्रकार वह अपने स्वर को जैसे-तैसे संयत करके बोला—और बहन ! वे लोग थे न, उनका क्या हुआ ?

—कौन लोग ? बहन ने उत्सुकता से उसकी ओर देखा। बहन को मालूम है क्या ? नहीं है मालूम ? महेन्द्र का लगा, उसकी नसों में बहते रक्त प्रवाह में अचानक तूफ़ान आ गया है। उस तूफ़ान में जैसे वह स्वयं खिंच चला—वे लोग····भुवन काका और उनकी लड़की थी न ·· वह ·· सुरमा········

तिरस्कार की रेखाओं ने बहन के चेहरे को विकृत कर दिया !—तू भाग गया था, तभी की यह बात है। उसने तो घर का नाम ही डुबो दिया। तेरे जाने के बाद ही सब कुछ हुआ, सो तुझे तो क्या मालूम ? ऐसा था कि ·· उसका किसी से सम्बन्ध था। उसे दिन रह गये थे····तीनेक महीने····तब घर वालों को पता चला ·· ····

महेन्द्र ने अपने गले से निकलती क्षीण आवाज़ को सुना : फिर ?

बहन पुरानी स्मृतियों से उत्तेजित हो गई थी। महेन्द्र के स्वर-परिवर्त्तन की ओर उसका ध्यान नहीं गया। कुल कलंकिनी ! फिर उसने नाम तक नहीं बताया कि वह कौन था। कहती थी, उस अकेले का ही दोष थोड़े है। मैंने उसे पहचानने में भूल की, यह शायद मेरा ही दोष है। कुछ दवा करने को भी मना कर दिया। माँ-बाप ने कहीं बाहर जाकर सब कुछ ठीक करने को कहा, किंतु इसके लिए भी वह ना करती रही। एक बात कहनी पड़ेगी, लड़की थी हिम्मत वाली। तूने तो उसे देखा था। कैसी थी एकदम दुबली-पतली। मात्र सत्रह वर्ष की। क्या पता उसे किसका बल था।

—फिर ?

—फिर क्या ? गाँव भर को पता चल गया । भुवन काका का घर से बाहर निकलना कठिन हो गया । सभी उन्हें बुरा भला कहने लगे । लड़की के कारण वे बड़े दुखी हो गये और चार महीने होते होते वह एक रात घर छोड़ कर कहीं चली गई । उसके बाद उसकी कोई खबर नहीं मिली । भुवन काका भी गाँव छोड़कर चले गये । सुना है कि सूरत में हैं ।

सर्दी की आधी रात । स्नेही बहन-बहनोई के साथ अतीत की बातें करते हुए महेन्द्र पसीने से भीग उठा । उसने स्वेटर उतार दिया । क़मीज़ के बटन खोलता हुआ वह बहन-बहनोई के सामने खिसियानी-सी हँसी हँसा—गर्मी लग रही है । बारह बजने वाले हैं । तुम लोग सो जाओ । मैं ज़रा बाहर चक्कर लगा आऊँ । दस वर्ष बाद ज़रा गाँव की शक्ल तो देखूँ ....

—अब, आधी रात में ? बहनोई ने आश्चर्य से पूछा । उन्हें उत्तर दिये बिना ही महेन्द्र चप्पल पहन कर बाहर निकल गया । उसके हृदय में उथल-पुथल मची थी । वर्षों से बंद पड़े घर की खिड़कियों को एक झौंके में खोल कर जैसे हवा का तेज़ झोंका अन्दर घुस आया हो । वह चलता जा रहा था । किन्तु अचानक ही सब कुछ अपरिचित हो उठा । गाँव की गलियां उसकी जानी-पहचानी थीं, किंतु उनसे उसका कोई सम्बन्ध न रहा । एक दुर्वह मनस्ताप ने घनीभूत होकर शिला की तरह उसके हृदय को कुचलना आरम्भ कर दिया ।

घूमते-घूमते वह इस घर के पास आ गया....... भुवन काका का घर ...... द्वार बन्द था । अन्दर जाने कितने संस्मरण दफ़ने पड़े थे........सुरमा की वेदना...... माता पिता का तिरस्कार ......किन्तु इन सबसे ऊपर ....उन्माद के किसी क्षण में उसने जो अकरणीय कर डाला था...... उसकी ग्लानि उसे बींधने लगी !

.... तो सुरमा ने उसका नाम नहीं बताया ? जिसने उसे इतना बड़ा धोखा दिया, उसी को उसने लज्जा से उबार लिया । असीम लज्जा और कृतज्ञता से उसका मन भीग उठा । लगा—ऐसा प्यार केवल स्त्री ही कर सकती है...... ...इसीलिए शायद ईश्वर ने उसे माँ भी बनाया होगा !

देर तक वह घर की दीवाल पर सिर टेके खड़ा रहा ? बन्द आँखों से उसने सुरमा को देखा । निष्कलंक शुचिता की मूर्ति...... सरल, सुभग बालिका ... अन्तर की जाने किस पूर्णता के कारण वह इतनी अधिक सुन्दर लगती थी .. वह प्यार की ही पूर्णता होगी, या फिर क्षमा की पूर्णता ! अन्धेरी रात में घर त्याग कर जाते समय उसने जहाँ अन्तिम बार पैर रखा होगा, अनुमान से महेन्द्र ने वहाँ हाथ छुआया ! धूल में उसका एक आँसू टपक गया । उसने निश्चय किया—वह जहाँ भी होगी, उसे खोज निकालेगा । चाहे वह किसी भी दशा में हो........हीन से हीनतर मार्ग उसे अपनाना पड़ा हो, तो भी उसके पैरों में गिर कर अपने को स्वीकार लेने की प्रार्थना करने का उसने निश्चय किया ।

फिर उसने सुरमा की खोज-खबर आरम्भी। किसी न किसी बहाने गाँव वालों से मिलता और बात बात में पूछ बैठता—फिर उन भुवन काका की सुरमा कहाँ गई ?

अधिकांश लोग तो मुँह सिकोड़ कर कह देते—गई होगी कहीं। जाने दो न ! उसका नाम न लो। उसने तो सारे गाँव का नाम डुबो दिया····कोई कहता— राम कहो, राम ! अब वह जीवित होगी ? किसी नदी-नाले में जा मरी होगी। उस दुष्ट ने उसे ··· ···

महेन्द्र आगे की बात सुनने के लिए रुकता नहीं !

अन्ततः छठे दिन शाम भुवन काका के घर की गली के नाके पर एक मुसलमान मोची की दुकान पर उसे कुछ पता मिला ! जाने से एक दिन पूर्व सुरमा अपनी सोने की दो चूड़ियाँ देकर उससे पैसे लेने आई थी। कह रही थी कि काशी जाएगी !

—काशी में कहाँ ?

—यह तो पता नहीं। मोची ने संक्षेप में उत्तर दिया। महेन्द्र का हृदय डूब गया। इतना बड़ा शहर, काशी। वहाँ, दस वर्ष पूर्व एक युवती गई थी। उसका पता कैसे मिले ? आखिर, सातवें दिन बहन से विदा ले, वह काशी चल पड़ा ! काशी में वह बहुत भटका। धर्मशाला, तीर्थस्थल, मन्दिर, घाट, वैश्याओं के यहाँ।

—दस वर्ष पहले यहाँ एक युवती आई थी—वह उत्साह पूर्वक कहता—गुजराती थी, सुरमा नाम था, दुबली-पतली, गोरी। ढीला-सा जूड़ा बाँधती थी।

लोग उसकी हँसी उड़ाते। कोई सहानुभूति से सुनकर उदास हो उठते ! कहते—ओफ़, दस वर्ष पूर्व······ और फिर गर्दन घुमा कर चल देते।

कई महीनों की खोज-बीन के बाद एक अस्पताल के दस वर्ष पूर्व के रेकर्ड में से यह सूचना मिली—सुरमा—पतिका नाम नहीं, पिता का नाम भुवनलाल, १२ सितम्बर को पुत्र-जन्म। एक प्रौढ़ नर्स ने आगे बताया—मैं जानती हूँ। बहुत अच्छी लड़की थी, छोटी-सी, फूल जैसी। है न ? यहाँ से वह जगन्नाथपुरी गई थी······ बहुत ही अच्छी लड़की थी ·· ···· किसी ने फँसा लिया होगा·······

महेन्द्र उसी रात जगन्नाथपुरी के लिए चल पड़ा। दस दिन की मेहनत के बाद उसने सुरमा का घर खोज निकाला। द्वार पर आवाज़ लगाते समय उसका सारा अस्तित्व काँप उठा सुरमा उसे पहचान लेगी ? दुत्कारेगी ? स्वागत करेगी ?

द्वार खुलने में कुछ देर लगी। वे थोड़े-से क्षण शंकाओं और पीड़ा की असह्यता के कारण अनंत बन गये ! द्वार खुला। वह सामने ही खड़ी थी। महेन्द्र के हृदय के ज्वार के सम्मुख शान्त तट की तरह ····सत्रहवें वर्ष में जैसी थी, उससे कहीं अधिक सत्ताइसवें वर्ष में वह कोमल प्रतीत हो रही थी।

पहचानने का प्रयत्न करते हुए वह कुछ देर उसे देखती रही। फिर उसके चेहरे पर एक स्मिति थिरक उठी—महेन्द्र ! तू ?

उसके स्वर के सहज आनन्द के कारण महेन्द्र के मन पर जमा कई मन का बोझ क्षण भर को जैसे हट गया—अन्दर आ जाऊँ ?

सुरमा ने द्वार से हटकर उसके लिए मार्ग किया। महेन्द्र ने घर में प्रवेश किया। उसने कुछ और ही कल्पना की थी। उसका अनुमान था कि सुरमा किसी गंदी बस्ती में, टूटी फूटी झोंपड़ी में रहती होगी। खूब दुःखी होगी। गरीबी ने उसे दुर्बल और दीन-हीन बना दिया होगा। इतने वर्षों के एकाकीपन और यातनाओं ने उसके मुख पर अपनी अमिट छाप अंकित कर दी होगी।

किन्तु सुरमा पहले की ही तरह स्वस्थ थी। अतीत को उसने दफ़ना दिया था या उसी की अन्धेरी गलियों में होकर वह सूर्य-प्रकाशित मैदान में आ पहुँची थी। अब भी वह पहले की ही तरह दुबली थी, किन्तु आँखों में जीवन की पूर्णता थी। उसका ढीला जूड़ा पहले की अपेक्षा कुछ बड़ा था। द्वार पर टिके हाथ की अंगुलियों में भी कोमलता का वही प्रवाह बह रहा था! उसका घर भी स्वच्छ था। वातावरण में शान्ति के स्वर लहरा रहे थे ······ शान्ति और सहज प्रसन्नता।

महेन्द्र ने सोचा ······ यह सब उसके अन्तर की शान्ति का ही प्रतिबिम्ब है। यह उसी प्रकार जी रही है—शान्तिपूर्वक। फिर उसने क्षण भर को सुरमा के सामने देखा—शर्म से उसका सिर झुक गया।

—सुरमा! रुंधे गले से वह बोला—मुझे क्षमा कर दो! उससे अधिक बोला नहीं गया।

सुरमा हँसी—महेन्द्र! अब मुझे लगता ही नहीं कि तूने मेरा कोई अपराध किया था।—उसके स्वर में स्वाभाविकता और सच्चाई थी!

—मैंने तेरे साथ विश्वासघात किया। तुझे अकेली छोड़कर मैं भाग गया ·······

सुरमा का स्वर वैसा ही शान्त, मधुर था—मुझे भी महेन्द्र, तब कुछ दिन तो लगा कि तूने मुझे धोखा दिया, किन्तु बहुत थोड़े समय के लिए ही। फिर मन को लगा कि धोखा तो तूने अपने आपको ही दिया था। मुझे कुछ कठिनाई पड़ी, यह सच है। लोगों ने मेरा अपमान भी किया। किन्तु क्या सुख और सम्मान ही जीवन में सब कुछ होता है? वह कुछ क्षण चुप रही! फिर बोली—किन्तु महेन्द्र! मुझे तेरे लिए ही दुख होता था। तूने अपने ही प्यार से छल किया ···मन में सोचा करती थी कि तुझे इससे कितनी पीड़ा होती होगी। तू दुखी हो गया होगा। अरसे तक तुझे सान्त्वना देने को मेरा मन तड़पता रहा!

एक विराट ग्लानि ने महेन्द्र को घेर लिया! उसका गला रुंध गया। ······ सुरमा········ सुरमा तभी! किसी ने बाहर से द्वार खटखटाया! महेन्द्र सम्भल गया! सुरमा ने द्वार खोला! नौ-दस वर्ष का एक बालक घर में आया। महेन्द्र का हृदय धक् धक् करने लगा! यही मेरा पुत्र है? ऐसा सुन्दर? ऐसा प्यारा? वह उस ओर से आँख नहीं हटा सका!

बच्चा तुरत सुरमा के गले में झूल गया—माँ, आज तो इतनी भूख लगी है, और·······

सुरमा ने हँस कर कहा—हाँ बेटे! मेहमान को नमस्ते तो कर!

लड़के ने महेन्द्र को नमस्कार किया ! वह सुरमा जैसा ही लगता था। चंचल, किन्तु फिर भी शान्त ! सुरमा ने उसका हाथ पकड़ा—तेरे लिए कब से खाने को निकाल रखा है।—और वह उसे अन्दर ले गयी। महेन्द्र दोनों को अन्दर जाते हुए देखता रहा। कुछ देर पूर्व वे दोनों थे, किन्तु अब उसे लगा कि किसी और ही सृष्टि में उनका निवास है, जहाँ कुछ भी अधूरा नहीं है, इसीलिए सभी कुछ इतना शान्तिमय है। इस सृष्टि के द्वार खुले हैं, किन्तु वह वहाँ प्रवेश करे, ऐसा सम्भव नहीं !

पुत्र को खाना परोस कर तथा महेन्द्र के लिए नाश्ता लेकर सुरमा लौटी। महेन्द्र के सामने बैठ स्नेहपूर्वक बोली—बडा प्यारा लड़का है। मुझे खूब समझता है। हम एक-दूसरे के अच्छे साथी हैं । फिर कुछ हँसकर बोली—यह मेरे साथ आँख-मिचौनी भी खेलता है और सात-ताली खेलने के लिए आंगन में दौड़ता भी खूब है।

महेन्द्र के मन में उसके एकाकीपन की वेदना चीत्कार कर उठी।

अचानक याद आगया हो, ऐसे सुरमा ने पूछा—हाँ, तू यहाँ आया कैसे ? तुझे कैसे पता चला कि मैं यहाँ हूँ ?

अपनी खोज की सारी बात कहने की उसकी इच्छा नहीं हुई। बात को टालते हुए बोला —काशी के एक अस्पताल से पता मिला था। तू अपनी बात कह, क्या कर रही है ? जीवन-यापन कैसे चल रहा है ?

—चित्रकारी करती हूँ। सुरमा ने सहज भाव से कहा—तूने तब मेरे चित्र देखे थे न ? अब तो मैं बहुत अच्छे चित्र बना लेती हूँ। खासकर रसोई में टाँगे जा सकें, ऐसे चित्र। स्त्रियाँ अधिकांश समय रसोई में ही रहती हैं। मेरे मन में आया कि वहाँ उन्हें आनन्द मिले, ऐसा कुछ कर पाऊँ तो कैसा रहे ? विशेषतः फूलों और साग-भाजी के चित्र ही मैं बनाती हूँ। दूसरा विषय मुझे प्रिय है, मां और बच्चे। ये चित्र काफी बिक जाते हैं। आँगन में साग-भाजी उगा रखी हैं, गाय भी पाल रखी है....।

—मुझे लग रहा था कि तू बहुत कष्ट में होगी—महेन्द्र ने लज्जा से भरते हुए कहा।

—किन्तु तू प्रसन्न दीखती है। तुझे मुझ पर क्रोध नहीं आता ? जो कुछ हुआ, उसके बाद तुझे जीवन में इतनी शान्ति और प्रसन्नता कैसे मिली ? सुरमा ने कुछ सोच कर कहा—लगता है, यह सब तभी सम्भव हुआ होगा, जब सभी ने मुझे लांछित-अपमानित किया। तब मैं भी कुछ देर तो टूटने लगी थी। आत्महत्या की भी इच्छा हुई थी। तू इस तरह चला गया सो तेरे प्रति भी मन में कड़वाहट भर आई थी। फिर सोचा—इस सब का कोई उपाय नहीं है। तेरा भाग जाना और सबका तिरस्कार। सोचा—यही सब कुछ नहीं है। इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है। लोग अपना अपमान करें तो क्या है ? ऐसा सोचने पर उनकी बातें मुझे बुरी नहीं लगीं। मेरे अन्दर तेरी पीड़ा और प्यार का अंश था। मैंने उसके लिए जीने का निश्चय किया। इसके जन्म के बाद मन में आया कि जीवन में अधिक से अधिक जो कुछ मिल सकता है, वह मुझे

मिल चुका। बच्चे पर मुझे प्यार था। शायद इसीलिए कि मैं अकेली थी और मात्र वही मेरा साथी था। फिर सब कुछ सरल हो गया। यहाँ तक आने के लिए एक नर्स ने मुझे पैसे दिये। और अब तो तू देख ही रहा है। यह इतना बड़ा हो गया है। अब मात्र इसी के लिए जीवित रहना ही तो कर्त्तव्य नहीं रह गया। हम दोनों एक दूसरे के साथ हिल-मिलकर जीते हैं। इसकी पढ़ाई है, खेल हैं, भविष्य है। मेरे पास मेरे चित्र हैं। मुझे लगता है, मैं पूर्णतः सुखी हूँ।

—तूने इसे क्या बताया ? महेन्द्र ने बरामदे की ओर संकेत करते हुए पूछा, जहाँ सुरमा का पुत्र नाश्ता करने के बाद कोई साहसिक कथा पढ़ रहा था।

सुरमा एक क्षण ठिठकी। फिर धीमे स्वर में बोली—महेन्द्र, तू मुझे क्षमा करना। मैंने इसे कह रखा है कि जन्म से पूर्व ही इसके पिता का अवसान होगया था।

महेन्द्र ने देखा—उस सुन्दर सृष्टि के द्वार उसके लिए बन्द हो गये हैं। एक अकल्प्य एकाकीपन के प्रवाह में उसका हृदय डूबने लगा।

सुरमा ने जल्दी से कहा—तू बुरा न मानना महेन्द्र। मैं अपने पुत्र के मन में तेरे प्रति कोई गन्दी छाप अंकित करना नहीं चाहती थी। यह बड़ा हो और जाने कि तूने ऐसी अवस्था में मुझे त्याग दिया था, तो सम्भव है, इसके मन में तेरे प्रति शत्रुता प्रज्वलित हो उठे। मैं इसके मन को अपने अतीत से मुक्त, स्वच्छ रखना चाहती थी कि जीवन आरम्भ करने पर वह इस संसार को स्नेहपूर्वक स्वीकारे, कि जीवन के प्रति विश्वास से इसका हृदय निर्मल रहे। मुझे विश्वास है कि तू बुरा नहीं मानेगा। और महेन्द्र, तू भी इसका कल्याण तो चाहता ही है।

महेन्द्र उठ खड़ा हुआ। उसे लगा, अब कुछ भी कहने को शेष नहीं रहा। प्रायश्चित की कोई आवश्यकता नहीं रही, क्योंकि वहाँ तो उसके अपराध की स्वीकृति तक नहीं मिली थी। एक असह्य ग्लानि से उसका मन भर उठा। जीवन में कुछ भी करणीय न रह गया। एक उद्देश्यहीनता ने आकर उसके भविष्य पर अर्थहीनता की छाया फैला दी।

—अच्छा तो सुरमा, मैं जाऊँ ? तेरे मन में मेरे प्रति क्रोध नहीं है, उसके लिए मैं तेरा आभार स्वीकार करता हूँ।—भारी कण्ठ से वह बोला।

—महेन्द्र आना। कभी कभी आया करना। तुझे देखकर सुख मिला। स्निग्ध कण्ठ से सुरमा ने कहा।

एक क्षण को सुरमा का हाथ अपने हाथ में लेने की उसकी इच्छा हो आई, किन्तु उसे उसने मन में ही दबा लिया। मुड़कर उसने सुरमा के पैर छू लिये—तू बहुत महान् है सुरमा।—अस्फुट स्वर में वह बुदबुदाया और बाहर निकल गया।

अपराध का प्रायश्चित कर, सत्य का एक दीप जलाकर, सुरमा के साथ नवजीवन आरम्भ करने के सारे स्वप्न उसके हृदय में ही भस्म हो गये। सोचा—जिसके दुःख में ही सहारा न दिया, उसके सुख में अपना कोई अधिकार नहीं है! अनु० म० मो० ●●

भार

शान्ता जोशी

बम्बई-शहर में नवम्बर के दिन दिवस और रात्रि की संधि-वेला में गुलाबी सर्दी लिये और दुपहरियाँ उष्मा से पूर्ण होती हैं। वर्षा ऋतु का कीचड़ जम चुका होता है। वर्षाकाल में विद्युत् के पराक्रमों के कारण सड़कों पर जो ढेर लग जाते हैं, भग्नावशेषों के, वे भी अब तक साफ़ हो जाते हैं।

वर्षा के जल से पहाड़ों पर बने असंख्य झरने अधिकांश में अदृश्य हो जाते हैं, किन्तु कुछ अपने अस्तित्व को बनाये रखने की ज़िद् में अब भी कहीं कहीं बहते दिखाई देते हैं। उस गहन नीरवता के साम्राज्य में उठती उनकी कलकल ध्वनि निस्तब्धता में माधुर्य बिखेर देती है। वनश्री, जो पहले पानी से नहाई रहती थी, अब तक जैसे अपने गीले बदन को सुखा लेती है। अक्टूबर की निरभ्र धूप में उड़ती मस्त तितलियाँ अब वनराजी के रंग-बिरंगे पुष्पों पर जा बैठती हैं। उन पुष्पों पर, जिनका ध्येय ही हँसते-हँसते उन्हें अपना मधु अर्पित करते रहना है।

प्रकृति के ऐसे मनोहारी दृश्यों के बीच हम कार में विल्सन-डैम से लौट रहे थे । शाम होने में अभी देर थी, किन्तु सूर्य की तिरछी रक्तिम किरणें उसके शीघ्र आगमन की सूचना दे रही थीं । हम कसारा घाट से नीचे उतर रहे थे । दौड़ती गाड़ी में से ओझल होते दृश्य मानस-पटल पर अपनी छाप छोड़े बिना नहीं रह रहे थे । किंतु गाड़ी थी, कि दौड़ती चली जा रही थी । आधुनिक संस्कृति की जीवन डोर सरीखी रेलगाड़ी की पटरियों को लांघ कर दूसरी ओर जाने के संधिस्थल पर पहुँचते ही देखा, लेवल क्रॉसिंग के द्वार बन्द हैं । और हमें रुक जाना पड़ा ।

हमारी कार के पृष्ठ भाग में, दो उन्नत शृंग-गिरिमालाओं का अस्तित्व आगे जाकर एक हो गया था । कार के पार्श्व में ज़मीन बहुत संकरी थी । और दोनों ओर के शिखर मानो नीलाकाश की गहनता की ओर इंगित कर, मानव को अपनी तुच्छता का भान करा रहे थे। चारों ओर फैले पर्वतों की ऊँचाई के ही कारण जैसे बहुत ऊंचा उठ गया अनन्त आकाश, पर्वतों पर फैली मौन वनराजि और शांत-स्तब्ध वातावरण, सब मिलकर कार के यात्रियों के हृदयों को उस सृष्टिकर्ता की महानता एवं भव्यता के प्रति श्रद्धा-भाव से मुग्ध मौन बना रहे थे । तभी एक कोमल स्वर सुनाई पड़ा—साहब, अगले स्टेशन तक ज़रा-सी जगह मिलेगी ?

प्रश्नकर्त्ता एक आठ-दस वर्ष का बालक था । हममें से किसी ने स्वीकृति दे दी । बालक स्वयं गाड़ी का दरवाज़ा खोलने का यत्न करने लगा । उसकी परेशानी समझ कर हमारे नौकर ने दरवाज़ा खोल दिया और वह बालक निर्भय हो अन्दर आ बैठा ।

संध्या के शांत वातावरण और प्रकृति की रमणीयता ने हम सब को मन्त्र मुग्ध कर रखा था, किंतु स्टीयरिंग पर बैठा हमारा साथी लेवल-क्रॉसिंग के फाटक के खुलने की प्रतीक्षा में उद्विग्न होने लगा । अपनी ऊब से उबरने, या फिर उस अपरिचित बालक के मन-बहलाव के लिए ही उसने बातचीत शुरू की ।

—कहाँ जाना है तुम्हें ?

—पास के ही गाँव में । अपने उत्तर को स्पष्टतर बनाने के लिए वह आगे बोला—रोज़ तो मैं गाड़ी से जाता हूँ । मगर वह बड़ी देर में पहुँचती है, सो मैंने आपकी गाड़ी में बैठने की इच्छा की ।

साथी ने धैर्यपूर्वक उसका स्पष्टीकरण सुनकर पूछा—तू कहाँ रहता है ?

—वहाँ । इस गेटमैन के गाँव में ही रहता हूँ ।—कहते हुए उसने कुछ दूरी पर अपने गाँव की ओर संकेत किया ।

फाटक अब खुल चुका था और हमारी कार सरकने लगी थी । हमारे साथी और उस बालक की बातचीत भी धीरे-धीरे चलती रही ।—गाँव की आबादी क्या है ? —उनके निर्वाह के साधन क्या हैं ?—जब खेतीबाड़ी का काम नहीं रहता, तब वे क्या करते हैं ? आदि आदि ।

वह अपरिचित बालक अपरिचय अथवा अपनी बाल्यावस्था के संकोच से मुक्त, उन छोटे छोटे, किन्तु गम्भीर प्रश्नों के उत्तर देता जा रहा था। उसके उत्तरों में कहीं कोई अवरोध अथवा अस्पष्टता नहीं थी। उसकी भाषा कोमल तथा अत्यन्त शुद्ध थी।

उसके गाड़ी में बैठने के समय मैंने उस पर सरसरी दृष्टि डाली। किन्तु फिर मैं चलती गाड़ी में आगे वाली 'सीट' पर बैठी हुई, दृष्टि से ओझल होते दृश्यों को देखने में लीन थी। फिर भी बालक की मधुर आवाज़ ने मुझे आकृष्ट किया। उसके बाल-सुलभ उत्तरों में निहित स्पष्टता और सहजता मेरे मन में उसके प्रति ममता उत्पन्न करने लगी थी। मेरी इच्छा बार बार उसे देखने की हो रही थी, किन्तु बाहर के दृश्यों की भाव-विभोरता तथा कुछ इसलिए कि कहीं उसे संकोच न होने लगे, मैं बाहर ही देखती रही।

हमारे साथी ने अब उसके अपने जीवन-विषयक नये प्रश्न पूछने आरम्भ किये—तू क्या करता है?

—मैं दुकान चलाता हूँ। उसके उत्तर ने कार में बैठे प्रत्येक व्यक्ति को आश्चर्यचकित कर दिया।

हमारे साथी ने उससे एक शहरी प्रश्न पूछा—तू स्कूल नहीं जाता? मेरे अन्तर में बैठी अध्यापिका इस प्रश्न का उत्तर सुनने को अधीर हो उठी!

—हम गरीब भला कैसे पढ़ें? यह कहते समय भी उसके कंठस्वर में हीनता का लेश न था। वरन् उसके स्वर में जो गम्भीरता भरी थी, वह जैसे सारे समाज के सम्मुख गरीबों का शिक्षा-अधिकार-विषयक एक समस्यामूलक प्रश्न था। तभी सड़क पर लगी अपनी दृष्टि और पिछली सीट से आ रही उस बालक की आवाज़ पर केन्द्रित मेरी श्रवण-शक्ति, दोनों ही अपना सन्तुलन खो बैठीं। अब मैं उस बालक की ओर अपनी गर्दन घुमाये बिना नहीं रह सकी।

गौर-वर्ण, गोल चेहरा, पतले ओंठ, आकर्षक आँखें, घुटा हुआ सिर और सुकुमार देह पर जीर्ण-शीर्ण वस्त्र—सब मिलकर उसे अत्यन्त मनमोहक व्यक्तित्व दे रहे थे। मेरे अन्तर में पैठा भाषा-शास्त्री उसके शुद्ध शब्दोच्चारण पर मुग्ध हो गया।

मेरे अन्तर का कौतुहल, मेरी पक्षपाती-वृत्ति और सहज स्नेहासक्ति, मुझे उसकी ओर आकृष्ट किये जा रही थी। दृष्टि के सामने फैली प्रकृति भी मेरे मन पर से अपना अधिकार खोना नहीं चाहती थी। अस्तु मैं मौन धारण किये रही। इधर मन चाह रहा था कि हमारा साथी उस बालक के साथ अपनी बातचीत ज़ारी रखे।

—तुम्हारे घर में कितने जन हैं? साथी का प्रश्न था।

—मेरी मां और बड़ी बहन, साहब। उसने विनम्र उत्तर दिया।

—तेरी मां और बहन कोई काम नहीं करतीं?

—काम तो साहब करना ही पड़ता है। उसके उत्तर में जैसे गरीबी का तत्त्वज्ञान झंकृत हो रहा था। तभी वह बालक प्रौढ़ स्वर में बोला—हमारे यहां स्त्रियां काम करने बाहर नहीं निकलतीं।

—तुम किस जाति के हो ?—साथी के प्रश्न में सामाजिक विभेद समझने का औत्सुक्य था।

—साहब, हम मुसलमान हैं।

कार में बैठे चार वयस्क हिन्दुओं के बीच बैठे उस बालकिशोर के निर्भीक उत्तर को मेरी अन्तरात्मा ने श्रद्धांजलि अर्पित की। तभी मेरे मन में यह विचार भी कौंध गया कि पाकिस्तान के मानवभक्षी हत्याकाण्ड के उपरान्त भी भारत के अपने अतीत की भव्य-संस्कृति ने आज भी इसे त्रस्त किये बिना, निश्चिन्त हो, जीवित रहने देकर अपनी उदारता का ही परिचय दिया है।

इसकी बाद उसके व्यापार सम्बन्धी बातचीत चलती रही। पान, तम्बाकू, बीड़ी, पीपरमिण्ट की गोलियाँ, तेल, घासलेट, और मिर्च-मसालों की बिक्री से कितनी आय हो जाती है, यह सब उसने कुशलता पूर्वक बतलाया। अपनी दूकान की जमा-पूंजी की बाबत भी वह किसी वयस्क की भाँति गम्भीरता-पूर्वक समझाता रहा। वार्तालाप के इस सूत्र को आगे बढ़ाते हुए उसने कहा—अब तो दूकान जम गई है। पहले तो मैं दूकान का जरूरी सामान पास के गाँव से नकद दामों पर खरीदता था। अब साख जम जाने से मुझे माल उधार भी मिल जाता है। मैं भी अपने ग्राहकों को उधार सामान दे देता हूँ।

उसका यह छोटा-सा व्यापार पूंजी और विनिमय की मिश्र-पद्धति से किस प्रकार चल रहा है, उस सब का ब्यौरा भी वह चलती गाड़ी में ही देने लगा। बोला—गाँवों में लोगों के पास पैसा होता नहीं, मैं उन्हें उधार माल दे देता हूँ। जब उनकी फसल तैयार होती है, तो अनाज के रूप में अपने दाम वसूल कर लेता हूँ।

विनिमय-शास्त्र पद्धति की सूचनाएँ वह जिस पटुता से हमें दे रहा था, उस पर मुग्ध मैं बम्बई में अपने विद्यार्थियों को यह विषय समझा सकने की अपनी असमर्थता के विचारों में जैसे डूब-सी गई। अब उसकी छोटी-सी दूकानदारी की बातों का अन्त आता दीखा। तभी साथी ने नयी प्रश्नावली प्रारम्भ कर दी।

—और तेरे पिताजी क्या काम करते हैं ?

अब तक की बातचीत से तो यही तथ्य निकलता था कि वह पितृहीन है। अस्तु प्रश्न-जनित वातावरण की बोझिलता की सम्भावना से ही मैं घबरा गयी। तभी उसके उत्तर ने और भी कौतुहल जगा दिया। उसने बताया कि उसके पिता बम्बई के किसी सबर्ब के एक कारखाने में काम करते हैं।

सिर पर पिता की छाया के रहते उसे इस छोटी सी आयु में ही इतना संघर्ष क्यों करना पड़ रहा है ?—मैं इसी विचार में गोते लगाने लगी।

साथी ने दूसरा प्रश्न किया—तो तुम सब उन्ही के पास क्यों नहीं रहते ?

—उनकी थोड़ी-सी तनख्वाह में इतने लोगों का गुज़ारा कैसे हो सकता है····? फिर साहब, बम्बई में रहने को खोली भी कहाँ मिलती है ?

—मिलती है। साथी ने ज़ोर देते हुए कहा।

—लेकिन पगड़ी बिना नहीं।—उसने साथी की भूल को सुधारते हुए कहा।

—तो तेरे गाँव में पगड़ी बिना मकान मिल जाते हैं ?

—पहले तो मिल जाते थे, पर आजकल यहाँ भी नहीं मिलते। और इस उत्तर के साथ उसके निर्दोष मुख से जो निःश्वास निकला, वह आज की संस्कृति की चकाचौंध को जैसे फीकी बना गया। और कार में मौन व्याप गया। सारा वातावरण ही बोझिल हो उठा। साथी ने जैसे इस परिस्थिति से उबरने के लिए ही आगे पूछा।

—तेरे पिता यहाँ नहीं आते ?

—पहले तो रोज़ आया-जाया करते थे। पर अब आने-जाने के रोज़ के खर्च और तकलीफ से बचने के लिए वहीं रहने लगे हैं।

उसके इस उत्तर पर मैंने सोचा कि क्या मात्र पैसा बचाने के उद्देश्य से ही कवियों और साहित्यकारों के वर्णित उदात्त प्रेम को मिटा दिया जाय ?

साथी ने उससे पूछा—तूने बम्बई देखी है ?

—दो-एक बार गया हूँ। और यह कहकर जैसे अपनी बात की पुष्टि के लिए ही उसने सेन्ट्रल और वैस्टर्न रेलवे की विद्युत-चालित रेलवे-लाइनों का विवरण उपस्थित किया। तभी पास की रेलवे लाइन पर जाती हुई रेल गाड़ी दिखाई दी। उसे देखकर उसका बाल-सुलभ उत्साह जागा। उसने उसी ओर हाथ से इशारा करते हुए बताया कि वह अपनी खरीददारी के लिए इसी गाड़ी में शहर जाया करता है। क्योंकि जाते समय वह खाली हाथ रहता है, सो वह बिना टिकिट ही यात्रा करता है। स्टेशन से बाहर निकलने के मार्ग का भी उसने परिचय दिया। फिर ढीले से स्वर में, जैसे कुछ याद आगया हो, आगे कहा—कि कभी बिना टिकिट होने पर पकड़े जाने पर खरीदी के पैसों में से ही टिकिट-चेकर को थोड़ी-बहुत बख्शीश भी दे देनी पड़ती है।

समाज के इस कोमल उम्र के नागरिक द्वारा रिश्वत देने के प्रकरण पर मेरे मन में विचार उठे। अब उसकी खरीदी करने का स्थान निकट ही था। सामान खरीदकर शाम को समय पर घर पहुँचने की बात उसके मस्तिष्क में गूंजने लगी थी। गन्तव्य

आने को ही था, तब उसने अपने थैले में हाथ डालकर अपने पैसे सम्भाले । उसके इस क्रिया-कलाप को देखकर पिछली सीट पर उसके पास बैठे हमारे नौकर ने बात बढ़ाने के उद्देश्य से कहा—इस थैली में क्या है ?

—कांग ?

कांग की अनभिज्ञता के कारण हम सभी की दृष्टि उसकी थैली की ओर गई । अब तो इतनी देर से गम्भीर बने उसके चेहरे पर रहस्य बिखर गया । कांग का अर्थ समझाने के आशय से वह बोला—कांग एक तरह का अनाज होता है । और जैसे वह कोई प्रयोग-शाला में समझाने की वस्तु हो, थैली में से थोड़ी-सी कांग निकालकर वह सभी को दिखाने लगा । हम सभी कौतुक में भरकर उसे देखने लगे ।

—यह किस काम में आता है ?

उत्तर में उसने उसको साफ करने की विधि से लेकर उसके द्वारा तैयार किये जाने वाले विविध व्यंजनों का पूरा विवरण दे डाला । उसका यह सारा विवरण-विश्लेषण इतना रोचक था, कि गन्तव्य तक पहुँचने की बात भी विस्मृत होजाय, तो स्वाभाविक ही था । किन्तु जीवन-संघर्ष से प्रौढ़ बना उसका मन प्रौढ़ों की भाँति ही बोला—तो साहब, आज मैं काफ़ी जल्दी पहुँच गया हूँ । आपकी मेहरबानी से अब खरीदी करके रात के दसेक बजे तक अपने घर भी पहुँच जाऊँगा ।

साथी ने पूछा—इतनी रात गये, ऐसी अन्धेरी रात में, ऐसे जंगल में जाते तुझे डर नहीं लगेगा ?

—डर ? अरे अब मैं कोई बच्चा हूँ ? उसकी इस उक्ति में भी वयस्क की प्रौढ़ता स्पष्ट थी ।

हूँ ?....साथी ने स्वर में गाम्भीर्य भरकर पूछा—कितने साल का है तू ?

—साहब, अब बारहवाँ साल चल रहा है । उसके स्वर से स्पष्ट था कि बारह वर्ष की आयु उसके लिए वयस्कता का चिन्ह थी ।

सारे प्रश्नों का उत्तर धड़ाधड़ देते समय भी उसकी दृष्टि दौड़ी जाती सड़क पर लगी थी । गन्तव्य तक पहुँचते ही वह बोला—साहब, गाड़ी रोकिये ।

कार रुकी और वह उतर पड़ा । मैंने सोचा था कि वह तुरंत चलता बनेगा । किन्तु नीचे उतर कर उसने अपना थैला ठीक से कन्धे पर रखा और गाड़ी के बराबर में खड़े हो सम्मानपूर्वक कहा—अच्छा साहब ! बहुत बहुत शुक्रिया ।—और वह चल दिया ।

शरीफ घराने के अशिक्षित होने पर भी शिष्ट बच्चे के शिष्टाचार को देख मुझे शिक्षितों की अविनीतता की स्मृति हो आई ।

माता-पिता से दुलार भरी ममता पाने की इस कच्ची श्रायु में, यह श्रब्दुल उनके श्रभावों की पूर्ति की क्षमता संजोये एकाकी ही कर्त्तव्य की इस कठोर धरती पर आगे बढ़ता चला जा रहा है। संघर्षमय जीवन की कठोर श्रौर कटु व्यावहारिकता ने उसकी कोमल-मधुर वाणी को ज़रा भी स्पर्श नहीं किया था। सारे वार्तालाप में उसने जो श्रानन्द का रस घोल दिया था, वह मानो श्राज के कुण्ठाग्रस्त संसार के सम्मुख एक प्रश्न-चिन्ह उपस्थित कर रहा था।

वह चला जा रहा था। श्रपने कोमल कन्धों पर कठोर कर्त्तव्य का थैला श्रौर उसका बोझ लिए....।

जिस बोझ ने उसकी सुकोमल देह-वल्लरी को वक्र बना दिया था, उस पर क्षुब्ध हुश्रा जाय या कि उस नवांकुर में निहित क्षमता के प्रति खुश हुश्रा जाय, इन्ही विचारों में मेरा मन डूबने-उतराने लगा। तभी मेरे दिमाग में बम्बई के उन वयस्क नवयुवकों का चित्र कौंध गया, जो श्रपने पिता श्रथवा परिवार के धन को श्रंधाधुन्ध उड़ाने में व्यस्त रहते हैं। श्रौर तब मैं श्रब्दुल्ला के प्रति श्रद्धावनत हुए बिना न रह सका।

●●●

श्रनु० गोबिन्दलाल कानूगो

विजय-भस्म

धीरू बहन पटेल

'भाई, कोई तो पसन्द आई होगी ?'

काकी ने एक बार फिर रतिलाल से पूछा ! रतिलाल मस्ती में था। हाथ में सिगरेट ले, उसने काकी की ओर देखते हुए कहा,

'ढूँढ निकाली है।'

'कौन ? बताओ तो सही !'

'है एक।'

इतना कह कर वह फिर धुएँ के छल्ले बनाने लगा। उसे चिन्ता क्या थी भला ? जैसी चाहिए, वैसी सुन्दरी पा सकता था वह, इससे क्या कि वह दूजवर था ? अब भी स्वस्थ था, उसका कोई बच्चा जीवित नहीं था और पास में ढेर-सी पूँजी भी थी।

लेकिन उसे वैसी सामान्य युवती नहीं चाहिए। वह हमेशा हर क्षेत्र में असामान्य की ही खोज करता। कुछ ऐसा अभिनव,

जो उसके स्थिर और ऊबे हुए मन को मात्र बहलाये ही नहीं, उत्तेजित कर दे, झिझोड़ दे और हमेशा बाँधे रक्खे। स्त्रियों के सम्बन्ध में भी उसकी यही वांछा थी। सौभाग्य से उसे मिल भी गया, मनोनुकूल पात्र।

'आखिर वह है कौन ?' काकी ने फिर पूछा।

'वसु'

'हाय हाय ! तुम्हारे लिए कली-सी सुकुमार लड़कियों की कमी है, जो तुम उसे····जानते हो, पहले वह अनन्त के साथ विवाह करना चाहती थी। फिर माँ-बाप के डर से दोनों ने ज़हर खाने का निश्चय कर लिया था।'

'फिर ?'

'फिर क्या ? वह तो बेचारा निश्चित समय के अनुसार ज़हर खाकर मर गया और यह कुलटा जीवित रह गयी।'

रतिलाल उस पूरे इतिहास को जानता था और इसीलिए तो उसने असम्भव को सम्भव कर दिखाने का निश्चय किया था। मृत अनन्त से उसकी प्रेयसी छीन ले और काष्ठ प्रतिमा-सी वसु में प्राण भर दे—यही तो उसकी वांछा थी।

किन्तु, वह यह सब कुछ कहाँ जानता था ? पेट में पहुँच गये विष को निकालने के लिए डॉक्टरों के प्रयत्न, वसु को अब किसी दुःस्वप्न की तरह याद आते। बिजली के एक एक धक्के पर उसकी वेदना भरी चीखों को सुनकर तो उसकी माँ का हृदय भी पसीज गया था। 'अरे रे ! इससे तो घर से भाग गई होती तो ठीक रहता।'

पर विधि का लेख ! कोई क्या कर सकता है ? वसु जीवित रही और दूसरे दिन होश आने पर उसने अनन्त की मौत के समाचार भी सुने। बस, तभी से ही उसके मन पर शोक का एक ऐसा पहाड़ बैठ गया कि किसी की ताकत नहीं कि उसे टस से मस कर सके। 'अनन्त गया' यह ध्यान आते ही उसके जीवन की गति अवरुद्ध हो जाती और भयंकर रूप से पश्चाताप की प्रचण्ड अग्नि दहकने लगती। उसके आँसू सूख गये थे। झरने की कल-कल ध्वनि-सी उसकी वह मंजुल वाणी अभेद्य चट्टान के तले रुंध गई थी। खिड़की के सामने शुष्क नेत्र लिये बैठी वसु को देखकर घर में सबका जी जल जाता। 'थोड़ी-देर पहले खबर लग गई होती तो ·· ···' पर अब तो बहुत देर हो चुकी थी। अनन्त तो भरे यौवन में ही कभी का शून्य में समा गया था।

वसु की स्थिति दिन-प्रतिदिन बड़ी विचित्र होती जा रही थी। एक क्षण भी वह अनन्त को भूल नहीं पाती, किन्तु भूले से भी कभी अनन्त का नाम मुँह पर न लाती।

किसी महान् शिल्पी के द्वारा गढ़ी गई शोक प्रतिमा-सी वह स्थिर बैठी रहती। सहेलियों के अनेक प्रयत्नों के विपरीत उसका चट्टानी मौन टूटता ही नहीं। लाल-लाल आँखों में एक बूंद आँसू नहीं। परिणाम-स्वरूप सहानुभूति का स्रोत धीरे धीरे सूखता गया। लोग

उसे पत्थर दिल कह कर कोसने लगे। खासकर युवक वर्ग तो उसका नाम बिना व्यंग्य के उच्चारता ही न था। वसु के कानों में ये शब्द नहीं पड़ते हों, ऐसी बात नहीं थी, किन्तु उत्तर में विकृत मुस्कान लिये उसके सूखे ओठ उसके चेहरे को और भी भयंकर बना देते। सभी को उसकी इस आदत पर आश्चर्य होता। किन्तु किसे पता था कि पूरी दुनिया भी यदि मिलकर उसे दुत्कारने लगे, तो उससे लाख गुनी दुत्कार वसु स्वयं अपने आप पर बरसाती रहती थी ? किसे पता था कि सहानुभूति की छोटी-सी बूंद का कहीं पता भी न चले, दुःख के ऐसे पारावार में एकाकिनी वसु खो गयी थी !

दिन पर दिन बीतते गये और वसु का दुर्भाग्य भुलाया जाने लगा। सभी उससे सामान्य व्यवहार की आशा रखने लगे। वसु भी शोक समाधि से उठकर घर के काम-काज सम्भालने लगी। वह सबके साथ कम से कम बोलती और शान्त व्यवहार करती। मां-बाप को चैन मिला, परन्तु औरों द्वारा बीते प्रकरण-सा भुला दिया गया वह प्रसंग वसु के दिल में जीवन की पूरी पुस्तक बनकर अंकित था। वहां कुछ और नहीं था········ कुछ और होना भी न था !

कठपुतली की तरह चलते-फिरते कभी कभी उसका मन कहता—'छोड़ न यह सब', मृत्यु की राह पकड़। कहीं न कहीं उस आगे चले गये साथी से भेंट हो ही जाएगी !' किन्तु अब उसे एक विचित्र प्रकार का भय सताता—मृत्यु के बाद यदि अनन्त से मिलन हुआ भी, तो वह अपना यह काला मुंह कैसे दिखायेगी ?

उसने अक्षम्य अपराध किया था; जिसका कोई प्रायश्चित नहीं था। शायद वह अनन्त के सामने कभी नज़र नहीं उठा सकेगी। इसीलिए तो उस घनघोर रात में मृत्यु से जितनी डरो थी, उससे कहीं अधिक भय मृत्यु से उसे अब लगता था। जेल-सी जिन्दगी ! मुक्ति का द्वार सामने ही था, किन्तु वह खुले तो खुले कैसे ?

प्रत्येक क्षण जिसका जीवन दूभर होता जा रहा था, वही वसु दुनिया की नज़रों में फिर से सामान्य स्त्री प्रतीत होने लगी थी। उसकी मंगनी के लिए प्रस्ताव आने लगे। पहले की अपेक्षा वे बहुत साधारण थे, किन्तु चिंतातुर मां-बाप को जैसे भी हो, इस कार्य को कर डालने की जल्दी मच गई। घर में चल रही बातों को सुन, वसु ने अपने साहस के खण्डहरों को एकत्रित कर अपनी छोटी भाभी से कहा,—'किन्तु मैं तो अनन्त ··· ·· ' और एक लम्बे अन्तराल के बाद प्रिय के नामच्चोर ने उसके दिल में जमे हिम को पिघला दिया। आंखों से आंसुओं की धार बह चली। ज़हर भरी भाभी तो इतना सुनकर आग-बबूला होगई, 'इतना अधिक प्यार था तो साथ ही क्यों न चली गयी' और विद्रूप से भर कर वह अपने कमरे में चली गई। इस पर वसु के मन में जो वेदना का महासागर उमड़ा, उसको भला कौन नाप सकता है ? परन्तु वह मन ही मन रोती हुई चुप बैठी रही। उसे तो विधाता को दोषी ठहराने का अधिकार नहीं था।

किन्तु ब्याह की बातें आगे चलें, इससे पहले ही उसके माता-पिता की आकस्मिक मृत्यु हो गई। वसु अब सर्वथा अनाथ हो गई थी। वे दर्द भरे आवेग अपने आप ही थम गये। अब वह उस घर में सबके ताने और अपमान सहती और मूक पड़ी रहती ......जाने क्यों वह जीती ही रही? पहले की लाड़ली वसु से यह व्यवहार चार दिन भी न सहा जाता, पर आशाभग्न-प्रेत-सी वसु जीवन के तंतु से अकारण ही जुड़ी रही। शुष्क, जड़ उसकी उपस्थिति मात्र से वातावरण विचित्र बन जाता, फिर किसे उस पर प्यार आता? फिर भी आज ......

नहीं, रतिलाल को उससे प्यार नहीं हुआ था। वह तो उसकी विशिष्ट आकृति के प्रति ही आकृष्ट हो गया था। वह अब भी कुरूप नहीं थी। बाल भले ही काफ़ी सफ़ेद हो गये थे, किन्तु उनके घुंघराले-घुमाव अब भी शेष थे। आँखें गड्ढों में धँस जाने पर उसकी बड़ी-बड़ी आँखों की अतल गहराइयों में उतर जाने को रतिलाल का मन होता। शुष्क चेहरे पर लावण्य के अवशेष अब भी चिपके हुए थे। रात दिन सुलगती अन्तर की आग ने उसके चेहरे को एक विशिष्ट माधुर्य दे दिया था। तरुण वसु रूपसुन्दरी थी, तो आज की वसु रहस्यमयी भाव-प्रतिमा थी। रतिलाल को उसके हृदय की अगम्य उलझनों को सुलझाने का मन हो आया। काकी की नाराज़गी को एक ओर रख, उसने वसु को जीतने के लिए व्यवस्थित रूप से प्रयास करने का निश्चय किया। उसके बेचैन, ऊब भरे मन को जैसे नया आह्वान मिला। नयी ज़िन्दगी मिली।

प्यार की अधीरता तो उसमें थी ही नहीं। धीरे धीरे अत्यन्त सावधानी से उसने अपनी बाजी फैलायी। वसु के भाइयों से परिचय कर उसने उसके घर में आवागमन बढ़ाया, लेकिन वसु से बोलने का प्रयत्न नहीं किया। इस प्रकार अपनी उदासीनता स्थापित हो जाने के बाद उसने चाल बदली। कभी तो वह उदास होकर बैठा रहता, तो कभी हृदय बेध देने वाली काव्य पंक्तियाँ उच्चारता, अक्सर नयी पुस्तकें वह इस प्रकार रख आता कि वसु की नज़र उन पर पड़े तो कभी वसु के स्वास्थ्य के प्रति चिन्ता प्रकट करता।

गुमसुम रहने वाली वसु के मन में इस व्यक्ति के प्रति अनजाने ही कोमल भाव जाग उठा। स्वस्थ मैत्री की जो रूपरेखा आकार लेने लगी, उसमें रतिलाल के उदास चेहरे और निश्वासों की परम्परा का साधारण हाथ न था।

रतिलाल स्वभाव से दम्भी नहीं था, किन्तु उसने कभी अपनी इच्छाओं को कुचलना नहीं सीखा था। उसे इस रहस्यमयी नारी को प्राप्त करने की अदम्य आकांक्षा हो आई। अतः उसने स्वयं को उदार, सहृदयी और भावुक रूप में दर्शाने के प्रयत्न किये। फिर एक दिन वह बाग में गुलमोहर के पेड़ तले अचानक ही वसु से मिल गया और उसे रोते देख बड़ी खूबी से अपनी बात उसके सामने रक्खी। प्रणय की स्मृति हमेशा

लिए संजोये रखने के लिए कैसे कैसे प्रयास करने पड़ते हैं और कैसा नाजुक वातावरण
ा होता है, इसकी आलोचना करते हुए भरे और भीगे कण्ठ से समझाया कि ऐसे
और अपमान के दिन बिताने की अपेक्षा किसी शान्त और सुन्दर वातावरण में
मन की अमूल्य स्मृतियों को सँवार कर जीना कितना सुखद है ! इस पर वसु ने
दुत्कारा नहीं, यही क्या कम था ?

के मन में धीरे धीरे वह बीज अंकुरित होने लगा । कैसे द्वेष और तिरस्कार के बीच
ती रही थी ? ऐसे वातावरण में वह अपनी स्मृतियाँ कब तक संजोये रख सकेगी ?
ो अपनी तीव्र जलन-सी वेदना भी अब तो तीव्र पीड़ा के बदले एक जड़ बोझ बन कर
ा को पीसे जा रही थी । उसे अक्सर दो-दो तीन-तीन दिनों तक अनन्त की याद
आती । और यह सब जब ध्यान आता तो वह और उदास हो जाती, परन्तु उसमें
ा की चुभन न होती ।

ाल उसके जीवन में आया और धीरे धीरे सब बदलने लगा । जो ताने वह मौन
-सी सुन लेती थी, अब उन पर उसकी वेदना भूली आँखें बेरोक बरसने लगती हैं ।
ओं की दुनिया अजाने ही पुनर्जीवित होती जा रही है । अनुभवी रतिलाल यह सब
और मन ही मन प्रसन्न होता और जब उसे लगा कि फल पक गया है तो एक
सने गम्भीर होकर कहा :

ती ! प्यार की पीड़ा तुमने भोगी है ! मैंने भी भोगी है । तुम्हारी तरह मैंने भी
ाथी को खोया है । जीवन के बाकी बचे टुकड़े यदि हम साथ-साथ बितायें····
' वसु कुछ कहे उससे पूर्व ही वह आगे बढ़ा :

SS तो ·· अपना सम्बन्ध सामान्य नहीं होगा । यह ठीक वैसा ही होगा, जैसे
ा धूनी रमा कर पड़े हों··· ! तुम मेरे दर्द को समझती हो, मैं तुम्हारे दर्द को
हूँ··· जीवन का बोझ हल्का करने के लिए तुम्हारा साथ माँगता हूँ । दोगी न ?'
ा तक भी निरुत्तर बनी हुई वसु को जीतने के लिए उसने अन्तिम पासा फेंका—
ा मना करोगी तो मैं जी नहीं सकूँगा ! मैं भी ···' घबराये स्वर में वसु बोल
नहीं, नहीं, ऐसा न कहो ।'

का आनन्द मन में समाता न था, फिर भी ऊपरी व्यग्रता दिखाते हुए बोला,
ाशा रखूँ न ?'

तो अनन्त को ···'

ाहीं जानता ? मैं तुम्हारा प्यार नहीं माँगता, मात्र साथ और सहानुभूति
···तुम तुम्हारे प्यार की स्मृति सहजे रह सको, ऐसा वातावरण तुम्हारे आस-
ा चाहता हूँ···क्या इतना अवसर नहीं दोगी ?

वसु मना नहीं कर सकी और विवाह हो गया। रतिलाल वसु को दूर गाँव में ले गया और उसके सामने धन के ढेर लगा दिये। धीरे धीरे विरक्त वसु को वस्त्र-अलंकारों के प्रति अनुरक्ति होने लगी। वह इधर-उधर घूमने-फिरने लगी। रतिलाल ने घर संसार की लगाम उसके हाथों में सौंप दी।

ये सभी परिवर्तन आरम्भ में वसु ने उदासीनता से और फिर इच्छा से होने दिये। जीवन के चालीसवें वर्ष में उसके जीवन में फिर यौवन का वसंत आया। रतिलाल अपनी सफलता पर प्रसन्न हुआ, किंतु शीघ्र ही यह सफलता उसे उदास बनाने लगी। हँसती, बोलती, रोज़ नये शृंगार सजती इस सत्ताप्रिय स्त्री में उसने क्या विशेषता देखी थी? उसका स्वास्थ्य पहले से सुधर गया था। कम उम्र की सहेलियों के साथ वह मस्त हो झूमती-किलकती, मोटर चलाती, सिनेमा-नाटक देखती, और गप्प मारती।

कहाँ गया वह रहस्य भरा गूढ़ मौन? कहाँ वह शोक-छाया? कहाँ वह म्लान लावण्य? उदास बने-रतिलाल को नयी वसु के प्रति विराग होने लगा। वह उसके अपने हाथों गढ़ी कृति थी। वह मृत अनन्त जो फूल रख गया था, वही उसने एक एक कर पिरोये थे और उस प्रतिमा को प्राण दिये थे। और आज वह हँसने लगी, तो रतिलाल व्याकुल हो उठा।

वर्षों परदेश में रहा, अपार धन कमाया और यहाँ आने से पूर्व कितनी ही युवतियों को ठुकरा आया, तो क्या वह सब इस मोटी, रोबीली और अत्यन्त सामान्य-सी इस अधेड़-प्रौढ़ा के लिए? रतिलाल के मन में स्वयं के प्रति तिरस्कार उपजने लगा। एक दिन स्वयं की विजय पर अंकुश रखने में असमर्थ हो उसने पूछ ही लिया:

'वसु, तुझे किसी दिन अनन्त की याद नहीं आती?' 'अनन्त?' वसु का चेहरा क्षण भर के लिए फक पड़ गया, किंतु शीघ्र ही प्रफुल्ल हो कर वह बोली—

'हाँ, पर उस बात को कितने वर्ष बीत गये और सच कहूँ?'

'हाँ, कह न?'

कुछ हँसते हुए शरमाने का अभिनय करती हुई वसु बोली—

,तुम्ही ने तो उसे भुलवा दिया!'

और उसने रतिलाल के गले में बाँहें लपेट दीं। अत्यन्त जुगुप्सा और वितृष्णा से उसे अलग करते हुए वह खड़ा हो गया। उसकी सम्पूर्ण विजय और सम्पूर्ण निष्फलता का क्षण आ पहुँचा था!!!

अनु० मनमोहन झा

●●●